संगीत विशारद

संगीत-विशारद

संगीत-विशारद

[राजस्थान-बोर्ड ऑफ सैकण्ड्री एजूकेशन व प्रयाग-संगीत-समिति द्वारा पाठयक्रम में स्वीकृत]

इण्टरमीडिएट तथा बी० म्यूज० (संगीत-विशारद)

के विद्यार्थियों के लिए

लेखक

'वसन्त'

सम्पादक

लक्ष्मीनारायण गर्ग

प्रकाशक

© संगीत कार्यालय, हाथरस (उ० प्र०)

संशोधित एवं परिवर्द्धित

सप्तम संस्करण : नवम्बर, १६६८

मूल्य
छह रुपए

SANGEET VISHARAD

By

'VASANT'

Price :

Rs. 6/-

7th. Edition :

November, 1968

Publishers :

SANGEET KARYALAYA,

HATHARS (India)

Printers :

SANGEET PRESS.

HATHRAS (India)

प्राक्कथन

संगीत का विद्यार्थी-वर्ग बहुत दिनों से एक ऐसी पुस्तक की माँग कर रहा था, जिसमें इंटर तथा विशारद की परीक्षाओं में आनेवाली थ्योरी (शास्त्रीय विवेचन) हो। वास्तव में उनकी यह माँग उचित भी थी; क्योंकि सरल हिन्दी भाषा में अभी तक कोई ऐसी पुस्तक प्राप्य नहीं थी, जिसमें ऐसे परीक्षार्थियों को मनोवांछित सामग्री प्राप्त हो सके। विद्यार्थियों की यह कठिनाई प्रकाशक की दृष्टि में भी थी और वह चाहता था कि इसे तुरन्त दूर कर दिया जाए, किन्तु किसी भी निर्माण-कार्य की योजना को क्रियात्मक रूप देने में समय तो लगता ही है। फलस्वरूप 'संगीत-विशारद' के प्रकाशन में भी वर्षों का समय लग गया।

भातखंडे-संगीत-महाविद्यालय, गान्धर्व महाविद्यालय-मंडल, माधव-संगीत-महाविद्यालय, प्रयाग-संगीत-समिति, आगरा-यूनिवर्सिटी, दिल्ली-यूनिवर्सिटी आदि शिक्षण-केन्द्रों के पाठ्यक्रमों के आधार पर इस ग्रन्थ की रचना की गई है, अतः विभिन्न केन्द्रों में परीक्षा देनेवाले विद्यार्थियों को इससे यथेष्ट सहायता प्राप्त होगी, ऐसा मेरा विश्वास है।

इस पुस्तक में प्रयुक्त स्वर और ताल-चिह्न यद्यपि भातखंडे-पद्धति के अनुसार ही हैं, तथापि विद्यार्थियों के ज्ञानवर्धन के लिए विष्णुदिगम्बर-पद्धति के स्वर, ताल-चिह्नों का स्पष्टीकरण भी यथास्थान कर दिया गया है। राग और तालों का विवरण देते समय इस बात की पूर्ण चेष्टा की गई है कि शिक्षण-केन्द्रों के पाठ्यक्रमानुसार (प्रथम वर्ष से पंचम वर्ष तक) सभी राग और तालों का इस पुस्तक में समावेश हो जाए। इस प्रकार यह पुस्तक विशेषतः 'संगीत-विशारद' के विद्यार्थियों के लिए माँ सरस्वती का वरदान-स्वरूप बन गई है। इस पुस्तक के अध्ययन के बाद परीक्षाओं में उत्तीर्ण होने की पूर्ण आशा तो है ही, साथ ही भारतीय संगीत के शास्त्रीय ज्ञान का एक विशाल कोष भी विद्यार्थियों को प्राप्त हो सकता है, जिसकी उन्हें अपने सांगीतिक जीवन में पग-पग पर आवश्यकता पड़ेगी।

पुस्तक के छठे संस्करण में आवश्यक संशोधन एवं परिवर्द्धन करने में हमें श्री भगवतशरण शर्मा, एम० ए० का विशेष सहयोग प्राप्त हुआ है, अतः उन्हें एवं उन अन्य लेखक महानुभावों के प्रति कृतज्ञता प्रकट करते हुए मैं अपना हार्दिक धन्यवाद प्रेषित करता हूँ, जिनके विद्वत्तापूर्ण ग्रन्थों का अवलोकन और मन्थन करने के पश्चात् इस पुस्तक की रचना की गई है। प्रमुख सहायक ग्रन्थ और ग्रन्थकारों के नाम इस प्रकार हैं:—

१. संगीतरत्नाकर (शार्ङ्गदेव)
२. संगीतदर्पण (दामोदर)
३. स्वरमेलकलानिधि (रामामात्य)

४. संगीतसीकर	(बी० एन० भट्ट)
५. संगीतपारिजात	(अहोबल)
६. क्रमिक पुस्तक-मालिका	(भातखंडे)
७. रागविज्ञान	(पटवर्धन)
८. संगीतकौमुदी	(बी० एस० निगम)
९. संगीतशास्त्र	(एम० एन० सक्सेना)
१०. संगीतशास्त्रविज्ञान	(बद्रीप्रसाद शुक्ल)
११. संगीतवीथिका	(प्रजेश वन्द्योपाध्याय)
१२. संगीतप्रदीप	(कु० बुलबुल मित्रा)
१३. अप्रकाशित राग	(ज० दे० पत्की)
१४. संगीतकलाविहार	(मासिक)
१५. संगीत	(मासिक)
१६. भातखंडे संगीत-शास्त्र	(भातखंडे)
१७. ताल अंक	('संगीत' का विशेषांक)
१८. संगीतसागर	('संगीत' का विशेष प्रकाशन)
१९. मारिफुन्नग़मात	(राजा नवाबअली)
२०. वाद्यसंगीत अंक	('संगीत' का विशेषांक)
२१. संगीतशास्त्रदर्पण	(शान्ति गोवर्धन)
२२. हिन्दुस्तानी संगीत-शास्त्र, भाग २	(भगवतशरण शर्मा)

—*'वसन्त'*

●

अनुक्रमणिका

संगीत-विशारद

सफल संगीतज्ञ बनने के उपकरण

पुस्तकालय और संगीत

संगीतकार और संगीतज्ञ के लिए पुस्तकालय रखना नितान्त आवश्यक है। बिना इसके ये दोनों अपनी सांगीतिक प्रवृत्तियों की अभिवृद्धि नहीं कर सकते। प्रत्येक संगीतज्ञ को, चाहे वह छोटे ही रूप में क्यों न हो, एक लाइब्रेरी अवश्य रखनी चाहिए। साहित्य और संगीत का घनिष्ठ सम्बन्ध है। इन दोनों को अलग-अलग नहीं किया जा सकता। जिस संगीत की पृष्ठ-भूमि में उच्च रचनाएँ, रम्य भावनाएँ, सुन्दर विचार, रंगीन एवं कलात्मक उड़ानें नहीं होतीं, वह संगीत शाश्वत एवं अपूर्व नहीं बन सकता। जीवन के ठोस तत्त्वों पर संगीत की नींव होनी चाहिए, जिससे विश्व को उज्ज्वल आलोक प्राप्त हो सके, शक्तिशाली सांगीतिक उत्पादन मिल सके, संगोत की उच्च कोटि की अभिव्यक्ति अपने सुन्दरतम रूप में प्रस्तुत हो सके और संगोत का स्वरूप तुष्टिकारी होकर विश्व को सम्मोहित कर सके। अतः आपका परम कर्तव्य है कि संगीत की किसी भी उपयोगी पुस्तक को हाथ से न निकलने दें और उसे खरीदकर अपने पुस्तकालय का उपकरण बनाएँ। अवकाश के समय आप इन पुस्तकों का मनन कर सकते हैं। आपको यह स्मरण रखना चाहिए कि आपको संगीत का केवल व्यावहारिक ज्ञान ही कुशल संगीतज्ञ नहीं बना सकता, जब तक कि आपको संगीत का पूर्णरूपेण शास्त्रीय ज्ञान न हो। यह शास्त्रीय ज्ञान अध्ययन से ही अर्जित किया जा सकता है। व्यावहारिक ज्ञान का विकास शास्त्रीय ज्ञान पर ही आधारित है। जितना आपका शास्त्रीय ज्ञान विकसित होगा, उतना ही अधिक आपका व्यावहारिक ज्ञान परिपुष्ट होगा। जो व्यक्ति प्रमादी हैं और विधिवत् अध्ययन नहीं कर पाते, उनकी सांगीतिक प्रतिभा भी अधूरी रह जाती है। संगीत की सफलता केवल वही नहीं है, जो आपको संगीत प्रदर्शित करते समय श्रोताओं द्वारा तालियों की गड़गड़ाहट के मध्य प्राप्त होती है। यह तालियों की गड़गड़ाहट की ख्याति तो क्षण-भंगुर होती है; इसमें स्थायित्व नहीं होता, यह केवल चार दिनों की चाँदनी के समान होती है; अतः यह कला को ऊपर नहीं उठा सकती। इसके लिए आपको संगीत-साहित्य का पूर्ण अध्ययन करना पड़ेगा।

अध्ययन करते समय अपना दृष्टिकोण संकीर्ण न बनाइए। आपको प्रत्येक पुस्तक का, चाहे वह भारतीय लेखक की हो अथवा विदेशी लेखक की, मनन अवश्य करना चाहिए। आप इस तथ्य को हमेशा याद रखें कि प्रत्येक भाषा में अच्छे कलाकार हो गए हैं; अतः अपने दृष्टिकोण को उदार बनाते हुए आप जो अध्ययन करेंगे, उससे आपका ज्ञान सर्वतोमुखी होगा। आपके संगीत की पृष्ठ-भूमि उदार और गम्भोर बन जाएगी। हमारे यहाँ के अधिकांश संगीतकारों में यह अभाव पाया जाता है। हमारे भारतीय संगीतकार अधिकतर अशिक्षित हैं। वे अध्ययन की ओर से उदासीन हैं, अतएव उनका ज्ञान सीमित दायरे में रह जाता है। वे फिर संगोत की दौड़ में विशेष आगे नहीं बढ़ पाते। यह भी प्राय: देखा जाता है कि उनके अन्दर सुन्दर और अलभ्य अनुभव हैं, किन्तु वे उन अनुभवों को प्रस्तुत करने की कला से पूर्ण अनभिज्ञ हैं;

इसीलिए वे अपने संगीत को शाश्वत नहीं बना पाते और न लोकप्रिय ही बना पाते हैं। संगीत को किस प्रकार गुलदस्ते के समान काट-छाँटकर दुरुस्त किया जाए; कैसे उसको विकसित किया जाए; कैसे एक रूप में अनेक रूपों का समन्वय किया जाए कि जिससे उसकी मौलिकता नष्ट न हो; कैसे विभिन्न तथ्यों का एकीकरण करके उनमें अनुरूपता लाई जाए; कैसे उसके विभिन्न रूपों को एक सूत्र में पिरोया जाए; किस प्रकार प्राचीन और नवीन पद्धतियों एवं शैलियों को आधुनिक साँचे में ढालकर उनका जीवन बढ़ाया जाए और किस प्रकार एक राग में से अनेक राग निकाले जाएँ आदि अनेक समस्याएँ हैं, जिन्हें वर्तमान संगीतकार सुलझाने में घबरा जाता है। इन सब सांगीतिक समस्याओं को वही संगीतज्ञ सुन्दर ढंग से सुलझा सकता है, जिसने संगीत के मूल तत्त्वों का भली-भाँति अध्ययन किया है, जो प्रमादी नहीं है, जो प्रत्येक संगीत की पुस्तक को पढ़ने के लिए सदैव तैयार रहता है और उसके अनुकूल आचरण भी करता है। आपकी छोटी-मोटी लाइब्रेरी इस दशा में बहुत सहायता कर सकती है, बशर्ते कि आपके अन्दर सफल संगीतज्ञ बनने की पूर्ण इच्छा हो। मान लीजिए, आपकी आर्थिक स्थिति आपको कोई भी पुस्तक खरीदने के लिए अनुमति नहीं देती, तो फिर आप उस अवस्था में हाथ-पर-हाथ रखे मत बैठे रहिए, अपितु किसी सार्वजनिक पुस्तकालय में जाकर अपनी इच्छित पुस्तकों की खोज करिए और मिल जाने पर उनका अध्ययन कीजिए। जो व्यक्ति सफल संगीतज्ञ बनने का दृढ़ संकल्प कर लेगा, उसे आर्थिक बाधाएँ कभी नहीं रोक सकेंगी।

संगीत का आदर्श है, ज्ञान के सुनहले रत्नों को एकत्रित करके जाज्वल्यमान प्रासाद का निर्माण करना। उसका आदर्श है, सार्वभौमिक मानव-जीवन का ऐक्य एवं संगठन। संगीतज्ञ को ऐसी सांगीतिक रचना का सृजन करना चाहिए, जो प्रान्तों एवं देश की सीमाओं की विभिन्नताओं के रहते हुए भी एक अव्यक्त सूत्र में मानव-हित तथा सहयोग के बिखरे हुए पल्लवों का बन्दनवार शिवं और कल्याण की भावना से कला-मन्दिर के चारों ओर बाँध सकने योग्य हो। इस रम्य आदर्श की पूर्ति तभी हो सकती है, जबकि आप अपने शास्त्रीय (थ्योरिटीकल) ज्ञान की अभिवृद्धि करेंगे; तभी आपका संगीत शाश्वत जीवन का आकाश-दीप बन सकेगा; तभी आप ऐसे संगीत का सृजन कर सकेंगे, जो आपकी दृष्टि को सर्वव्यापी बना सके; संकीर्णता के घने कुहरे को काट सके। आज हमारे सामने एक ही ध्वनि, एक ही रूप, बदलते हुए सुन्दर आकारों में रखा जाता है। एक ही रचना को या एक ही राग को विभिन्न प्रकार के रंग-बिरंगे परिधान पहनाए जाते हैं; जैसे विभाकर की एक दीप्त किरण रक्त वातायन के रंगीन शीशों से प्रसूत होकर अवनि के विशाल अंचल पर इन्द्रधनुष अंकित कर रही हो! जिसमें कोई स्थायित्व नहीं होता, जिसमें आखों को चौंधियानेवाली चमक तो अवश्य होती है, लेकिन आत्मा को आलोकित करनेवाला दिव्य तेज नहीं! संगीतकारों की यह परिस्थिति वास्तविक ज्ञान के अभाव में हो गई है। इधर हमारे संगीतज्ञ अपने वास्तविक ज्ञान के अभाव में कुछ इधर-उधर भटक गए हैं और इन भटके हुओं का झुकाव पश्चिमी संगीत की ओर हो गया है। पश्चिम के यथार्थवादी सांगीतिक साहित्य ने हमारे सांगीतिक व्यक्तित्व को प्रच्छन्न कर ही लिया है, किन्तु साथ ही हम संगीत की विभिन्न मर्यादाओं को लाँघकर उच्छृङ्खलता के विशाल खँडहर में भी

जा गिरे, इसलिए हम राष्ट्र, वर्ग तथा सम्प्रदाय में प्रेम के सरस गीतों को गुञ्जित न कर सके और न हम आज की भौतिकता के दामन से स्वार्थ एवं स्पर्धा के अस्तित्व को मिटा सके। कहने का तात्पर्य यह नहीं कि आप अपने संगीत का सृजन संकीर्णता की परिधि में करें ! ऐसा अर्थ आप कदापि न लगाएँ। लेकिन अपनी मौलिकता के स्मृति-स्तम्भ पर विदेशी भावनाओं की पुष्पांजलि भी न चढ़ाएँ। हाँ, आप अपनी प्रतिभा की उपत्यका में सुव्यवस्थित ढंग से संगीत का राग इस प्रकार अलापें कि स्वर-लहरी में भारतीय झंकार हो और उस झंकार में अन्तरराष्ट्रीय संगीत का समन्वय हो। किन्तु समन्वय करते समय आप अपने जीवन की प्रबल धारा को विदेशी धरातल की ओर न मोड़ें, अपितु विदेशी जीवन की धारा को आप भारतीयता की पृष्ठभूमि पर प्रवाहित करना सीखें। दोनों धाराओं के समन्वय में भारतीय प्रतिभा सर्वोपरि रहे। यदि आपके अन्दर समन्वय-प्रतिभा का अभाव है, तो आप विदेशी संगीत की ओर कभी न देखिए, क्योंकि दोनों धाराओं को मिलाने के लिए बहुत उच्चकोटि की प्रतिभा की आवश्यकता है, जो कि बिना नियमित अध्ययन के प्राप्त नहीं हो सकती।

स्वतन्त्र भारत में संगीत का बड़ा महत्त्वपूर्ण स्थान है, अतएव आपको अपना सांगीतिक ज्ञान अधिक-से-अधिक मात्रा में बढ़ाना चाहिए। स्वतन्त्र भारत में ज्ञानवर्धन की अधिक आवश्यकता इसलिए भी है कि आपको विश्व के राष्ट्रों में अपनी सांस्कृतिक कला का प्रतिनिधित्व करना है। आजकल अन्य राष्ट्रों के सांस्कृतिक मण्डल अपने यहाँ आते हैं और अपने देश के दूसरे राष्ट्रों में जाते हैं। इन शिष्ट-मण्डलों का ध्येय तभी पूरा हो सकता है, जबकि इनके सदस्यगण उच्चकोटि के, प्रतिभाशील हों और वे अपनी अपूर्व प्रतिभा को अन्य राष्ट्र के नेताओं व कलाकारों के सम्मुख अभिव्यक्त कर सकें; तभी तो स्वतन्त्र भारत का सांस्कृतिक गौरव बढ़ेगा। इन्हीं सांस्कृतिक मान्यताओं पर एक राष्ट्र दूसरे राष्ट्र से मैत्री स्थापित करता है। इसलिए सांस्कृतिक थाती जिस देश की जितनी उच्च होगी, वह देश उतना ही अधिक दूसरे देशों को प्रभावित कर सकेगा। अत: अपने देश के मान और मर्यादा की रक्षा के लिए प्रत्येक संगीतकार का पवित्र कर्तव्य है कि वह पुस्तकालय रखने की आदत डाले।

स्वर-विज्ञान और संगीत

स्वर की विभिन्न धाराओं को सांगीतिक रूप देने के लिए स्वर की पूर्ण फिलोस्फी (तत्त्वज्ञान) समझ लेना पूर्ण आवश्यक है, क्योंकि बिना तत्त्व-ज्ञान को समझे आप उसका सांगीतिक रूप सुन्दर ढंग से प्रस्तुत नहीं कर सकते। स्वर के उच्चारण में दस प्रकार के मोड़ आते हैं। पहले मोड़ पर स्वर को शनैः शनैः प्रसारित करना चाहिए। दूसरे मोड़ पर प्रसारित किए हुए स्वर में गूँज भरनी चाहिए। तीसरे मोड़ पर गुञ्जित वायुमण्डल में गीतों के भावों का इस प्रकार सम्पादन करना चाहिए कि प्रत्येक भाव स्वर की गहराई में उपयुक्त हो जाए। चौथे मोड़ पर स्वर में घनत्व शक्ति स्थिर करनी चाहिए। पाँचवें मोड़ पर आरोह के लिए जितना भी अधिक हो सके, उतना अधिक स्वर को फैलाइए, जिससे सम्पूर्ण आरोह का दबाव पूर्णरूपेण बैठ जाए। छठे मोड़ पर स्वर-संधान करके गीत की प्रथम सीढ़ी बनाइए, जिससे आप गीत-सौन्दर्य को स्थित कर सकें और गीत-अभिलेखनकर्त्ता को इतना समय मिल जाए कि वह आपके स्वर-चित्र

की पूर्ण प्रतिलिपि कर सके। सातवें मोड़ पर अवरोह का प्रस्तुतीकरण करके थोड़े-से झटके के साथ स्वर को अधिक व्यापक बनाकर उसमें पुनः गूँज पैदा कीजिए। आठवें मोड़ पर गीत का दूसरा क्लाइमेक्स निर्माण कीजिए, जहाँ आपको स्वर का घनत्व इतना अल्प कर देना होगा, जिससे उसका सांगीतिक रूप सुन्दर बन सके। नवें मोड़ पर स्वर में इतने प्रवाह का आविर्भाव कीजिए कि उसकी गतिशीलता में गीत के भावों को स्वाभाविक रूप में आगे बढ़ने के लिए स्वस्थ वातावरण मिल जाए। अन्तिम, दसवें मोड़ पर स्वर का तीसरा क्लाइमेक्स बनाते हुए आरोह-अवरोह की दोनों गतियों को 'प्रल्पीस विन्दु' पर केन्द्रित कीजिए। प्रायः यह देखा जाता है कि गायक गीत गाते वक्त स्वर के उपर्युक्त रूपों से अनभिज्ञ होकर गाता है, जिससे उसके गाए हुए गीतों को अभिलेखित करने में अभिलेखनकर्ता को कठिनाई पड़ती है। उसकी सहूलियत के लिए आपका स्वर उसी दिशा में मोड़ना पड़ेगा, जैसा कि स्वर की शिल्पज्ञता आपको विवश करे। स्वर की शिल्पज्ञता की पूरी थ्योरी आपको जाननी चाहिए। यह थ्योरी लगभग वही है, जो आपको ऊपर निर्दिष्ट की जा चुकी है। स्वर-विज्ञान की इस व्यापक थ्योरी से गाए गीत पर गायक को अधिक परिश्रम एवं सावधानी बरतनी होगी। प्रारम्भ में कुछ बाधाएँ अवश्य आ सकती हैं, किन्तु जब वह परिस्थिति का अभ्यस्त हो जाएगा, तब उसको यही कार्य सरल हो जाएगा। वास्तव में स्वर की अनेक प्रक्रियाएँ हैं। इन प्रक्रियाओं की अनेक उपप्रक्रियाएँ भी हैं, जिसमें से मुख्य ये हैं—'कीवल्य', 'चीरणेल्य', 'माणील्य'। 'कीवल्य' में स्वर का अर्द्ध घनत्व होता है, 'चीरणेल्य' में स्वर का पूर्ण घनत्व बनकर रुपए-जैसी टंकार होने लगती है, जिससे स्वर में स्पष्टता, स्वच्छन्दता पूर्णरूपेण आ जाती है और 'माणील्य' में स्वर के तीन संयुक्त घुमाव होते हैं, जिनको आप दीपक राग में सुगमता से अभिव्यक्त कर सकते हैं। 'माणील्य' का प्रयोग विशेष रागों में ही होता है, हर स्थान पर लागू नहीं हो सकता।

गोष्ठियाँ और संगीत

सांगीतिक जीवन को प्रभावशाली एवं गौरवपूर्ण बनाने के लिए गोष्ठियों का भी अपना मूल्य है। इनके अभाव में संगीतकार की प्रतिभा ऐसी मालूम पड़ती है, मानो किसी सरोवर को चारों तरफ से सीमित कर दिया गया हो तथा जिसमें पानी के बहाव का कोई साधन न हो और न पानी के आने का। तो बन्द पानी की क्या दशा होगी? यही कि कुछ दिनों में सड़ जाएगा और उसमें बदबू पैदा हो जाएगी। इसी प्रकार आपका भी यही हाल हो सकता है। यदि आप अपनी गतिशीलता को सीमित करके चारों तरफ के आवागमन से उसे अवरुद्ध कर लेंगे, तो फिर आपके अन्दर प्रवाह नहीं रहेगा और जब मनुष्य की प्रतिभा का प्रवाह समाप्त हो जाता है तो फिर वह पतन के गर्त में गिरता चला जाता है और एक दिन वह पूर्ण रूप से गिर जाता है। फिर वहाँ से उठना असम्भव-सा हो जाता है। गोष्ठियाँ जीवन के झाड़-झंखाड़ों का विनाश करती हैं और जो जड़ता का कुहरा जीवन के इर्द-गिर्द आच्छादित हो जाता है, उसको छितरा देती हैं तथा जीवन को उत्साह, स्फूर्ति और नवीन भावनाओं से परिपूर्ण कर देती हैं।

गोष्ठियाँ संगीतकारों के लिए विशेष उपयोगी हैं, क्योंकि गोष्ठियों के अवसर पर अनेक कलाकारों का मिलन होता है, विचार-विमर्श होता है और होता है कला का परस्पर आदान-प्रदान; जिससे संगीतकारों के वातावरण में एक नूतन चेतना का सृजन हो जाता है, जो कि उनके विकास का प्रतीक बनती है। संगीतकारों को गोष्ठियों में गाने में बिलकुल संकोच नहीं करना चाहिए। यदि वे संकोचवश उनमें शामिल नहीं होते, तो उनके सांगीतिक ज्ञान की परिधि सीमित रह जाएगी। सफल संगीतज्ञ के लिए समय-समय पर गोष्ठियों में भाग लेते रहना उसके विकास का प्रकाश-दीप है। ब्रिटेन के विख्यात संगीतज्ञ मिस्टर ईलविन उल्फ ने सफल संगीतज्ञ बनने के उपकरणों में लिखा है—"वे व्यक्ति सौभाग्यशाली हैं, जिनको अधिक-से-अधिक गोष्ठियों में शामिल होने का सुअवसर प्राप्त होता रहता है, क्योंकि उनके जीवन का विकास कला की सही दिशा की ओर होगा। वे कला के शाश्वत स्वरूप का निर्माण करने में पूर्ण सफल होंगे। वास्तव में गोष्ठियाँ संगीतज्ञों के लिए संजीवनी शक्ति कही जाएँ, तो अतिशयोक्ति नहीं होगी। विश्व के अनेक संगीतज्ञों ने सिर्फ गोष्ठियों में शामिल होने के बल पर ही संगीत के क्षेत्र में सफलता उपलब्ध की है; जैसे मलाया के मिस्टर थीवन्स, न्यूयार्क के मिस्टर रेडयोट और स्वीडन के मिस्टर ग्रीनविस। लेकिन इन गोष्ठियों में आपको स्पष्ट हृदय एवं खुली हुई आँखों से जाना चाहिए, ताकि आप वहाँ के महत्त्वपूर्ण सांगीतिक उपादानों एवं वातावरण को ग्रहण करने में पूर्ण सफल हों। सिर्फ शामिल होने से ही काम न चलेगा। जबतक कि आप सतर्क होकर हर चीज को अवलोकन करके प्राप्त न करेंगे, तबतक नग्न हृदय एवं मस्तिष्क से जाकर कुछ भी लाभ नहीं हो सकता। और फिर एक संगीतज्ञ को तो और भी सतर्क एवं तीव्र बुद्धि का होना चाहिए, ताकि वह संगीत की प्रत्येक हलचल को, प्रत्येक चहल-पहल को सुगमता से पकड़ सके। अगर आप सफल संगीतज्ञ बनना चाहते हैं, तो आपको समय-समय पर गोष्ठियों में अवश्य सक्रिय भाग लेना होगा।"

और देखिए, फ्रान्स के महान् कलाकार मिस्टर वानडीविस क्या कहते हैं—"जब सांगीतिक शृंखला में अस्त-व्यस्तता आ जाती है, जब सांगीतिक जीवन विशृंखल हो जाता है, जब सांगीतिक तथ्यों में परस्पर एकसूत्रता नहीं रहती, तब ये गोष्ठियाँ संगीत के रूप में अनुरूपता लाती हैं और उसको मनोरम बनाती हैं। जिस प्रकार बिना लहरों के सागर का सौन्दर्य तुच्छ है, क्योंकि बिना लहरों के सागर में गतिशीलता नहीं रहती, जो कि उसका जीवन है, ठीक उसी प्रकार गोष्ठियाँ संगीतकार के विशाल जीवन में लहरों के समान हैं, जो उसके जीवन में प्रवाह लाती रहती हैं। बिना प्रवाह के जीवन का क्या मूल्य ? प्रवाहपूर्ण जीवन ही जीवन है।"

इन गोष्ठियों को आप संगीतकारों के जीवन का 'मार्ग-चिह्न' भी कह सकते हैं, क्योंकि यहीं से उनको अपनी कला के सन्तुलन का सही पता चलता है। क्योंकि यहाँ उनकी कला कसौटी पर चढ़ाई जाती है, और तब पता लगता है कि उनकी कला ओजपूर्ण है अथवा नहीं। कसौटी पर चढ़ने के बाद ही किसी चीज के खरे-खोटे होने का ज्ञान हो सकता है, उससे पूर्व नहीं। जब आपको अपनी कला की परख पूर्ण रूप से ज्ञात हो जाए, तब आप अपना सही कदम उठा सकते हैं और फिर

आप कला की सही दिशा की ओर बढ़ सकते हैं। गोष्ठियों से कला का परिष्कार एवं सुन्दरतम रूप निर्मित होता रहता है।

गोष्ठियों में शामिल न होने से आपको यह नहीं मालूम पड़ सकता कि आप कितने पानी में हैं ? आपकी कला में क्या-क्या खामियाँ हैं और उनको कैसे ठीक किया जा सकता है। वहाँ आपको कुछ मौलिक सुझाव भी मिल सकते हैं। लोकप्रियता एवं कीर्ति का उपार्जन बिना गोष्ठियों के नहीं हो सकता। कलाकार कला की साधना जन-समाज को नव-सन्देश प्रदान करने के लिए करता है। अगर आप इन सांगीतिक उत्सवों में शामिल नहीं होंगे, तो अपने नव-सन्देश को जनता-जनार्दन तक कैसे पहुँचा सकते हैं और कैसे सामान्य लोग आपकी कला से लाभ उठा सकते हैं ? लोक-जीवन को सुन्दरतम बनाने में भी ये गोष्ठिआँ पूर्ण योग देती हैं। जहाँ ये कलाकारों को सफलता की देदीप्यमान मंजिल की ओर प्रेरित करती हैं, वहाँ दूसरी ओर ये लोक-जीवन में भी आशा और विश्वास का जीवन-प्रकाश फैलाती हैं और उनके अन्धकार को नष्ट करने में भी पूर्ण योग देती हैं। संगीत की अभिवृद्धि में गोष्ठियों का अपरिमित मूल्य है, जिसका हम सहज में अंकन नहीं कर सकते।

अन्त में आपसे अनुरोध है कि सफल संगीतज्ञ बनने के लिए 'पुस्तकालय और संगीत' का ध्यान रखिए और फिर गोष्ठियों तथा संगीत को अनुपातिक ढंग से अपनाने के लिए सक्रिय कदम उठाइए ! 'स्वर-विज्ञान' का समझना भी अनिवार्य है, ये तीनों तथ्य संगीतज्ञ के लिए महान् पुष्टकारी एवं शक्तिशाली हैं तथा जीवन को प्रदीप्त करनेवाले हैं।

भारतीय संगीत का इतिहास

संगीत-कला की उत्पत्ति कब और कैसे हुई, इस विषय पर विद्वानों के विभिन्न मत हैं, जिनमें से कुछ का उल्लेख इस प्रकार है :—

(१) संगीत की उत्पत्ति आरम्भ में वेदों के निर्माता ब्रह्माजी द्वारा हुई। ब्रह्माजी ने यह कला शिवजी को दी और शिव के द्वारा देवी सरस्वती को प्राप्त हुई। सरस्वतीजी को इसीलिए 'वीणा-पुस्तक-धारिणी' कहकर संगीत और साहित्य की अधिष्ठात्री माना है। सरस्वतीजी से संगीत-कला का ज्ञान नारदजी को प्राप्त हुआ। नारदजी ने स्वर्ग के गन्धर्व, किन्नर एवं अप्सराओं को संगीत-शिक्षा दी। वहाँ से ही भरत, नारद और हनुमान् आदि ऋषि संगीत-कला में पारंगत होकर भू-लोक (पृथ्वी) पर संगीत-कला के प्रचारार्थ अवतीर्ण हुए।

(२) एक ग्रन्थकार के मतानुसार नारदजी ने अनेक वर्षों तक योग-साधना की, तब महादेवजी ने उन्हें प्रसन्न होकर संगीत-कला प्रदान की। पार्वतीजी की शयन-मुद्रा को देखकर शिवजी ने उनके अंग-प्रत्यंगों के आधार पर रुद्रवीणा बनाई और अपने पाँच मुखों से पाँच रागों की उत्पत्ति की, तत्पश्चात् छठा राग पार्वती के श्रीमुख से उत्पन्न हुआ। शिवजी के पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण और आकाशोन्मुख होने से क्रमश: भैरव, हिंडोल, मेघ, दीपक और श्री राग प्रकट हुए तथा पार्वती द्वारा कौशिक राग की उत्पत्ति हुई। 'शिवप्रदोष' स्तोत्र में लिखा है कि त्रिजगत् की जननी गौरी को स्वर्ण-सिंहासन पर बैठाकर प्रदोष के समय शूलपाणि शिव ने नृत्य करने की इच्छा प्रकट की। इस अवसर पर सब देवता उन्हें घेरकर खड़े हो गए और उनका स्तुति-गान करने लगे। सरस्वती ने वीणा, इन्द्र ने वेणु तथा ब्रह्मा ने करताल बजाना आरम्भ किया, लक्ष्मीजी गाने लगीं और विष्णु भगवान् मृदंग बजाने लगे। इस नृत्यमय संगीतोत्सव को देखने के लिए गन्धर्व, यक्ष, पतग, उरग, सिद्ध, साध्य, विद्याधर, देवता, अप्सराएँ आदि सभी उपस्थित थे।

(३) 'संगीत-दर्पण' के लेखक दामोदर पंडित (सन् १६२५ ई०) के मतानुसार भी संगीत की उत्पत्ति ब्रह्माजी से ही आरम्भ होती है। उन्होंने लिखा है :—

द्रुहिणेन यदन्विष्टं प्रयुक्तं भरतेन च।
महादेवस्य पुरतस्तन्मार्गाख्यं विमुक्तदम्॥

अर्थात्—ब्रह्माजी (द्रुहिण) ने जिस संगीत को शोधकर निकाला, भरत मुनि ने महादेवजी के सामने जिसका प्रयोग किया तथा जो मुक्तिदायक है, वह 'मार्गी' संगीत कहलाता है।

इस विवेचन से प्रथम मत का कुछ अंशों में समर्थन होता है। आगे चलकर इसी पंडित ने सात स्वरों की उत्पत्ति पक्षियों द्वारा इस प्रकार बताई है :—

मोर से षड्ज, चातक से ऋषभ, बकरा से गांधार, कौवा से मध्यम, कोयल से पंचम, मेंढक से धैवत और हाथी से निषाद स्वर की उत्पत्ति हुई।

(४) फारसी के एक विद्वान् का मत है कि हजरत मूसा जब पहाड़ों पर घूम-घूमकर वहाँ की छटा देख रहे थे, उसी वक्त गैब से एक आवाज आई (आकाशवाणी हुई) कि 'या मूसा हक़ीक़ी, तू अपना असा (एक अस्त्र, जो फकीरों के पास होता है) इस पत्थर पर मार!' यह आवाज सुनकर हजरत मूसा ने अपना असा जोर से उस पत्थर पर मारा, तो पत्थर के सात टुकड़े हो गए और हरएक टुकड़े में से पानी की धारा अलग-अलग बहने लगी। उसी जल-धारा की आवाज से अस्सलामलेक हजरत मूसा ने सात स्वरों की रचना की, जिन्हें 'सा रे ग म प ध नि' कहते हैं।

(५) एक अन्य फारसी-विद्वान् का कथन है कि पहाड़ों पर 'मूसीकार' नाम का एक पक्षी होता है, जिसकी नाक में सात सूराख बाँसुरी की भाँति होते हैं। उन्हीं सात सूराखों से सात स्वर ईजाद हुए।

(६) पाश्चात्य विद्वान् फ्रायड के मतानुसार संगीत की उत्पत्ति एक शिशु के समान मनोविज्ञान के आधार पर हुई। जिस प्रकार बालक रोना, चिल्लाना, हँसना आदि क्रियाएँ मनोविज्ञान की आवश्यकतानुसार स्वयं सीख जाता है, उसी प्रकार संगीत का प्रादुर्भाव मानव में मनोविज्ञान के आधार पर स्वयं हुआ।

(७) जेम्स लोंग के मतानुयायियों का भी यही कहना है कि पहले मनुष्य ने बोलना सीखा, चलना-फिरना सीखा और फिर शनैः-शनैः क्रियाशील हो जाने पर उसके अन्दर संगीत स्वतः उत्पन्न हुआ।

इस प्रकार संगीत की उत्पत्ति के विषय में विभिन्न मत पाए जाते हैं। इनमें कौन-सा मत ठीक है, यह कहना कठिन ही है, अतः संगीत-कला का जन्म कब हुआ, कैसे हुआ, इसपर अपना कोई निर्णय न देकर हम आगे बढ़ना ही उचित समझते हैं:—

प्राचीन ग्रन्थों में संगीत के चार मुख्य मत पाए जाते हैं—(१) शिव-मत या सोमेश्वर मत, (२) कृष्ण-मत या कल्लिनाथ-मत, (३) भरत-मत और (४) हनुमन्नमत।

संगीत के इतिहास-काल का विभाजन

भारतीय संगीत के इतिहास को निम्नांकित ४ भागों में विभक्त किया जा सकता है:—

(१) अति प्राचीन काल (वैदिक काल)—२००० ईसा-पूर्व से १००० ईसा-पूर्व तक।

(२) प्राचीन काल (वैदिक सांस्कृतिक परम्परा समाप्त हो जाने के बाद)—१००० ईसा-पूर्व से सन् ८०० ई० तक।

(३) मध्य-काल (मुसलिम-काल)—८०० ई० से १८०० ई० तक।

(४) आधुनिक काल—१८०० ई० से वर्तमान तक।

अति प्राचीन काल (वैदिक काल)

[२००० ईसा-पूर्व से १००० ईसा-पूर्व तक]

वैदिक संगीत

वैदिक काल में संगीत का प्रचार था, इसका प्रमाण हमें वेदों में भली प्रकार मिलता है। ऋग्वेद में मृदग, वीणा, वंशी, डमरु आदि वाद्य-यन्त्रों का उल्लेख मिलता है और सामवेद तो संगीतमय है ही। कहा जाता है कि साम-गान में पहले केवल तीन स्वरों का प्रयोग होता था, जिनको उदात्त, अनुदात्त और स्वरित कहते थे। आगे चलकर एक-एक करके स्वर और बढ़ते गए और इस वैदिक काल में ही साम-गान सप्त स्वरों में होने लगा। इसका प्रमाण 'सप्त स्वरास्तु गीयन्ते सामभिः सामगैर्बुधैः' माण्डूक्य-शिक्षा की इस पंक्ति से भी मिलता है।

पाणिनि-शिक्षा तथा नारदीय शिक्षा में निम्नलिखित श्लोक मिलता है। इसके आधार पर सप्त स्वर, उनके उदात्त, अनुदात्त और स्वरित के अन्तर्गत इस प्रकार आते थे :—

उदात्ते निषादगान्धारौ अनुदात्त ऋषभधैवतौ ।
स्वरितप्रभवा ह्येते षड्जमध्यमपंचमा ॥

अर्थात्—

उदात्त	अनुदात्त	स्वरित
नि ग	रे ध	सा म प

याज्ञवल्क्य-शिक्षा में भी इसी प्रकार का वर्गीकरण मिलता है।

वैदिक काल में गायन के साथ-साथ नृत्य-कला भी प्रचलित थी, इसका प्रमाण ऋग्वेद (५।३३।६) में आया है—'नृत्यमनो अमृता'। लिंग-पुराण के अनुसार शिव के प्रधान गण नन्दिकेश्वर थे। इन्होंने 'भरतार्णव' नामक एक विशाल ग्रन्थ नृत्य-कला पर लिखा था। बाद में इसका संक्षिप्तीकरण 'अभिनय-दर्पण' में हुआ। नृत्य करती हुई अनेक प्राचीन मूर्तियाँ भी इसका प्रमाण देती हैं कि वैदिक काल में नृत्य-कला प्रचलित थी। देवताओं द्वारा सोमरस-पान करके नृत्य करने की प्रथा से भी संगीत और नृत्य की प्राचीनता का समर्थन होता है।

प्राचीन काल

[१००० ईसा-पूर्व से सन् ८०० ई० तक]

पौराणिक संगीत

इसके उपरान्त पौराणिक काल आता है। इस युग में संगीतज्ञ चरित्र से हटता जा रहा था। उसमें संयम का अभाव होता जा रहा था। उच्छृंखलता बढ़ती जा रही थी। फिर भी संगीतकारों का जीवन सन्तुलित रूप से चल रहा था। विद्वानों का कथन है कि 'वैदिक काल में संगीत की आन्तरिक सुषमा का जैसा उभार हमें प्राप्त होता है, वैसा इस काल में नहीं होता। इस काल में संगीत का पुष्प प्रस्फुटित अवश्य

हुआ, किन्तु वह अपना सौरभ विस्तीर्ण क्षेत्र में न फैला सका'। इस युग के संगीतकार, वैदिक युग के संगीतकारों की भाँति उदार दृष्टिवाले नहीं थे। संगीतज्ञों के मस्तिष्क संकीर्ण होते जा रहे थे। वैदिक युग में जो संगीत यज्ञों में फैल चुका था, वह अब व्यक्तिगत कारा में बन्द हो गया।

तैत्तिरीय उपनिषद्, ऐतरेय उपनिषद्, शतपथ ब्राह्मण आदि ग्रन्थों में संगीत का यथेष्ट दिग्दर्शन है। इनके अतिरिक्त याज्ञवल्क्य-रत्न-प्रदीपिका, प्रातिभाष्य-प्रदीप और नारदीय शिक्षा प्रभृति ग्रन्थों में भी संगीत का परिचय मिलता है। ऋक्-प्रतिशाख्य (लगभग ईसा से ४०० वर्ष पूर्व) ग्रन्थों में भी सात स्वरों का वर्णन प्राप्त होता है।

इनके अतिरिक्त हरिवंश-पुराण में सप्त स्वरों, ग्राम-रागों, तीनों स्थान (मन्द्र, मध्य, तार), मूर्च्छना, नृत्य, नाट्य और वाद्यों का वर्णन प्राप्त होता है। इसी प्रकार मार्कण्डेय तथा वायु-पुराणों में षड्जादिक सात स्वरों, तीन ग्राम और मूर्च्छनाओं आदि के अतिरिक्त वीणा, दर्दुर, पणव, पुष्कर, मृदंग और देव-दुन्दुभि का उल्लेख मिलता है। उर्वशी, हेमा, रम्भा, मेनका, मिश्रकेशी, तिलोत्तमा आदि प्रसिद्ध नर्तकियों के नाम भी हमें इस काल में प्राप्त होते हैं, जिनसे यह स्पष्ट होता है कि नृत्य-कला भी इन दिनों उच्च स्तर पर थी।

बौद्ध-कालीन संगीत

ईसा के ५६३ वर्ष पूर्व बुद्ध भगवान् का जन्म हुआ था। इस काल के संगीत में जीवन की व्यापकता का समावेश अधिक हो गया। अब वही संगीतज्ञ सफल समझा जाता था, जोकि अपने संगीत-प्रदर्शन से मानव को समस्त विकारों से ऊपर उठा सके। भगवान् बुद्ध के सम्पूर्ण सिद्धान्तों को गीतों की लड़ियों में पिरो दिया गया था। उनका सुन्दर ढंग से गायन करके गाँव-गाँव और नगर-नगर की सुप्त जनता को जागरण के भव्य पथ पर लाया गया। इस काल में वीणा पर ही गायन होता था। शास्त्रीय संगीत अपने पूर्ण यौवन पर था। संगीत पर जो वासना की धुन्ध छाई हुई थी, वह विनष्ट हो गई। इस युग में संगीत पर सुन्दर ग्रन्थ भी लिखे गए थे।

कालिदास-कालीन संगीत

इसी काल में महाकवि कालिदास (४०० ई०) द्वारा संगीत और कविता का प्रचार चारों ओर हो चुका था। राज-दरबारों में गायक-वादक सम्मानित होने लगे थे। कालिदास ने अपनी रचनाओं में संगीत का पुट देकर आश्चर्यजनक प्रगति की। उस समय कविता और संगीत के सम्मिश्रण से संगीत में एक नई चेतना जाग्रत् करने का श्रेय महाकवि कालिदास को ही है।

रामायण और महाभारत-कालीन संगीत

हमारे प्रसिद्ध ग्रन्थ 'रामायण' और 'महाभारत' भी इसी काल में लिखे गए। महाभारत-काल ५०० ईसा-पूर्व से २०० ईसवी तक और रामायण-काल ४०० ईसा-पूर्व से २०० ईसवी तक का माना जाता है।

रामायण में एक वर्णन के अनुसार जब लक्ष्मणजी सुग्रीव के अन्त:पुर में प्रवेश करते हैं, तो वहाँ वीणा-वादन के साथ शुद्ध गायन सुनते हैं। रावण को भी संगीत-शास्त्र का प्रकांड विद्वान् बताया गया है। इसी प्रकार महाभारत में भी सात स्वरों तथा गान्धार ग्राम का वर्णन मिलता है। इन दोनों ही ग्रन्थों में संगीत तथा वाद्य-यन्त्रों का विशेष उल्लेख मिलता है। भेरी, दुन्दुभि, मृदंग, घट, डिंडिम, मुद्दुक, आदम्बर, वीणा आदि वाद्यों का उल्लेख हम रामायण में देखते हैं। इससे विदित होता है कि महाभारत और रामायण-काल में भी संगीत-कला प्रचार में रही। वाल्मीकि ऋषि ने ईसा से लगभग ४०० वर्ष पूर्व रामायण को लिखा था। विद्वानों का कथन है कि इस काल में संगीतज्ञों की प्रतिष्ठा वैदिक काल की भाँति ही थी। विवाहोत्सवों पर तथा युद्धों में विजय प्राप्त करके आने पर दुन्दुभि बजाकर स्वागत किया जाता था।

वाल्मीकिजी लिखते हैं कि धनुष के तोड़े जाने पर आकाश में देवताओं की दुन्दुभि बज उठी। अप्सराएँ गायन तथा नृत्य करने लगीं। रंग-बिरंगे फूलों की वर्षा होने लगी। सुन्दरी और सयानी सखियाँ मंगलचार के गीत गा रही थीं। जब सीताजी ने रामचन्द्रजी के गले में जयमाला पहनाई तो उस समय भी संगीत का आयोजन किया गया था। सखियाँ मंगल गाने लगीं और मंगल-गान के साथ स्वयंवर की प्रथा पूर्ण हुई।

महाभारत-काल में भगवान् कृष्ण संगीत के महान् पण्डित हो गए हैं। इन्हीं दिनों रासलीला-नृत्य का निर्माण हुआ था। सामान्य लोग भी संगीत से उतना ही प्रेम रखते थे, जितना कि उच्चवर्गीय समाज। महिलाएँ पौराणिक काल से भी अधिक गाने और नाचने की अनुरागिणी हो गई थीं। इस समय लोगों को विश्वास हो गया था कि काम करते हुए संगीत का प्रयोग करने से काम की थकावट मानव के ऊपर अपना आधिपत्य नहीं जमा पाती। इसलिए इस काल के लोग प्रत्येक काम को गाते-बजाते हुए किया करते थे।

विद्वानों का कथन है कि महाभारत-काल का संगीत उत्तमता की पराकाष्ठा पर पहुँच चुका था। श्री कृष्ण (जिन्हें हिन्दू लोग भगवान् मानते हैं) की वंशी में विचित्र जादू था। श्री कृष्ण जैसा वंशी-वादक आज तक विश्व में कहीं उत्पन्न नहीं हुआ।

श्री कृष्ण के अतिरिक्त अर्जुन भी संगीत के महान् विद्वान् थे। जब वे एक वर्ष तक अज्ञात अवस्था में रहे तो विराट राजा के यहाँ, वृहन्नला नाम रखकर, उनकी पुत्री उत्तरा को संगीत-शिक्षा दी थी। उन्हें कण्ठ-संगीत तथा वीणा-वादन पर पूर्ण अधिकार था। एक विद्वान् का कहना है कि 'महाभारत-काल के वीर अर्जुन को हम नहीं भूल सकते। महाभारत-कालीन संगीत के विकास में इस महान् वीर का विशेष हाथ रहा।' कहते हैं कि जिस प्रकार श्री कृष्ण वंशी बजाने में अपना कोई प्रतिद्वन्द्वी नहीं रखते थे, ठीक उसी प्रकार वीर अर्जुन भी वीणा-वादन में उस समय अपना कोई प्रतिद्वन्द्वी नहीं रखते थे। वह वीणा पर ही गाते थे।

इस काल के संगीत ने श्री कृष्ण के द्वारा वही उच्च स्तर प्राप्त कर लिया था, जोकि पौराणिक काल से पूर्व वैदिक काल में था। पौराणिक काल के संगीत का स्तर

अब ऊँचा उठ चुका था। संगीत ने समाज के स्तर को किसी भी दशा में गिरने नहीं दिया था। समाज दिन-प्रति-दिन उठता जा रहा था। इस काल का संगीत आदर्श संगीत बन गया।

भरत-कृत 'नाट्य-शास्त्र'

अनेक व्यक्तियों के मत से 'नाट्य-शास्त्र' के रचयिता भरत का काल भी यही है, जबकि कुछ लोगों ने भरत को चौथी शताब्दी का माना है और कुछ के मत से भरत का काल ईसा से बहुत पूर्व है; क्योंकि भरत एक गोत्रवाची नाम हो गया था। नट और अभिनेताओं को 'भरत' कहा जाने लगा था। पाणिनि के ग्रन्थ में भी भरत की चर्चा मिलती है। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि आदि-भरत कोई अवश्य रहे होंगे। वाल्मीकि-रामायण में भरत के कुछ सूत्रों का प्रतिपादन मिलता है।

नाट्य-शास्त्र के छह अध्याय (२८ से ३३ तक) संगीत से सीधा सम्बन्ध रखते हैं। इनमें अट्ठाईसवें अध्याय में वाद्यों के चार भेद, स्वर, श्रुति, ग्राम, मूर्च्छनाएँ, अठारह जातियाँ, उनके ग्रह, अंश, न्यास इत्यादि का विवरण है। उन्तीसवें अध्याय में जातियों का रसानुकूल प्रयोग तथा विभिन्न प्रकार की वीणाएँ और उनकी वादन-विधि दी गई है। तीसवें अध्याय में सुषिर वाद्यों का वर्णन, इकत्तीसवें में कला, लय और विभिन्न तालों का विवरण, बत्तीसवें में ध्रुव के पाँच भेद, छन्द-विधि, गायक-वादकों के गुण दिए हैं और तेतीसवें में अवनद्ध वाद्यों की उत्पत्ति, भेद, वादन-विधि, इनके वादन की अठारह जातियाँ और वादकों के लक्षणों का वर्णन है।

इस प्रकार २८ व २९-वें अध्याय तो बहुत ही महत्त्व के हैं। इनके अतिरिक्त छठे अध्याय में रस का लक्षण और व्याख्या, भाव का लक्षण और व्याख्या, आठ रसों का उनके उपकरणों सहित वर्णन, रसों के देवता और वर्ण तथा सातवें में भाव, विभाव, अनुभाव आदि की सामान्य व्याख्या, स्थायी, व्यभिचारी और सात्त्विक भावों का विवरण दिया हुआ है। १९-वें अध्याय में स्वरों का रसों में विनियोग, तीन स्थान, काकु, अलंकार आदि का वर्णन है। इस आधार पर 'नाट्य-शास्त्र' के नौ अध्याय संगीत के विद्यार्थियों के लिए अत्यन्त उपयोगी हैं।

भरत के पुत्र दत्तिल द्वारा लिखित 'दत्तिलम्' ग्रन्थ का उल्लेख भी मिलता है, यह ग्रन्थ पाँचवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध का कहा जाता है, जबकि ईसा की दूसरी शताब्दी में दत्तिल का एक शिलालेख मिलता है। दत्तिल ने भरत के सूत्रों का ही प्रतिपादन किया है।

मतंग-कृत 'बृहद्देशी'

८-वीं शताब्दी में मतंग मुनि-प्रणीत 'बृहद्देशी' ग्रन्थ मिलता है, जिसमें ग्राम और मूर्च्छना का विस्तृत रूप से उल्लेख किया गया है। मतंग का कथन है कि रागों के सम्बन्ध में न तो भरत ने और न अन्य विद्वानों ने ही कुछ कहा है। इसलिए रागों के विषय में जैसा प्रचलित है, उसी के अनुसार वे उनके लक्षण बताते हैं। इस आधार पर यह अनुमान लगाया जाता है कि मतंग के समय में रागों का प्रचार

अच्छी प्रकार से समाज में हो चुका था। मतंग ने उन्हीं प्रचलित अर्थात् देशी रागों के सिद्धान्तों को स्पष्ट करने के लिए इस ग्रन्थ को लिखा। इसके नाम से ही यह स्पष्ट होता है कि इस ग्रन्थ में 'बृहद्' रूप से 'देशी' रागों की व्याख्या की गई है। देशी संगीत साधारण लोगों, स्त्रियों, बच्चों आदि समाज के सभी व्यक्तियों को प्रिय था, इसीलिए इसका नाम 'देशी संगीत' पड़ा। इतना हो नहीं, ऐसा प्रतीत होता है कि मतंग के समय में न केवल जातियों का स्थान रागों ने ले लिया था, वरन् अनेक प्राचीन रागों के स्थान पर कुछ नवीन राग भी प्रचलित हो गए थे।

मतंग के मतानुसार, जातियों से ही ग्राम-रागों की उत्पत्ति हुई है तथा स्वर और श्रुतियों से जातियों का जन्म हुआ है। 'राग-जाति' की परिभाषा देते समय मतंग लिखते हैं कि 'स्वरों का ऐसा आकर्षक मेल, जो चित्त को प्रसन्नता दे, 'राग' कहलाता है।' जातियों के विषय में उन्होंने वे ही दस लक्षण (ग्रह, अंश, तार, मन्द्र, षाडव, औडुव, अल्पत्व, बहुत्व, न्यास और अपन्यास), जो आज भी रागों के हैं, बताए हैं।

अनुमान किया जाता है कि जाति-गायन भरत मुनि से पूर्व भी प्रचलित था, जो भरत-काल में अपने पूर्ण उत्कर्ष पर था। कारण कि मतंग के मतानुसार मध्यम-ग्राम की जातियों का प्रयोग नाटक के मुख अर्थात् आरम्भ में, षड्ज-ग्राम की जातियों का प्रयोग प्रति-मुख (नाटक प्रारम्भ होने के उपरान्त) में, साधारित जातियों का प्रयोग नाट्य के विकास के समय में और पंचम जाति का प्रयोग विमर्श अर्थात् बात-चीत के समय में किया जाता था। मतंग ने सर्वप्रथम संगीत के साहित्य में 'राग' शब्द का प्रयोग किया है। इन्होंने लिखा है कि इनसे पूर्व जातियों के पाँच भेद थे, जिन्हें क्रम से शुद्धा, भिन्ना, वेसरा, गौड़ी और साधारित कहते थे। परन्तु इनके समय में वे सात हो गए, जिन्हें क्रम से शुद्धा, भिन्ना, गौड़ी, राग-जाति, साधारणी, भाषा-जाति और विभाषा-जाति कहते हैं। इनके मतानुसार, शुद्धा और भिन्ना में प्रत्येक के आठ-आठ भेद हैं। इसी प्रकार गौड़ी के तीन, रागों के आठ, साधारणी के सात, भाषा के सोलह और विभाषा के बारह भेद हैं। इन्होंने अपनी जातियों के नाम भी भिन्न दिए हैं।

नारद-कृत 'नारदीय शिक्षा'

सातवीं शताब्दी के लगभग 'नारदीय शिक्षा' नामक एक ग्रन्थ नारद का लिखा हुआ मिलता है। यहाँ पर पाठकों को यह बता देना भी उचित होगा कि यह, वह नारद नहीं हैं, जो देवर्षि नारद के नाम से प्रसिद्ध हैं, वरन् यह अपने समय के दूसरे ही नारद हैं। इस ग्रन्थ में भी सामवेदीय स्वरों को विशेष महत्त्व देते हुए सात ग्राम-रागों का वर्णन किया गया है, जिनके नाम इस प्रकार हैं:—

१. षाडव, २. पंचम, ३. मध्यम, ४. षड्ज-ग्राम, ५. साधारित, ६. कैशिक मध्यम और ७. मध्यम-ग्राम।

सातवीं और आठवीं शताब्दियों में दक्षिण-भारत में भक्ति-आन्दोलन का विशेष जोर रहा, अतः भक्ति और संगीत के सामंजस्य द्वारा जगह-जगह कीर्तन और भजन गाए जाने लगे। इस प्रकार धार्मिक भावना का बल पाकर इस काल में संगीत का यथेष्ट प्रचार हुआ।

नारद-कृत 'संगीत-मकरन्द'

आठवीं शताब्दी में नारद का एक और ग्रन्थ 'संगीत-मकरन्द' प्रकाश में आया। इस ग्रन्थ में प्रथम बार पुरुष राग, स्त्री राग और नपुंसक रागों का वर्गीकरण मिला। परन्तु यह ध्यान देने की बात है कि उन्होंने 'रागिनी' शब्द का प्रयोग नहीं किया है। इसमें २० पुरुष राग, २४ स्त्री राग और १३ नपुंसक राग गिनाए हैं। साथ में स्वर, मूर्च्छना, राग, ताल आदि विषयों को लिया गया है। रागों के इस वर्गीकरण का आधार उनका रस है। उनका कहना है कि रौद्र, अद्भुत तथा वीर रस के लिए पुरुष राग; शृंगार तथा करुण के लिए स्त्री राग और भयानक, हास्य तथा शान्त रस की उत्पत्ति के लिए नपुंसक रागों को प्रयोग में लाना चाहिए। इस ग्रन्थ में रागों की जातियाँ (सम्पूर्ण, षाडव, औडुव) तथा रागों के गान-समय को भी बताया गया है।

श्रुतियों के नाम प्रचलित परम्परा से भिन्न हैं। भरत मुनि ने जहाँ तेतीस अलंकारों का वर्णन किया है, वहाँ इस ग्रन्थ में केवल उन्नीस अलंकारों का निरूपण है। नखज, वायुज, चर्मज, लोहज और शरीरज नाम से नाद के पाँच भेदों का उल्लेख है तथा वीणा के अठारह भेदों का वर्णन है। कहा जाता है कि इसी के आधार पर आगामी ग्रन्थकारों ने राग-रागिनी-वर्गीकरण किए हैं।

मध्य-काल (मुसलिम-काल)

[सन् ८०० ई० से १८०० ई० तक]

मुसलिम-कालीन संगीत

मुसलमानों का आगमन भारत में ११-वीं शताब्दी में हुआ। इसी समय से भारतीय संगीत में परिवर्तन आरम्भ हुआ। भारतीय संगीत-शास्त्र (Theory) उस समय तक संस्कृत भाषा में होने के कारण मुसलमान उसे समझने में असमर्थ रहे, फिर भी गान-वादन (क्रियात्मक संगीत) में उन्होंने अच्छी उन्नति की। नए-नए रागों का आविष्कार किया एवं तरह-तरह के नवीन संगीत-वाद्य बने, जिनका तत्कालीन मुसलिम बादशाहों द्वारा आदर हुआ और गायक-वादकों का सम्मान होने लगा।

इसके बाद १२-वीं शताब्दी में संगीत की दशा विशेष अच्छी न रही, क्योंकि इस काल में मुहम्मद गौरी तथा मुसलिमों द्वारा हिन्दू राजाओं से युद्ध होता रहा, जिसके कारण देश में अव्यवस्था फैली, अतः संगीत-प्रचार के मार्ग में बाधा पड़ना स्वाभाविक ही था।

जयदेव-कृत 'गीत-गोविन्द'

१२-वीं शताब्दी के उत्तरार्ध में 'गीत-गोविन्द' नामक संस्कृत के एक प्रसिद्ध ग्रन्थ की रचना हुई। इसके रचयिता प्रसिद्ध कवि और संगीतज्ञ जयदेव हैं, जिन्हें उत्तर-भारत का प्रथम गायक होने का सम्मान प्राप्त था। 'गीत-गोविन्द' में राधा-कृष्ण-सम्बन्धी प्रबन्ध-गीत हैं, जिन्हें आज भी अनेक गायक ताल-स्वरों में बाँधकर गाते हैं। जयदेव कवि का जन्म बंगाल में बोलपुर के निकटस्थ केंदुला नामक स्थान में हुआ था, जहाँ पर अब भी प्रतिवर्ष संगीत-समारोह मनाया जाता है।

'गीत-गोविन्द' की विशेषता पर मुग्ध होकर एडविन अर्नाल्ड ने अँग्रेजी में इस का अनुवाद 'द इंडियन सोंग आफ सौंग्स' अर्थात् 'गीतों में भारतीय गीत' नाम से किया है।

शार्ङ्गदेव-कृत 'संगीत-रत्नाकर'

शार्ङ्गदेव का समय १२१० से १२४७ ई० के मध्य का माना जाता है। यह देवगिरि (दौलताबाद) के यादव-वंशीय राजा के दरबारी संगीतज्ञ थे।

१३-वीं शताब्दी के उत्तरार्ध में पण्डित शार्ङ्गदेव ने 'संगीत-रत्नाकर' ग्रन्थ की रचना की। इसमें नाद, श्रुति, स्वर, ग्राम, मूर्च्छना, जाति इत्यादि का विवेचन भली प्रकार किया गया है। दक्षिणी और उत्तरी संगीत-विद्वान् इस ग्रन्थ को संगीत का आधार-ग्रन्थ मानते हैं। आधुनिक ग्रन्थों में भी 'संगीत-रत्नाकर' के अनेक उद्धरण पाठकों ने देखे होंगे। शार्ङ्गदेव ने अपने इस ग्रन्थ में मतंग से अधिक विवरण अवश्य दिया है, किन्तु सैद्धान्तिक दृष्टि से मत लगभग एकसा है। इसमें गान, वादन तथा नृत्य, तीनों का वर्णन है। इसमें स्वराध्याय, राग-विवेकाध्याय, प्रकीर्णकाध्याय, प्रबन्धाध्याय, तालाध्याय, वाद्याध्याय और नर्तनाध्याय के अन्तर्गत प्रथम अध्याय में नाद का स्वरूप, नादोत्पत्ति और उसके भेद, सारणाचतुष्टय, ग्राम, मूर्च्छना, तान-निरूपण स्वर और जाति-साधारण, वर्ण-अलंकार तथा जातियों का विस्तृत वर्णन दिया, गया है।

द्वितीय अध्याय में ग्राम-राग व उनके विभाग तथा, रागांग, भाषांग शब्दों का स्पष्टीकरण और देशी राग व उनके नाम आदि दिए गए हैं।

तृतीय अध्याय में वाग्गेयकर के लक्षण, गीत के गुण-दोष, गायक के गुण-दोष और स्थायी इत्यादि का विवरण है।

चतुर्थ अध्याय में गान के निबद्ध और अनिबद्ध भेद, धातु व प्रबन्ध के भेद तथा अंगों इत्यादि का विवरण प्राप्त होता है।

पंचम अध्याय में तालों के विषय में दिया गया है तथा छठे अध्याय में तत, सुषिर, अवनद्ध और घन वाद्यों के भेद, वादन-विधि तथा वाद्यों और वादकों के गुण-दोष दिए गए हैं।

सप्तम अध्याय नृत्य, नाट्य और नृत्त पर है। इसमें नर्तन-सम्बन्धी प्रत्येक बात को दे दिया है।

इसमें कुल २६४ रागों का वर्णन दिया गया है। इन रागों का वर्गीकरण राग, उपराग आदि के आधार पर किया गया है। इस वर्गीकरण का आधार क्या है, यह विदित नहीं होता। वर्गीकरण इस प्रकार है :—

ग्राम-राग	....	३०	उपराग	....	८
राग	....	२०	पूर्व-प्रसिद्ध रागांग राग		८
पूर्व-प्रसिद्ध भाषांग राग		११	पूर्व-प्रसिद्ध क्रियांग राग		१२
पूर्व-प्रसिद्ध उपांग राग		३			

पूर्व-प्रसिद्ध भाषा-राग ...	९६	पूर्व-प्रसिद्ध विभाषा-राग ...	२०
अन्तर्भाषा-राग ...	४	उनके काल में प्रचलित राग ...	१३
उनके काल में प्रचलित क्रियांग राग	३	उनके काल में प्रचलित भाषांग राग	९
उनके काल में प्रचलित उपांग राग	२७		

शार्ङ्गदेव ने यद्यपि अपने ग्रन्थ की नींव भरत के 'नाट्य-शास्त्र' तथा 'बृहद्देशी' पर रखने की चेष्टा की है, परन्तु यह स्पष्ट है कि इनके समय में भरत की जातियाँ नष्ट हो चुकी थीं तथा मतंग के काल के देशी रागों के स्थान पर और अनेक रागों ने स्थान ले लिया था, जिन्हें 'अधुना-प्रसिद्ध राग' कहा जाता था। इसलिए शार्ङ्गदेव को इन अधुना-प्रसिद्ध रागों के विषय में ही कुछ कहना आवश्यक था। परन्तु इन्हें अपने रागों का क्रम पीछे के सिद्धान्तों से भी जोड़ना था, इसलिए इन्होंने अपने रागों का सम्बन्ध पुराने रागों से और पुराने रागों का सम्बन्ध जातियों से जोड़ने का प्रयत्न किया है। परन्तु जातियों का बिलकुल लोप हो जाने के कारण यह सम्बन्ध सुचारु रूप से न जुड़ सका। फलस्वरूप यह ग्रन्थ संगीतज्ञों के लिए कुछ दुर्बोध-सा हो गया। इस प्रकार यद्यपि शार्ङ्गदेव ने श्रुति, स्वर, ग्राम, जाति आदि के वर्णन में भरत का ही अनुकरण किया है, फिर भी इनकी पद्धति में प्रगति और विकास के लक्षणों का अभाव नहीं है। मूर्च्छनाओं की मध्य-सप्तक में स्थापना, विकृत स्वरों की कल्पना, मध्यम-ग्राम का लोप और प्रति-मध्यम की उत्पत्ति इत्यादि 'रत्नाकर' की मौलिकता को प्रकट करती हैं।

इसके पश्चात् १३००-१८०० ई० संगीत का विकास-काल माना जाता है। १३-वीं शताब्दी के समाप्त होते ही, अर्थात् १४-वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में, दक्षिण पर यवनों के आक्रमण होने से देवगिरि का यादव-वंश नष्ट हो गया; जिसके फलस्वरूप भारतीय संगीत और सभ्यता पर भी यवनों का प्रभाव पड़े बिना नहीं रहा। इसी समय मुस-लिमों द्वारा फारस के रागों का आगमन भारत में प्रारम्भ हो गया। दिल्ली का शासन सुलतान अलाउद्दीन खिलजी के हाथ में था। इसी समय (१२१६-१२९६ ई०) में संगीत-कला की विशेष उन्नति हुई।

अमीर खुसरो का समय

इसी समय के लगभग खिलजी के दरबार में हजरत अमीर खुसरो नाम के एक प्रसिद्ध और कुशल गायक राज-मन्त्री थे। इन्होंने अनेक नवीन राग, नवीन वाद्य और तालों की रचना की। इससे संगीत-कला विकास की ओर अग्रसर हुई। इनके विषय में कहा जाता है कि अमीर खुसरो ही वह प्रथम तुर्क थे, जिन्होंने अपने देश के रागों को भारतीय संगीत में मिलाकर एक नवीनता पैदा की।

कहा जाता है कि गोपाल नायक नामक प्रसिद्ध गायक भी इसी दरबार में आ गए थे और अमीर खुसरो से उनकी संगीत-प्रतियोगिता भी दिल्ली में हुई।

अमीर खुसरो द्वारा आविष्कृत गीतों के प्रकार, ताल तथा साजों का उल्लेख भी यहाँ पर संक्षिप्त रूप में कर देना अनुचित न होगा :—

गीतों के प्रकार : गजल, कव्वाली, तराना, खमसा, खयाल।

राग : जीलफ, साजगिरी, सरपर्दा, यमन, रात की पूरिया, बरारी, तोड़ी, पूर्वी इत्यादि।

ताल : झूमरा, झाड़ाचौताल, सूलफाक, पश्तो, फरोदस्त, सवारी इत्यादि।

वाद्य। सितार, तबला।

गोपाल नायक ने भी कुछ रागों का आविष्कार किया, जिनमें पीलू, बड़हंस, सारंग और विरम् उल्लेखनीय हैं।

लोचन-कृत 'राग-तरंगिणी'

१५-वीं शताब्दी में लोचन कवि ने हिन्दुस्तानी संगीत-पद्धति पर एक प्रसिद्ध ग्रन्थ 'राग-तरंगिणी' लिखा (कुछ लेखक लोचन का समय १२-वीं शताब्दी बताते हैं, किन्तु लोचन कवि ने अपने ग्रन्थ में जयदेव और विद्यापति के उद्धरण दिए हैं। ये दोनों शास्त्रकार क्रमशः १२-वीं और १४-वीं शताब्दी के हैं, अतः लोचन का समय इस हिसाब से १२-वीं शताब्दी ठीक नहीं बैठता)। इसमें प्राचीन राग-रागिनी-पद्धति को छोड़कर ठाठ-पद्धति अपनाई गई है। इन्होंने सभी जन्य रागों को १२ जनक मेलों (ठाठों) में विभाजित किया है, अर्थात् कुल १२ ठाठ मानकर उनसे अनेक राग उत्पन्न किए हैं। अपना शुद्ध ठाठ इन्होंने वर्तमान काफी ठाठ के समान माना है। इस ग्रन्थ में ७५ जन्य रागों की सूची देखने से यह विदित होता है कि इसमें आए हुए सभी राग आज के हिन्दुस्तानी संगीत में गाए जाते हैं। इसलिए यह ग्रन्थ ऐतिहासिक दृष्टि से बड़े महत्त्व का है। यह भी बड़ी रोचक बात है कि इन जन्य रागों में से अनेक रागों के स्वर यवन-काल में परिवर्तित कर दिए गए हैं। किन्तु कुछ रागों के रूप आज भी ज्यों-के-त्यों पाए जाते हैं। 'राग-तरंगिणी' के अधिकांश भाग में विद्यापति के गीतों पर विवेचन है।

कल्लिनाथ-कृत 'रत्नाकर' की टीका

१४५६-१४५७ ई० के लगभग विजयनगर के राजा के दरबार में संगीत के सुप्रसिद्ध पंडित कल्लिनाथ थे। इन्होंने शार्ङ्गदेव-कृत 'संगीत-रत्नाकर' की टीका विस्तृत रूप से लिखी। यह टीका यद्यपि संस्कृत भाषा में ही थी, तथापि इसके द्वारा अनेक संगीत-शास्त्रकारों ने यथोचित लाभ उठाया।

सुलतानहुसैन शर्की

पन्द्रहवीं शताब्दी में (१४५८-१४९९ ई०) जौनपुर के बादशाह सुलतानहुसैन शर्की संगीत-कला के अत्यन्त प्रेमी हुए हैं। इन्होंने खयाल-गायकी (कलावन्ती खयाल) का आविष्कार किया एवं अनेक नवीन रागों की रचना की; जैसे जौनपुरी-तोड़ी, सिन्धु-भैरवी, रसूली-तोड़ी, बारह प्रकार के श्याम, जौनपुरी, सिन्दूरा इत्यादि।

इसी समय अर्थात् १४८५-१५३३ ई० के बीच उत्तर-भारत में भक्ति-आन्दोलन ने जोर पकड़ा। भजन-कीर्तन के रूप में संगीत का जगह-जगह उपयोग होने लगा। साथ-

ही-साथ बंगाल में चैतन्य महाप्रभु एवं अन्य भगवद्भक्तों द्वारा संकीर्तन का प्रचार हुआ, जिसके द्वारा संगीत को भी यथेष्ट बल प्राप्त हुआ।

रामामात्य-कृत 'स्वरमेल-कलानिधि'

सन् १५५० ई० के लगभग कर्नाटक-संगीत का एक प्रसिद्ध ग्रन्थ 'स्वरमेल-कलानिधि' रामामात्य द्वारा लिखा गया, जिसमें बहुत-से रागों का वर्णन दिया गया है। इस छोटे-से ग्रन्थ में पाँच प्रकरण हैं। इनके नाम उपोद्घात्-प्रकरण, स्वर-प्रकरण वीणा-प्रकरण, मेल-प्रकरण और राग-प्रकरण हैं। उपोद्घात्-प्रकरण में पुस्तक की प्रारम्भिक भूमिका-मात्र है। स्वर-प्रकरण में 'गान्धर्व' तथा 'गान' के अन्तर्गत संगीत को विभाजित करके इन दोनों पारिभाषिक शब्दों का स्पष्टीकरण: किया गया है। स्वर-प्रकरण में सात शुद्ध तथा सात विकृत स्वर माने हैं। वीणा-प्रकरण में वीणा के दंड पर अपने चौदह स्वरों को स्थापित किया है। मेल-प्रकरण में बीस ठाठों का शुद्ध तथा विकृत स्वरों-सहित वर्णन है। राग-प्रकरण में बीस ठाठों के अन्तर्गत ६३ जन्य रागों का उल्लेख है। यहाँ यह बात ध्यान देने की है कि जिन ठाठों तथा रागों का उल्लेख इस ग्रन्थ में किया गया है, वे प्रचलित हिन्दुस्तानी संगीत-पद्धति में अपने मूल रूप में प्रचलित नहीं हैं। कहीं ठाठों के नाम बदल गए हैं तो कहीं रागों के स्वर ही परिवर्तित हो गए हैं। परन्तु संस्कृत-ग्रन्थों के अध्ययन की दृष्टि से यह एक उत्तम ग्रन्थ है। प्रसन्नता की बात है कि संगीत कार्यालय, हाथरस द्वारा इसका हिन्दी-अनुवाद भी प्रकाशित हो गया है।

अकबर का समय

सोलहवीं शताब्दी (१५५६-१६०५ ई०) में संगीत की विशेष उन्नति हुई। यह बादशाह अकबर का समय था। अकबर संगीत के विशेष प्रेमी थे। इनके दरबार में छत्तीस संगीतज्ञ थे, जिनमें प्रसिद्ध संगीतज्ञ तानसेन, बैजू बावरे, रामदास, तानरंग खाँ के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं।

तानसेन और बैजू बावरे

इससे पहले तानसेन राजा रामचन्द्र के यहाँ रहते थे। इनके संगीत की प्रशंसा सुनकर अकबर ने इन्हें अपने दरबार में प्रधान गायक के रूप में रखा। कहा जाता है कि तानसेन और बैजू बावरे की संगीत-प्रतियोगिता भी एक बार हुई। तानसेन ने कुछ रागों का आविष्कार भी किया, जिनमें दरबारी-कान्हरा, मियाँ की सारंग, मियाँ की मल्हार इत्यादि रागों के नाम हैं। तानसेन के संगीत से प्रभावित होकर इनके अनेक शिष्य भी हो गए थे। बाद में यह शिष्य-वर्ग दो भागों में बँट गया—(१) रबाबिए, जो तानसेन द्वारा आविष्कृत रबाब बजाते थे और (२) बीनकार, जो वीणा बजाते थे। बीनकारों के प्रतिनिधि रामपुर के वजीर खाँ तथा रबाबियों के प्रतिनिधि मुहम्मदअली खाँ (रामपुर रियासत वाले) माने जाते थे।

स्वामी हरिदास

अकबर के समय में ही स्वामी हरिदास वृन्दावन के एक प्रसिद्ध संगीतज्ञ महात्मा हुए हैं। इनका जन्म संवत् १५६९, भाद्रपद शुक्ला ८ (सन् १५१२ ई०) में हुआ।

तनासेन इन्हीं के शिष्य थे। स्वामीजी के शिष्यों द्वारा संगीत का प्रचार अनेक नगरों में भली प्रकार हुआ। कहा जाता है कि स्वामी हरिदासजी अपने समय के सर्वश्रेष्ठ संगीतज्ञ थे। इनके विषय में एक कथा इस प्रकार बताई जाती है कि एक दिन तानसेन से अकबर पूछ बैठे कि तानसेन, ऐसा भी कोई गायक है, जो तुमसे भी सुन्दर गाता हो! इसपर तानसेन ने अपने गुरु स्वामी हरिदास का नाम बताया। अकबर ने उन का गायन सुनने की इच्छा प्रकट की, किन्तु तानसेन ने कहा कि दरबार में तो वे नहीं आएँगे। तब एक नवीन युक्ति से काम लिया गया। अकबर ने अपना वेष बदलकर तानसेन का तानपूरा लिया और तानसेन के साथ स्वामीजी के यहाँ जा पहुँचे। जब स्वामीजी से गाने का आग्रह किया गया तो उन्होंने अपनी अनिच्छा प्रकट की। तब तानसेन ने एक चाल चली। उन्होंने जान-बूझकर स्वामीजी के सामने एक राग अशुद्ध रूप में गाया। स्वामीजी से न रहा गया; उन्होंने वह राग स्वयं गाकर तानसेन को बताया। इस प्रकार अकबर की इच्छा पूर्ण हुई। स्वामीजी के गाने से प्रभावित होकर अकबर ने तानसेन से पूछा कि तानसेन, तुम इतना सुन्दर क्यों नहीं गाते? तानसेन ने उत्तर दिया कि जहाँपनाह, मुझे जब, दरबार की आज्ञा होती है, तभी गाना पड़ता है; किन्तु गुरुजी तो, जब उनकी अन्तरात्मा प्रेरणा करती है, तभी वे गाते हैं; इसीलिए उनके संगीत में एक विशेषता है।

ग्वालियर के राजा मानसिंह तोमर

अकबर के समय में ही ग्वालियर के राजा मानसिंह तोमर द्वारा ग्वालियर का प्रसिद्ध संगीत-घराना चालू हुआ। ध्रुवपद-गायकी के आविष्कार का श्रेय भी राजा मानसिंह को ही दिया जाता है। इन्हीं के समय में प्रसिद्ध गायक नायक बख्शू हुए हैं, जिनका स्थान तानसेन के बाद दूसरे नम्बर पर गिना जाता है।

सूर, कबीर, तुलसी, मीरा

सोलहवीं शताब्दी संगीत और भक्ति-काव्य के समन्वय की दृष्टि से अत्यन्त महत्त्वपूर्ण रही; क्योंकि इसी शताब्दी में 'सूर-सागर' के रचयिता एवं गीति-काव्य के प्रकाण्ड विद्वान् महात्मा सूरदास, 'रामचरितमानस' के यशस्वी लेखक गोस्वामी तुलसीदास, हिन्दू-मुसलिम-एकता के प्रतीक सन्त कबीरदास तथा सुप्रसिद्ध कवयित्री और भजन-गायिका मीराबाई द्वारा भक्तिपूर्ण काव्य के प्रचार से संगीत-कला भगवत्प्राप्ति का साधन बनकर उच्चतम शिखर पर पहुँची।

उपर्युक्त चारों सन्तों के जीवन-काल वि० संवत् के हिसाब से इस प्रकार होते हैं:—

कबीरदास	जन्म	संवत्	१४५६	मृत्यु	१५७५	विक्रम
सूरदास	"	"	१५४०	"	१६२०	"
तुलसीदास	"	"	१५५४	"	१६८०	"
मीराबाई	"	"	१५६०	"	१६३०	"

ईसवी सन् की दृष्टि से उक्त चारों भक्तों का समय १४००–१६०० ई० के मध्य का माना जा सकता है। इनके भजन और पद अमर हो गए हैं और आज भी भारत के घर-घर में इनका प्रचार है।

पुंडरीक विट्ठल के ग्रन्थ

१५६६ ई० के लगभग संगीत के एक कर्णाटकी पंडित पुंडरीक विट्ठल द्वारा लिखे हुए संगीत-सम्बन्धी चार ग्रन्थ मिलते हैं—१. सद्राग-चन्द्रोदय, २. रागमाला, ३. राग-मंजरी, ४. नर्तन-निर्णय। ये पुस्तकें बीकानेर-लाइब्रेरी' में सुरक्षित हैं। इनमें 'नर्तन-निर्णय' नृत्य-कला से सम्बन्ध रखता है और शेष तीन में रागादि का वर्णन है। इन ग्रन्थों में बाईस श्रुतियों पर स्वरों को स्थापित करके वीणा के तार मिलाने का ढंग तथा परदों के स्थानों को बताया है। इसके अनन्तर १६ ठाठों के अन्तर्गत ५८ रागों का वर्गीकरण करते हैं। इसी प्रकार 'रागमाला' के अन्तर्गत स्वर-स्थान तो वही हैं, जो कि 'सद्राग-चन्द्रोदय' में हैं, परन्तु उनके विकृत नाम इसमें नहीं दिए हैं। उनके स्थान पर 'एकगतिक नि', 'द्विगतिक नि', 'त्रिगतिक नि' आदि का प्रयोग किया है। प्रत्येक 'गति' का माप श्रुति माना है। स्वर-स्थान बताने के उपरान्त वादी, संवादी, अनुवादी, विवादी, ग्रह, अंश, न्यास की परिभाषा देते हैं। रागाध्याय में रागों के तीन वर्ग—पुरुष राग, स्त्री राग और पुत्र राग कर दिए हैं। इनमें छह पुरुष राग देकर, प्रत्येक के पाँच-पाँच भार्या राग और पाँच-पाँच पुत्र रागों के नाम दिए हैं। रागों के स्वर बताने के उपरान्त रागों के स्वरूपों (चित्रों) की कल्पना की है तथा उन का गान-समय भी बताया है।

'राग-मंजरी' में 'राग-माला' की भाँति ही स्वर-स्थान बताए गए हैं। इसमें पुंडरीक ने अपने जन्य रागों का वर्गीकरण बीस ठाठों में किया है। इस ग्रन्थ के अन्त में उन्होंने कुछ ऐसे फारस के रागों का भी उल्लेख किया,है, जो यवनों द्वारा हिन्दुस्तानी संगीत में प्रचलित किए गए थे; जैसे हुसैनी, यमन, सरपरदा, बाजरज, हिजाज, उश्शाक इत्यादि। यहाँ यह ध्यान रखने की बात है कि इन्होंने अपना शुद्ध ठाठ दक्षिण के शुद्ध ठाठ को ही माना है।

जहाँगीर का राज्य (१८ वीं शताब्दी)

सोमनाथ-कृत 'राग-विबोध'

१६०५ ई० से १६२७ ईसवी तक जहाँगीर का राज्य रहा। इनके दरबार में बिलास खाँ, छत्तर खाँ, खुर्रमदाद, मक्खू, परवेजदाद और हमजान प्रसिद्ध गायक थे। इसी शासन-काल में दक्षिण-भारत के 'राजमुन्दी' स्थान-निवासी पंडित सोमनाथ ने संगीत का ग्रन्थ 'राग-विबोध' लिखा। इसका रचना-काल ग्रन्थकार ने स्वयं शाके १५३१ (अर्थात् १६१० ई०) आश्विन शुक्ला तृतीया बताया है। इसमें इन्होंने अनेक वीणाओं का वर्णन किया है तथा रागों का जन्य-जनक-पद्धति से वर्गीकरण किया है। इन्होने २२ श्रुतियों पर सात शुद्ध स्वर स्थापित करने के उपरान्त १५ विकृत स्वरों का वर्णन किया है। इन्होंने अपने ७५ जन्य रागों का वर्गीकरण २३ मेलों के अन्तर्गत किया है। आज भी अनेक रागों का रूप इन प्राचीन रागों के समान ही प्रतीत होता है। इस प्रकार ऐतिहासिक दृष्टि से यह ग्रन्थ उत्तरी संगीतज्ञों के लिए विशेष महत्त्व का है।

पं० दामोदर-कृत 'संगीत-दर्पण'

जहाँगीर के समय में ही हिन्दुस्तानी संगीत-पद्धति पर १६२५ ई० में 'संगीत-दर्पण' नामक ग्रन्थ का निर्माण पं० दामोदर ने किया। इसमें 'संगीत-रत्नाकर' के भी बहुत-से श्लोक कुछ परिवर्तन के साथ मिलते हैं। रागाध्याय का विस्तृत रूप से वर्णन किया गया है। स्वराध्याय में नादोत्पत्ति, श्रुति, स्वर, ग्राम, मूर्च्छना तथा ३२ तानों का वर्णन है। कूट तानों को बनाने का क्रम तथा खण्डमेरु तानों में 'नष्ट' और 'उद्दिष्ट' को खोजने का क्रम विस्तार से समझाया है। इसी अध्याय में स्वर-साधारण, वर्ण, अलंकार आदि का भी संक्षिप्त वर्णन है।

रागाध्याय में रागांग, भाषांग, क्रियांग और उपांग को संक्षेप में समझाकर मतंग के मतानुसार रागों के तीन भेद (शुद्ध, छायालग और संकीर्ण) बताकर 'रत्नाकर' से २० रागों के नाम उद्धृत कर दिए हैं और तुरन्त शिवमत के अनुसार राग-रागिनियों का वर्णन प्रारम्भ कर दिया है। फिर रागों का गान-समय और ऋतुओं का संक्षिप्त वर्णन है। इसके उपरान्त हनुमन्मत से तथा 'रागार्णव'-मत से राग-रागिनियों के नाम बताए हैं। इस ग्रन्थ के लोकप्रिय होने का कारण इसमें दिए गए राग-रागिनियों के ध्यान हैं। 'संगीत-दर्पण में दिए गए ध्यानों के कारण यह ग्रन्थ भी लोकप्रिय बन गया। सर विलियम जोन्स की पुस्तक 'द म्यूजिकल मोड्स आफ द हिंदूज' द्वारा यह भी पता चलता है कि 'संगीत-दर्पण' का फारसी-अनुवाद भी हो चुका है। इसके गुजराती तथा हिन्दी-अनुवाद भी वर्तमान काल में प्रकाशित हो गए हैं; इससे इस ग्रन्थ की लोकप्रियता का आभास भली प्रकार मिलता है।*

व्यंकटमखी-कृत 'चतुर्दण्डिप्रकाशिका'

१६६० ई० के लगभग शार्ङ्गदेव-गुरु-परम्परा के शिष्य व्यंकटमखी पंडित ने दक्षिण-पद्धति के आधार पर संगीत का एक ग्रन्थ 'चतुर्दण्डिप्रकाशिका' निर्मित किया। इसमें गणितानुसार सप्तक के १२ स्वरों से ७२ मेल अर्थात् ठाठ, और एक ठाठ से ४८४ रागों की उत्पत्ति सिद्ध की है। ७२ ठाठों में से १९ ठाठ, जो दक्षिणी पद्धति में प्रयोग किए जाते हैं, का विवरण तथा इन ठाठों से उत्पन्न ५५ रागों का विवरण भी इस पुस्तक में दिया है।

शाहजहाँ का समय (१७-वीं शताब्दी)

शाहजहाँ का शासन-काल १६२८-१६५८ ई० माना जाता है। यह बादशाह स्वयं गाना जानता था। इसके उर्दू भाषा के गाने अयत्न्त मधुर और आकर्षक होते थे। गायकों का इसके यहाँ इतना आदर था कि अपने दरबारी गायक दिरंग खाँ और लाल खाँ को इसने चाँदी से तुलवाकर (प्रत्येक की चाँदी लगभग ४५०० रुपए की बैठी।) पुरस्कृत किया। इनके अतिरिक्त शाहजहाँ के दरबार में प्रसिद्ध गायक रामदास महापट्टर और जगन्नाथ भी थे।

---

* 'संगीत-दर्पण' का हिन्दी-अनुवाद १९५० ई० में संगीत कार्यालय, हाथरस से प्रकाशित हो चुका है। गुजराती-अनुवाद श्री रतनसी लीलाधर ठक्कर द्वारा इससे पहले ही प्रकाशित हो चुका था।

औरंगजेब का समय (१६५८ ई० से १७०७ ई०)

औरंगजेब आलमगीर संगीत का कट्टर शत्रु था। उसे संगीत से इतनी चिढ़ थी कि एक दिन हुक्म निकाल दिया कि सब साज दफना दिए जाएँ। इसके समय में यद्यपि संगीत को राज्याश्रय नहीं रहा, किन्तु पृथक् रूप से संगीतज्ञों की साधना को औरंगजेब भी नहीं रोक सका।

अहोबल-कृत 'संगीत-पारिजात'

सत्तरहवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में उस समय के संगीत-विद्वान् पंडित अहोबल ने सन् १६५० ई० के लगभग हिन्दुस्तानी संगीत का एक महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ 'संगीत-पारिजात' लिखा। इसी पंडित ने सर्वप्रथम वीणा के बाज के तार की लम्बाई पर भिन्न-भिन्न नाप से अपने शुद्ध तथा विकृत स्वरों की स्थापना की। अहोबल का शुद्ध ठाठ भी लोचन की भाँति आजकल प्रचलित काफी ठाठ के समान था। इन्होंने शुद्ध-विकृत कुल मिलाकर २६ स्वर बताए हैं। इन्होंने अपने रागों का वर्गीकरण ठाठों में नहीं किया है, किन्तु यदा-कदा ठाठों के नाम दे दिए हैं। इस ग्रन्थ में लगभग १२२ रागों का वर्णन मिलता है। प्रत्येक राग में लगनेवाले स्वरों की आरोही, अवरोही, ग्रह, न्यास और मूर्च्छना के स्वरों का वर्णन प्राप्त होता है। उनका कहना है कि जहाँ उन्होंने न्यास और अंश स्वर का उल्लेख नहीं किया है, वहाँ इन स्वरों के स्थान पर षडज को ही मानना चाहिए। जिस स्वर-समूह से राग प्रारम्भ होता है, उसे 'उदग्राहकारक' तान कहा है। इस प्रकार की उदग्राहकारक तान प्रत्येक राग की परिभाषा के बाद में दी गई है। 'संगीत-पारिजात' का फारसी-अनुवाद १७२४ ई० में श्री दीनानाथ द्वारा हुआ और हिन्दी-अनुवाद श्री कलिन्द द्वारा १९४१ ई० में होकर 'संगीत-कार्यालय' हाथरस से प्रकाशित हुआ।

हृदयनारायणदेव-कृत 'हृदय-कौतुक' और 'हृदय-प्रकाश'

'संगीत-पारिजात' के पश्चात् हृदयनारायणदेव ने 'हृदय-कौतुक' और 'हृदय-प्रकाश', ये दो ग्रन्थ लिखे, जिनमें अहोबल का अनुकरण करते हुए १२ स्वर-स्थान वीणा के तार पर समझाए हैं। इन्होंने 'तरंगिणी' के ही बारह ठाठों को लेकर, एक नवीन राग 'हृदय-रमा' और जोड़कर एक ठाठ और बढ़ा दिया है। इस नवीन राग में इन्होंने दो नवीन स्वर, त्रिश्रुति 'म' तथा त्रिश्रुति 'नि' और जोड़ दिए हैं। साथ में रागों का परिचय देनेवाले श्लोक, स्वरों का वर्ज्यावर्ज्य बताते हुए रागों के स्वर-स्वरूप को भी बताते हैं। वादी, संवादी, अनुवादी, विवादी को स्पष्ट करते हुए लिखा है कि राग में पाँच से कम स्वर नहीं होने चाहिए। जो मेल दो, तीन, चार स्वरों का है, उसे 'राग' न कहकर 'तान' कह सकते हैं। इन दोनों ग्रन्थों में जन्य रागों का विवरण एक समान है।

भावभट्ट के ग्रन्थ

संगीत-विद्वान् पं० भावभट्ट ने संगीत के तीन ग्रन्थ (१६७४-१७०९ ई० के लगभग) लिखे—१. अनूप-विलास, २. अनूपांकुश तथा ३. अनूप-संगीत-रत्नाकर। भावभट्ट

दक्षिणी संगीत-पद्धति के लेखक थे। इनका शुद्ध ठाठ 'मुखारी' है। २० मेलों (ठाठों) में इन्होंने सब रागों का विभाजन किया है। 'अनूप-विलास' का लगभग समस्त स्वराध्याय शार्ङ्गदेव के 'रत्नाकर' से लिया गया है। इसमें स्वर,ग्राम, मूर्च्छना, जाति, शुद्ध तान, कूट तान और अलंकार की समस्त परिभाषाएँ 'संगीत-रत्नाकर' और 'संगीत-पारिजात' से ली गई हैं। इन्होंने २२ श्रुतियों पर ही ४२ स्वर-नाम रखे हैं। किन्तु राग-वर्णन में वे इस विषय में मौन हैं। इसमें लगभग ७० रागों की व्याख्या प्राप्त होती है।

'अनूप-संगीत-रत्नाकर' में पुन: श्रुति, स्वर, ग्राम, मूर्च्छना, तान, वर्ण और अलंकार आदि के विषय में 'रत्नाकर' से ज्यों-का-त्यों उद्धृत कर लिया है। परिभाषाओं के उपरान्त रागाध्याय में कुछ प्रचलित रागों के भेदों को भी बताते हैं; जैसे नट के भेदों के अन्तर्गत शुद्धनट, सालंगनट, छायानट, केदारनट, कल्याणनट, वराटीनट, सारंगनट, विभासनट, हमीरनट, पूरियानट इत्यादि। इसके उपरान्त कुछ रागों के विभिन्न स्वरूपों का वर्णन है। फिर पुंडरीक की 'राग-मंजरी' से उनके ठाठों, स्वरों व जन्य रागों को ज्यों-का-त्यों नकल कर लिया है। इसमें सैकड़ों प्राचीन ध्रुवपदों का भी उल्लेख किया है; परन्तु उनकी स्वरलिपि नहीं दी गई है।

'अनूपांकुश' में श्रुतियों का वर्णन करके रागाध्याय में राग-वर्गीकरण को 'संगीत-दर्पण' के अनुसार रखा है। परन्तु उस पुस्तक में इन रागों की जो परिभाषा दी गई है, उसकी तनिक भी चिन्ता न करते हुए प्रत्येक राग में 'संगीत-पारिजात', 'हृदय-प्रकाश' और 'राग-मंजरी' के मतों का उद्धरण दे दिया है। इस प्रकार अनेक परिभाषाएँ परस्पर विरोधी हो गई हैं और पाठकों को उलझा देती हैं।

मुहम्मदशाह रँगीले (अठारहवीं शताब्दी)

सदारंग-अदारंग

अठारहवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध (१७१९-१७४० ई०) में मुगल-वंश के अन्तिम बादशाह मुहम्मदशाह रँगीले हुए। यह संगीत के अत्यन्त प्रेमी थे। बहुत-से गीतों में इनका नाम प्राय: आजकल भी पाया जाता है। रँगीले के दरबार में दो अत्यन्त प्रसिद्ध गायक सदारंग और अदारंग थे, जिन्होंने हजारों खयालों की रचना करके अनेक शिष्य तैयार किए। वास्तव में खयाल की गायकी के प्रचार का श्रेय सदारंग और अदारंग को ही है। इन्हीं के खयाल आज सर्वत्र प्रचार में आ रहे हैं।* इसी काल में शोरी मियाँ ने 'टप्पा' ईजाद करके प्रचलित किया।

अठारहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में संगीत-साधना साधारण रूप से चलती रही। इधर मुसलिम-शासकों की शक्ति क्षीण होने लगी और अँग्रेजों का पंजा धीरे-धीरे भारत पर जमने लगा। इस उथल-पुथल में संगीत-कला बड़े-बड़े राज्याश्रयों से पृथक होकर स्वतन्त्र रूप से एवं कुछ छोटी-छोटी रियासतों में पलने लगी।

* कुछ लेखकों के मतानुसार खयाल-गायकी का प्रचार जौनपुर के सुल्तानहुसैन शर्की द्वारा माना जाता है।

श्रीनिवास कृत 'राग-तत्त्व-विबोध'

इसी समय में श्रीनिवास पंडित ने 'राग-तत्त्व-विबोध' नामक प्रसिद्ध पुस्तक लिखी। इन्होंने भी इसमें पारिजातकार की भाँति बारह स्वर-स्थान बनाकर अपना शुद्ध ठाठ आधुनिक काफी ठाठ के समान निश्चित किया। यह एक छोटा-सा ग्रन्थ है। इसमें वीणा के तार पर स्वरों की स्थापना की गई है, इसलिए इसका बहुत महत्त्व है। मेल, औडुव, षाडव, सम्पूर्ण की परिभाषा देकर मूर्च्छना के विषय में कुछ कम समझाते हैं। उनका कहना है कि राग में चार भाग होते हैं। इन्हें क्रम से उद्ग्राह (वह भाग, जिससे राग का आलाप प्रारम्भ होता था), स्थायी, संचारी और मुक्तयी कहते हैं (आलाप का तृतीय भाग संचारी और अन्तिम भाग मुक्तयी होता था)। इन्होंने अपने मेलों के वर्णन में केवल बारह श्रुतियों का ही प्रयोग किया है। रागाध्याय का समस्त विवरण 'संगीत-पारिजात' से लिया गया है। मध्यकालीन ग्रन्थकारों में श्रीनिवास पंडित ही अन्तिम ग्रन्थकार हैं।

'संगीत-सारामृत' और 'राग-लक्षणम्'

इसी काल में (१७६३-१७६८ ई०) तंजोर के मराठा महाराजा तुलाजीराव भोंसले द्वारा 'संगीत-सारामृत' नामक पुस्तक लिखी गई। 'संगीत-सारामृत' में दक्षिणी संगीत-पद्धति का वर्णन किया है और ७२ ठाठ स्वीकार करते हुए २१ मेलों (ठाठों) द्वारा ११० जन्य रागों का वर्णन किया है।

'राग-लक्षणम्' में रागोत्पादक ७२ ठाठ मानकर उनके द्वारा अनेक रागों का विवरण स्वरों-सहित दिया है। यह ग्रन्थ भी दक्षिण की प्रचलित संगीत-पद्धति का आधार-ग्रन्थ माना गया है। इसपर मूल लेखक का नाम तो नहीं दिया गया, किन्तु इस ग्रन्थ की प्रस्तावना से पता चलता है कि तंजोर के ही एक गृहस्थ के यहाँ से यह प्राप्त हुआ था।

आधुनिक काल

(१८०० ई० के पश्चात्)

अँग्रेज, भारतीय संगीत को अच्छी दृष्टि से नहीं देखते थे; साथ-ही-साथ अँग्रेजी सभ्यता का प्रभाव रियासतों पर भी पड़ने लगा, जिसके फलस्वरूप राजा लोग भी संगीत के प्रति उदासीनता का भाव प्रकट करने लगे और इस प्रकार रियासतों से संगीतज्ञों को जो आश्रय प्राप्त हो रहा था, उसमें बाधा पड़ने लगी। फिर भी कुछ खास-खास रियासतों में विभिन्न घरानों के संगीतज्ञ संगीत-साधना में तल्लीन रहे। साथ ही उन दिनों संगीत का प्रवेश भले घरों में निषिद्ध माना जाने लगा। इसका भी एक विशेष कारण यह था कि इस समय में शासन-वर्ग की उदासीनता के कारण संगीत-कला निकृष्ट श्रेणी के व्यवसायी स्त्री-पुरुषों में पहुँच चुकी थी; अतः नवीन शिक्षा-प्राप्त सभ्य समाज का इसके प्रति उपेक्षा रखना स्वाभाविक ही था। किन्तु संगीत के भाग्य ने फिर पलटा खाया और कुछ प्रसिद्ध अँग्रेजों (सर विलियम जोन्स, कैप्टेन डे, कैप्टेन विलर्ड आदि) ने भारतीय संगीत का अध्ययन करके इसपर कुछ पुस्तकें लिखीं, जिनका

प्रभाव शिक्षित-वर्ग पर अच्छा पड़ा और संगीत के प्रति अनादर का भाव धीरे-धीरे कम होने लगा।

मुहम्मद रजा कृत 'नगमाते-आसफी'

आधुनिक काल में सर्वप्रथम बिलावल को शुद्ध ठाठ मानकर १८१३ ई० में पटना के रईस मुहम्मद रजा ने 'नगमाते-आसफी' नामक पुस्तक लिखी। इन्होंने पूर्व-प्रचलित राग-रागिनी-पद्धति का संशोधन करके अपना एक नवीन मत चलाया, जिसमें छह राग और छत्तीस रागिनियाँ मानकर उनका नए ढंग से विभाजन किया।

सवाई प्रतापसिंह कृत 'संगीत-सार'

१७७९-१८०४ ई० में जयपुर के महाराजा सवाई प्रतापसिंह ने एक विशाल संगीत-कान्फ्रेंस का आयोजन करके बड़े-बड़े संगीत-कलाविदों को इकट्ठा किया और उनसे विचार-विनिमय करने के पश्चात् 'संगीत-सार' नामक पुस्तक लिखी, जिसमें बिलावल ठाठ को ही शुद्ध ठाठ स्वीकार किया गया है।

कृष्णानन्द व्यास कृत 'संगीत-राग-कल्पद्रुम'

इसके पश्चात् १८४२ ई० में श्री कृष्णानन्द व्यास ने 'संगीत-राग-कल्पद्रुम' नामक एक बड़ी पुस्तक लिखी, जिसमें उस समय तक के हजारों ध्रुवपद, खयाल तथा अन्य गीत (स्वरलिपि-रहित) दिए हैं।

उत्तर-भारत में इस समय राग-वर्गीकरण की नई पद्धति बनाने की योजना चल रही थी और उधर 'तंजोर' दक्षिण-संगीत का विशाल केन्द्र बन गया था, जहाँ अनेक प्रसिद्ध संगीत-विद्वान् त्यागराज, श्यामा शास्त्री, सुब्बराम दीक्षित आदि संगीत-कला का प्रचार कर रहे थे।

इस परिवर्तन-काल में भी बंगाल के राजा सौरीन्द्रमोहन टैगोर तथा अन्य कुछ विद्वानों ने राग-रागिनी-पद्धति का ही समर्थन करते हुए कुछ पुस्तकें लिखीं, जिनमें 'यूनिवर्सल हिस्ट्री आफ म्यूजिक' का नाम उल्लेखनीय है।

संगीत-प्रचार का आधुनिक काल

(१९००-१९५० ई०)

इस आधुनिक काल में संगीत के उद्धार और प्रचार का श्रेय भारत की दो विभूतियों को है, जिनके नाम हैं—पं० विष्णुनारायण भातखंडे और पं० विष्णुदिगम्बर पलुस्कर। दोनों ही महानुभावों ने देश में जगह-जगह पर्यटन करके संगीत-कला का उद्धार किया; जगह-जगह अनेक संगीत-विद्यालयों की स्थापना की। संगीत-सम्मेलनों द्वारा संगीत पर विचार-विनिमय भी हुआ; जिसके फलस्वरूप जनसाधारण में संगीत के प्रति रुचि विशेष रूप से उत्पन्न हुई। इस काल में शास्त्रीय साधना के साथ-साथ संगीत में नवीन प्रयोग द्वारा एक विशेषता पैदा करने का श्रेय विश्व-कवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर को है। इन्होंने प्राचीन राग-रागिनियों के आकर्षक स्वर-समुदाय

लेकर तथा अन्य कलात्मक प्रयोगों द्वारा 'रवीन्द्र-संगीत' * के रूप में एक नई चीज संगीत-प्रेमियों को दी।

पं० विष्णुनारायण भातखंडे और उनके ग्रन्थ

पं० विष्णुनारायण भातखंडे का जन्म बम्बई प्रान्त के 'बालकेश्वर' नामक स्थान पर १० अगस्त, १८६० ई० को हुआ। इन्होंने १८८३ ई० में बी० ए० और १८९० ई० में एल-एल० बी० की परीक्षा पास की। इनकी लगन आरम्भ से ही संगीत की ओर थी। १९०४ ई० में आपकी ऐतिहासिक संगीत-यात्रा आरम्भ हुई, जिसमें आपने भारत के सैकड़ों स्थानों का भ्रमण करके संगीत-सम्बन्धी साहित्य की खोज की। आपने बड़े-बड़े गायकों का संगीत सुना और उसकी स्वरलिपि करके तैयार 'हिन्दुस्तानी संगीत-पद्धति 'क्रमिक पुस्तक-मालिका'* के नाम से एक ग्रन्थमाला प्रकाशित कराई, जिसके छह भाग हैं। शास्त्रीय (Theory) ज्ञान के लिए आपने 'हिन्दुस्तानी संगीत-पद्धति' के चार भाग मराठी भाषा में लिखे। संस्कृत भाषा में भी आपने 'लक्ष्य-संगीत' और 'अभिनव राग-मंजरी' नामक पुस्तकें लिखकर प्राचीन संगीत की विशेषताओं एवं उसमें फैली हुई भ्रान्तियों पर प्रकाश डाला। श्री भातखंडे ने अपना शुद्ध ठाठ बिलावल मानकर ठाठ-पद्धति स्वीकार करते हुए १० ठाठों में बहुत-से रागों का वर्गीकरण किया।

१९१६ ई० में आपने बड़ौदा में एक विशाल संगीत-सम्मेलन किया, जिसका उद्घाटन महाराजा बड़ौदा द्वारा हुआ। इसमें संगीत के विद्वानों द्वारा संगीत के अनेक तथ्यों पर गम्भीरतापूर्वक विचार हुआ और एक 'आल इंडिया म्यूजिक-एकेडमी' की स्थापना का प्रस्ताव भी स्वीकृत हुआ। इस संगीत-सम्मेलन में भातखंडेजी के संगीत-सम्बन्धी जो महत्त्वपूर्ण भाषण हुए, वे अँग्रेजी में 'ए शार्ट हिस्टोरिकल सर्वे आफ द म्यूजिक आफ अपर इंडिया' * नामक पुस्तक के रूप में प्रकाशित हो चुके हैं।

बाद में आपके प्रयत्नों से अन्य कई स्थानों में भी संगीत-सम्मेलन हुए तथा संगीत-विद्यालयों की स्थापना हुई, जिनमें लखनऊ का 'मैरिस म्यूजिक-कालेज' (अब 'भातखंडे-संगीत-विद्यापीठ,) ग्वालियर का 'माधव-संगीत-महा विद्यालय' तथा बड़ौदा का 'म्यूजिक-कालेज' विशेष उल्लेखनीय हैं।

इस प्रकार इन्होंने अपने अथक परिश्रम द्वारा संगीत की महान् सेवा की और संगीत-जगत् में एक नवीन युग स्थापित करके, अन्त में १९ सितम्बर, १९३६ को आप परलोकवासी हुए।

राजा नवाबअली कृत 'मुआरिफुन्नगमात'

१९११ ई० के लगभग लाहौर के रहनेवाले एक संगीत-विद्वान् राजा नवाबअली खाँ भातखंडेजी के सम्पर्क में आए। राजा साहब ने अपने एक प्रसिद्ध गायक नजीर खाँ को आचार्य भातखंडे के पास संगीत के शास्त्रीय ज्ञान तथा लक्षण-गीतों को सीखने के लिए भेजा और फिर उर्दू में संगीत की एक सुन्दर पुस्तक 'मुआरिफुन्नगमात'* लिखी। इस पुस्तक का यथेष्ट आदर हुआ।

---

* पुष्पांकित ग्रन्थों का हिन्दी-अनुवाद संगीत-कार्यालय, हाथरस से प्रकाशित हो चुका है।

पं० विष्णुदिगम्बर पलुस्कर

पं० विष्णुदिगम्बर पलुस्कर का जन्म १८७२ ई० में श्रावणी पूर्णिमा के दिन कुरुन्दवाड़ (बेलगाँव) में हुआ। आपको संगीत-शिक्षा गायनाचार्य पं० बालकृष्ण बुवा से प्राप्त हुई। १८९६ ई० में आपने संगीत-प्रचार के हेतु भ्रमण आरम्भ किया। पलुस्करजी ने अपने सुमधुर आकर्षक संगीत के द्वारा संगीत-प्रेमी जनता को आत्म-विभोर कर दिया। पंडितजी के व्यक्तित्व के प्रभाव से सभ्य समाज में संगीत की लालसा जाग उठी, जिसके फलस्वरूप संगीत के कई विद्यालय स्थापित हुए, जिनमें लाहौर का 'गान्धर्व महाविद्यालय' सर्वप्रथम ५ मई, १९०१ ई० को स्थापित हुआ। बाद में बम्बई का 'गान्धर्व महाविद्यालय' स्थापित हुआ और यही मुख्य केन्द्र बन गया। पंडितजी का कार्य आगे बढ़ाने के लिए उनके शिष्यों के सामूहिक प्रयत्न से 'गान्धर्व महाविद्यालय-मंडल' की स्थापना हुई, जिसमें बहुत-से केन्द्र विभिन्न नगरों में स्थापित हो चुके हैं।

१९२० ई० से पलुस्करजी कुछ विरक्त-से रहने लगे थे, अतः १९२२ ई० में आपने नासिक में 'रामनाम-आधार-आश्रम' खोला। तबसे आपका संगीत भी रामनाममय हो गया। इस प्रकार संगीत को पवित्र वातावरण में स्थापित करके, अन्त में यह संगीत का पुजारी २१ अगस्त, १९३१ ई० को मिरज में प्रभु-धाम को प्रस्थान कर गया।

पंडितजी द्वारा संगीत की कई पुस्तकें भी प्रकाशित हुई थीं, जिनमें से कुछ के नाम इस प्रकार हैं—संगीत-बालबोध स्वल्पालाप-गायन, संगीत-तत्त्व-दर्शक, राग-प्रवेश, भजनामृत-लहरी इत्यादि।

आपकी स्वरलिपि-पद्धति भातखंडे-स्वरलिपि-पद्धति से भिन्न है। प्रोफेसर डी० वी० पलुस्कर, जो अपने समय के गायकों में एक अच्छे गायक माने जाते थे, आपके ही सुपुत्र थे।

स्वतन्त्र भारत में संगीत

भारत स्वतन्त्र होकर जबसे अपनी राष्ट्रीय सरकार स्थापित हुई है, तबसे संगीत का प्रचार द्रुत गति से देश में बढ़ रहा है। जगह-जगह स्कूल और कालेजों में संगीत पाठ्यक्रम में सम्मिलित हो गया है एवं कुछ विश्वविद्यालयों की एम० ए० परीक्षाओं में संगीत भी एक विषय के रूप में रख दिया गया है। इधर आकशवाणी द्वारा भी संगीत का प्रचार दिनों-दिन बढ़ रहा है। कुछ चलचित्रों से भी हमें अच्छा संगीत मिल सका है। संगीत की अनेक शिक्षण-संस्थाएँ भी विभिन्न नगरों में सुचारु रूप से चल रही हैं। देश का शिक्षित वर्ग संगीत की ओर विशेष रूप से आकृष्ट होकर अब संगीत का महत्त्व समझने लगा है। कुलीन घराने के युवक-युवतियाँ और कन्याएँ संगीत-शिक्षा ग्रहण कर रहे हैं एवं जनसाधारण में भी संगीत के प्रति आशातीत अभिरुचि उत्पन्न हो रही है। इधर संगीत-सम्बन्धी पुस्तकें भी अच्छी-अच्छी प्रकाशित होने लगी हैं। संगीत-कला के विकास के लिए ये सब शुभ लक्षण हैं। आशा है, निकट भविष्य में ही भारतीय संगीत उच्चतम शिखर पर आसीन होकर अपनी विशेषताओं से संसार का मार्ग-दर्शन करेगा।

संगीत

गीतं, वाद्यं तथा नृत्यं त्रयं संगीतमुच्यते ।

—संगीत-रत्नाकर

गीत, वाद्य और नृत्य, ये तीनों मिलकर 'संगीत' कहलाते हैं। वास्तव में ये तीनों कलाएँ (गाना, बजाना और नाचना) एक-दूसरे से स्वतन्त्र हैं, किन्तु स्वतन्त्र होते हुए भी गान के अधीन वादन तथा वादन के अधीन नर्तन है। प्राचीन काल में इन तीनों कलाओं का प्रयोग अधिकांशत: एकसाथ ही हुआ करता था।

'संगीत' शब्द 'गीत' शब्द में 'सम्' उपसर्ग लगाकर बना है। 'सम्' यानी 'सहित' और 'गीत' यानी 'गान'। 'गान के सहित' अर्थात् अंगभूत क्रियाओं (नृत्य) एवं वादन के साथ किया हुआ कार्य 'संगीत' कहलाता है।

नृत्यं वाद्यनुगं प्रोक्तं वाद्यं गीतानुवृत्ति च ।
अतो गीत प्रधानत्वादत्राऽऽदावभिधीयते ॥

—संगीत-रत्नाकर

अर्थात्—गान के अधीन वादन और वादन के अधीन नर्तन है, अत: इन कलाओं में गान को ही प्रधानता दी गई है।

स्वर

संगीत में काम आनेवाली वह आवाज, जो मधुर हो अर्थात् कानों को अच्छी लगे और जिसे सुनकर चित्त प्रसन्न हो, 'स्वर' कहलाती है।

आगे जो बाईस श्रुतियों का विवरण दिया गया है, उन्हीं में से सात शुद्ध स्वर चुने गए हैं, जिनके पूरे नाम ये हैं—१. षड्ज, २. ऋषभ, ३. गान्धार, ४. मध्यम, ५. पंचम, ६. धैवत और ७. निषाद। इन्हें ही संक्षेप में सा, रे, ग, म, प, ध, नि कहते हैं।

तीव्र और कोमल स्वर

ऊपर बताए हुए सात स्वर 'शुद्ध स्वर' कहे जाते हैं। इनमें 'सा' और 'प' तो अचल स्वर माने गए हैं, क्योंकि ये अपनी जगह पर कायम रहते हैं; बाकी पाँच स्वरों के दो-दो रूप कर दिए गए हैं, क्योंकि ये अपनी जगह से हटते हैं (इसीलिए इन्हें 'विकारी स्वर' भी कहते हैं)। इन्हें कोमल, तीव्र नामों से पुकारते हैं।

किसी स्वर की नियत आवाज को नीचे उतारने पर वह 'कोमल स्वर' कहलाता है और कोई स्वर अपनी नियत आवाज से ऊँचा जाने पर 'तीव्र स्वर' कहलाता है। रे, ग, ध, नि, ये चारों स्वर जब अपनी जगह से नीचे हटते हैं, तो 'कोमल' बन जाते हैं और जब इन्हें फिर अपने नियत स्थान पर ऊपर पहुँचा दिया जाता है, तो इन्हें 'तीव्र' या 'शुद्ध' कहते हैं। किन्तु 'म' यानी मध्यम स्वर जब अपने नियत स्थान से

हटता है तो वह नीचे नहीं जाता, क्योंकि उसका नियत स्थान पहले ही नीचा है; अतः 'म' स्वर जब हटेगा यानी विकृत होगा तो ऊँचा जाकर 'तीव्र' कहलाएगा और जब फिर अपने नियत स्थान पर आ जाएगा, तब 'कोमल' या 'शुद्ध' कहलाएगा। गायकों की साधारण बोलचाल में कोमल स्वरों को 'उतरे स्वर' और तीव्र स्वरों को 'चढ़े स्वर' कहते हैं।

शुद्ध और विकृत स्वर

ऊपर हम बता चुके हैं कि 'सा' और 'प' स्वर अचल हैं। ये कभी विकृत नहीं होते, अर्थात् अपने स्थान से नहीं हटते। बाकी पाँच स्वर अपने स्थान से हटते रहते हैं। जब कोई स्वर अपने स्थान से हटता है तो वह 'विकृत स्वर' कहलाता है। रे, ग, ध, नि अपनी जगह से हटकर नीचे आएँगे तो इन्हें विकृत या कोमल स्वर कहा जाएगा। इसी प्रकार 'म' अपने स्थान से हटकर ऊँचा जाएगा तो वह विकृत या तीव्र कहा जाएगा।

इस प्रकार दो अचल, पाँच शुद्ध और पाँच विकृत, सब मिलाकर बारह स्वर हुए। इन्हें पहचानने के लिए भातखंडे-स्वरलिपि-पद्धति में इस प्रकार चिह्न होते हैं :—

सा, प (अचल या शुद्ध स्वर) : इनपर कोई चिह्न नहीं होता।
रे, ग, म, ध, नि (शुद्ध स्वर) : इनपर भी कोई चिह्न नहीं होता।
रे॒, ग॒, मं, ध॒, नि॒ (विकृत स्वर) : इनमें रे॒, ग॒, ध॒, नि॒ कोमल हैं और 'मं' तीव्र है।

विष्णुदिगम्बर-स्वरलिपि-पद्धति में बारह स्वर इस प्रकार लिखे जाते हैं :—

सा, प : अचल व शुद्ध स्वर।
रि, ग, म, ध, नि : शुद्ध स्वर।
रि॒, ग॒, म्, ध॒, नि॒ : विकृत स्वर (इनमें रि॒, ग॒, ध, नि॒ कोमल और 'म्' तीव्र है)।

इनके अतिरिक्त उत्तरी संगीत-पद्धति में कुछ अन्य चिह्न-प्रणालियाँ भी चल रही हैं, किन्तु मुख्य रूप से उपर्युक्त दो चिह्न-प्रणालियाँ ही प्रचलित हैं। कोमल-तीव्र के अतिरिक्त सप्तक तथा मात्रा आदि के अन्य चिह्न भी लगाए जाते हैं, जिनका विवरण इस पुस्तक में आगे चलकर 'स्वरलिपि-पद्धति' (Notation System) लेख में विस्तृत रूप से दिया गया है।

दक्षिणी (कर्णाटकी) और उत्तरी हिन्दुस्तानी संगीत-पद्धतियाँ

भारत में दो संगीत-पद्धतियाँ प्रसिद्ध हैं १. कर्णाटकी संगीत-पद्धति २. हिन्दुस्तानी संगीत-पद्धति। 'कर्णाटकी संगीत-पद्धति' को ही 'दक्षिणी संगीत-पद्धति' भी कहते हैं। यह मद्रास प्रान्त, मैसूर तथा आन्ध्र प्रदेश में प्रचलित है।

हिन्दुस्तानी संगीत-पद्धति को ही 'उत्तरी संगीत-पद्धति' भी कहते हैं। यह मद्रास प्रान्त, मैसूर तथा आन्ध्र-प्रदेश को छोड़कर शेष समस्त भारत में प्रचलित है।

वास्तव में इन दोनों संगीत-पद्धतियों के मूल सिद्धान्तों में विशेष अन्तर नहीं है। इन दोनों पद्धतियों में जो समानता और भिन्नता है, वह देखिए :—

समानता

१. दोनों पद्धतियों में ही शुद्ध-विकृत मिलाकर कुल बारह स्वर-स्थान हैं।

२. दोनों पद्धतियों में ही उपर्युक्त बारह स्वरों से ठाठ-उत्पत्ति होकर राग गाए-बजाए जाते हैं।

३. दोनों पद्धतियों में आलाप-गान स्वीकार किया गया है।

४. दोनों में ही आलाप एवं तानों के साथ चीजें गाई जाती हैं।

५. जन्य-जनक (ठाठ राग) का सिद्धान्त दोनों में ही स्वीकार किया गया है।

भिन्नता

१. उत्तरी संगीत-पद्धति में और दक्षिणी संगीत-पद्धति में यद्यपि स्वर-स्थान बारह ही माने गए हैं, किन्तु दोनों के स्वर तथा नामों में अन्तर है।

२. उत्तरी संगीत-पद्धति में केवल दस ठाठों से रागों की उत्पत्ति हुई है, किन्तु दक्षिणी संगीत-पद्धति में बहत्तर जनक ठाठों का प्रमाण मिलता है।

३. दक्षिणी संगीत-पद्धति की चीजें कन्नड़, तेलगू, तमिल इत्यादि भाषाओं में रची हुई होती हैं और उत्तरी संगीत-पद्धति के गीत ब्रज-भाषा, हिन्दी, उर्दू, पंजाबी, मारवाड़ी इत्यादि भाषाओं में होते हैं।

४. दोनों पद्धतियों के ताल भिन्न-भिन्न होते हैं।

५. दोनों संगीत-पद्धतियों में स्वरोच्चारण एवं आवाज निकालने की शैलियाँ भिन्न-भिन्न हैं।

६. इन पद्धतियों में राग अपने-अपने स्वतन्त्र हैं; अर्थात् दक्षिणी राग उत्तरी रागों से समानता नहीं रखते। परन्तु कुछ राग समान भी हैं।

७. दक्षिणी संगीत-पद्धति के शुद्ध स्वर-सप्तक को 'कनकांगी' अथवा 'मुखारी' मेल कहते हैं, किन्तु उत्तरी संगीत-पद्धति के शुद्ध स्वर-सप्तक को 'बिलावल' ठाठ कहा जाता है।

उत्तरी और दक्षिणी स्वरों की तुलना

दक्षिणी (कर्णाटकी) तथा उत्तरी (हिन्दुस्तानी), दोनों ही पद्धतियों में एक सप्तक में बारह स्वर माने गए हैं, किन्तु उनके नामों में कहीं-कहीं परिवर्तन हो गया है; जैसे कर्णाटकी शुद्ध रे, ध हमारी हिन्दुस्तानी पद्धति के कोमल रे, ध के समान हैं तथा हमारे शुद्ध रे, ध उनके शुद्ध ग, नि हैं।

हिन्दुस्तानी (उत्तरी) स्वर	कर्णाटकी (दक्षिणी) स्वर
१ सा	सा
२. कोमल रे	शुद्ध रे
३. शुद्ध रे	पंचश्रुति रे अथवा शुद्ध ग
४. कोमल ग	षट्श्रुति रे, साधारण ग
५. शुद्ध ग	अन्तर ग
६. शुद्ध म	शुद्ध म
७. तीव्र म	प्रति म
८. प	प
९. कोमल ध	शुद्ध ध
१०. शुद्ध ध	पंचश्रुति ध अथवा शुद्ध नि
११. कोमल नि	षट्श्रुति ध अथवा कैशिक नि
१२. शुद्ध नि	काकली नि

क्योंकि हमारे कोमल रे॒, ध॒ उनके शुद्ध रे,ध हैं और हमारे शुद्ध रे, ध उनके शुद्ध ग, नि हैं, अतः उनके (कर्णाटकी) स्वरों के अनुसार शुद्ध स्वर-सप्तक इस प्रकार होगा:—

सा रे ग म प ध नि—कर्णाटकी
सा रे॒ रे म प ध॒ ध—हिन्दुस्तानी

उपर्युक्त कर्णाटकी शुद्ध-सप्तक को दक्षिणी विद्वान् 'मुखारी मेल' कहते हैं। कर्णाटकी स्वरों में किसी स्वर को कोमल अवस्था में नहीं माना गया है, अर्थात् उनके शुद्ध स्वर ही सबसे नीची अवस्था में हैं। जब उनका रूप बदलता है, अर्थात् वे विकृत होते हैं, तो और नीचे न हटकर ऊपर को जाते हैं; जैसे शुद्ध 'रे' के आगे उनका चतुः-श्रुतिक 'रे' आता है, उसी को वे शुद्ध 'ग' कहते हैं और शुद्ध 'ग' के आगे साधारण 'ग' फिर अन्तर 'ग' नाम उन्होंने दिए हैं।

नाद, श्रुति और स्वर का विवेचन

नाद

नकारं प्राणनामानं दकारमनलं विदुः ।
जातः प्राणाग्निसंयोगात्तेन नादोऽभिधीयते ॥

—संगीत-रत्नाकर

अर्थात्—'नकार' प्राण-वाचक (वायु-वाचक) तथा 'दकार' अग्नि-वाचक है, अतः जो वायु और अग्नि के योग (सम्बन्ध) से उत्पन्न होता है, उसी को 'नाद' कहते हैं।

आहतोऽनाहतश्चेति द्विधा नादो निगद्यते ।
सोऽयं प्रकाशते पिंडे तस्मात् पिंडोऽभिधीयते ॥

अर्थात् नाद के दो प्रकार माने जाते हैं—'आहत' तथा 'अनाहत'। जो पिंड (देह) से प्रकट हुआ है, उसे 'पिंड' नाम प्राप्त होता है।

अनाहत नाद

जो नाद केवल ज्ञान से जाना जाता है और जिसके उत्पन्न होने का कोई खास कारण न हो, यानी जो बिना संघर्ष या स्पर्श के पैदा हो जाए, उसे 'अनाहत नाद' कहते हैं; जैसे दोनों कान जोर से बन्द करने पर भी अनुभव करके देखा जाए, तो 'घन्न-घन्न' या 'साँय-साँय' की आवाज सुनाई देती है। इसी अनाहत नाद की उपासना हमारे प्राचीन ऋषि-मुनि करते थे। यह नाद मुक्ति-दायक तो है, किन्तु रक्ति-दायक नहीं। इसलिए यह संगीतोपयोगी भी नहीं है, अर्थात् संगीत से अनाहत नाद का कोई सम्बन्ध नहीं है।

आहत नाद

जो कानों से सुनाई देता है और जो दो वस्तुओं के संघर्ष या रगड़ से पैदा होता है, उसे 'आहत नाद' कहते हैं। इस नाद का संगीत से विशेष सम्बन्ध है। यद्यपि अनाहत नाद को मुक्ति-दाता माना गया है, किन्तु आहत नाद को भी भव-सागर से पार लगानेवाला बताकर 'संगीत-दर्पण' में दामोदर पंडित ने लिखा है :—

स नादस्त्वाहतो लोके रंजको भवभंजकः ।
श्रुत्यादि द्वारतस्तस्मात्तदुत्पत्तिर्निरूप्यते ॥

अर्थात्—आहत नाद व्यवहार में श्रुति इत्यादि (स्वर, ग्राम, मूर्च्छना) से रंजक बनकर भव-भंजक भी बन जाता है, इस कारण इसकी उत्पत्ति का वर्णन करता हूँ।

उपर्युक्त उद्धरणों से यह सिद्ध होता है कि आहत नाद ही संगीत के लिए उपयोगी है। इसी नाद के द्वारा सूर, मीरा इत्यादि ने प्रभु-सान्निध्य प्राप्त किया था।

नाद के सम्बन्ध में तीन बातें ध्यान में रहनी चाहिए—१. नाद का ऊँचा-नीचापन (Pitch), २. नाद का छोटा-बड़ापन (Magnitude) और ३. नाद की जाति अथवा गुण (Timbre)।

नाद का ऊँचा-नीचापन

नाद की उँचाई-निचाई से यह मालूम होता है कि जो आवाज आ रही है, वह ऊँची है या नीची। मान लीजिए, हमने 'सा' स्वर सुना, इसके बाद 'रे' स्वर सुनाई दिया और फिर 'ग' सुनाई दिया; इस प्रकार नियमित ऊँचे स्वर सुनने पर हम उसे 'उच्च नाद' कहेंगे, और 'सां' स्वर से नीचे के 'नि, ध, प' इत्यादि स्वर सुनने पर उसे हम 'निम्न नाद' कहेंगे।

हम चाहते हैं कि आप इसका वैज्ञानिक कारण भी जान लें। इसके लिए आपको यह जानना होगा कि ध्वनि की उत्पत्ति किस प्रकार होती है। ध्वनि की उत्पत्ति का कारण जानने के लिए 'आन्दोलन' शब्द को समझना होगा। जब किसी वस्तु से ध्वनि उत्पन्न होती है तो वह वस्तु झूले की भाँति इधर-उधर बड़ी तीव्र गति से हिलने लगती है। झूले के स्थान पर आप एक दीवार-घड़ी के लटकन का उदाहरण भी ले सकते हैं। जब घड़ी का लटकन हिलता है तो वह अपने लटकने के स्थान से पहले एक ओर जाता है, कुछ दूर जाकर पुन: अपने मूल स्थान पर लौटकर आता है और फिर दूसरी ओर किसी निश्चित दूरी तक जाकर पुन: पहली ओर जाने के लिए अपने मूल स्थान पर लौटता है। इस सम्पूर्ण क्रिया को 'एक आन्दोलन' कहते हैं। इन आन्दोलनों की गति से वायु में लहरें उत्पन्न होती हैं। अब यदि इन लहरों की आन्दोलन-संख्या, जिसे 'कम्पन-संख्या या 'कम्पनांक' भी कहते हैं, एक सैकिंड में सोलह है, अर्थात् एक सैकिंड में इस प्रकार के सोलह कम्पन होते हैं, तो हम इस ध्वनि को सुन सकते हैं, अन्यथा नहीं।

जब इन ध्वनि उत्पन्न करनेवाले आन्दोलनों की गति में नियमितता होती है, अर्थात् घटा-बढ़ी नहीं होती, तब संगीतोपयोगी नाद या'स्वर'का जन्म होता है। उदाहरण के लिए, जब हम कहते हैं कि षड्ज की आन्दोलन-संख्या २४० कम्पन प्रति सैकिंड है, तो हमारा तात्पर्य यह होता है कि जो वस्तु आन्दोलित हो रही है, उससे प्रति सैकिंड २४० आन्दोलन उत्पन्न हो रहे हैं। यहाँ यह बात और ध्यान में रखनी चाहिए कि जो लहरें (तरंगे) इस कम्पन के फलस्वरूप वायु में उत्पन्न होती हैं, उनका साधारण रूप निम्न प्रकार का होता है :—

'अ' 'ब'
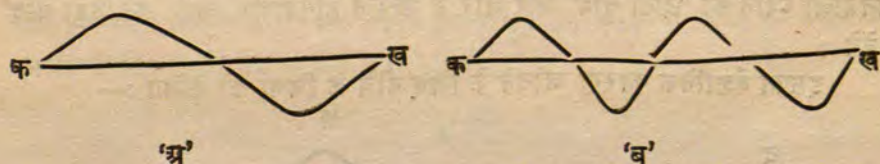
उपर्यंकित 'अ' और 'ब' दो चित्र हैं। दोनों में 'क–ख' रेखा बराबर है, किन्तु 'अ' चित्र में केवल एक सम्पूर्ण तरंग है, जबकि 'ब' चित्र में उतनी ही दूरी में दो तरंगें हैं।

इसका अर्थ यह समझना चाहिए कि जितनी देर में 'अ' चित्र की एक तरंग उत्पन्न होती है, उतनी ही देर में 'ब' चित्र की दो तरंगें उत्पन्न होती हैं। अथवा यों कहिए कि 'ब' चित्र की कम्पन-संख्या 'अ' चित्र की कम्पन-संख्या से दुगुनी है। दूसरे शब्दों में यह भी कहा जा सकता है कि 'ब' चित्र में अंकित नाद 'अ' चित्र में अंकित नाद से दुगुना ऊँचा है। अब यदि 'अ' चित्र में दर्शाई हुई ध्वनि को हम मध्य-सप्तक का षड्ज मान लें, तो 'ब' चित्र में दर्शाई हुई ध्वनि तार-सप्तक का षड्ज अर्थात् 'सां' होगी।

इस आधार पर यह निस्संकोच कहा जा सकता है कि ज्यों-ज्यों आन्दोलन-संख्या बढ़ती है, नाद ऊँचा होता जाता है। अतः जब हम यह कहते हैं कि 'सा' स्वर से 'रे' स्वर का नाद ऊँचा है तो इसका स्पष्ट अर्थ यह है कि 'रे' की कम्पन-संख्या 'सा' की कम्पन-संख्या से अधिक है।

इसी बात को विज्ञान की भाषा में हम यों भी कह सकते हैं कि किसी ध्वनि-तरंग की लम्बाई (Wave-length) बढ़ते जाने पर नाद नीचा और कम होते जाने पर नाद ऊँचा होता जाता है।

यहाँ दूसरी बात यह ध्यान रखने की है कि ज्यों-ज्यों ध्वनि उत्पन्न करनेवाले तार की लम्बाई को हम कम करते जाएँगे, त्यों-त्यों नाद ऊँचा होता जाएगा और ज्यों-ज्यों लम्बाई को बढ़ाते जाएँगे, नाद क्रमशः नीचा होता जाएगा।

स्मरण रहे कि यहाँ जो कम्पन-संख्या होगी, नियमित ही होगी। अनियमित कम्पन से तो शोरगुल ही उत्पन्न होता है। किसी बाजार की भीड़ में या मेले में यदि कोई जोर से चिल्ला रहा हो, कोई धीरे से बोल रहा हो, किसी ओर बच्चे रो रहे हों, या कोई हँस रहा हो, तो इन क्रियाओं के द्वारा वायु में जो कम्पन होंगे, वे अनियमित ही तो होंगे! और ये अनियमित कम्पन शोरगुल ही कहलाएंगे। इसके विपरीत यदि कोई व्यक्ति कुछ गा रहा है या वाद्य बजा रहा है, तो उसकी आवाज के कम्पन हवा में नियमित रूप से होंगे और वे हमें अच्छे भी मालूम होंगे। बस, उसे ही हम संगीतोपयोगी नाद या 'स्वर' कहेंगे।

नाद का छोटा-बड़ापन

जो आवाज धीरे-धीरे सुनाई पड़े, उसे 'छोटा नाद' कहेंगे, और जो आवाज जोर-जोर से सुनाई पड़े, उसे 'बड़ा नाद' कहेंगे। उदाहरण के लिए, यदि किसी घंटे पर आपने नाखून से प्रहार किया, तो ध्वनि बहुत हलकी उत्पन्न होगी, और वह थोड़ी दूर तक ही सुनाई देगी। इसके विपरीत यदि हथौड़े से प्रहार किया तो ध्वनि जोर की उत्पन्न होगी और वह अधिक दूर तक सुनाई देगी। यहाँ धीरे से उत्पन्न होनेवाली ध्वनि को 'छोटा नाद' और जोर से उत्पन्न होनेवाली ध्वनि को 'बड़ा नाद' कहेंगे।

इसका वैज्ञानिक कारण जानने के लिए नीचे के चित्रों को देखिए :—
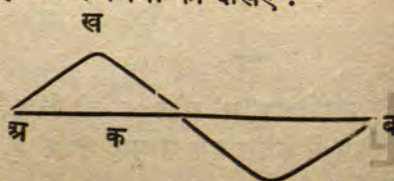
इन दोनों चित्रों की 'अ–ब' रेखाएँ बराबर हैं। परन्तु जो तरंग चित्र सं० १ में है, उसमें जो 'स–द' तरंग की चौड़ाई है, वह चित्र सं० २ की तरंग की चौड़ाई 'क-ख' से कम है।

इसका अर्थ यह समझना चाहिए कि दोनों चित्रों में दर्शाई हुई ध्वनियाँ नाद के ऊँचे-नीचेपन में समान होंगी, क्योंकि तरंग की लम्बाई अर्थात् 'अ–ब' समान हैं; परन्तु चित्र सं० १ की ध्वनि पास तक ही सुनाई देगी और चित्र सं० २ की ध्वनि दूर तक। विज्ञान की भाषा में इसे यों कह सकते हैं कि जब ध्वनि-तरंग की चौड़ाई कम होती है तो नाद छोटा होता है, किन्तु जब ध्वनि-तरंग की चौड़ाई अधिक होती है तो वही नाद बड़ा हो जाता है।

नाद की जाति

नाद की जाति से यह मालूम होता है कि जो आवाज आ रही है, वह किसी मनुष्य की है या किसी वाद्य से निकल रही है; उदाहरणार्थ एक नाद हारमोनियम, सारंगी, सितार या बेला इत्यादि से प्रकट हो रहा है और एक नाद किसी गायक के गले से प्रकट हो रहा है, तो हम नाद प्रकट होने की क्रिया को देखे बिना ही यह बता देंगे कि यह नाद वाद्य का है या किसी मनुष्य का।

नाद-जाति के भिन्न होने का वैज्ञानिक कारण, उस वाद्य अथवा कंठ की बनावट व आकार है, जिसके अन्दर नाद-तरंगें चलती हैं। उदाहरण के लिए, आपने सितार के किसी तार को छेड़ा तो वह कम्पित हुआ और जवारी के ऊपर भी उन कम्पनों का प्रभाव हुआ। जवारी की टाँगें तबली पर रखी हैं, अतः इन जवारी की टाँगों द्वारा तबली में कम्पन उत्पन्न हुए। तबली के कम्पित होने से, जो वायु तूँबे में है, उसपर प्रभाव हुआ। उसके कम्पित होने पर डाँडवाली वायु में भी कम्पन उत्पन्न हुए। इस प्रकार तार को छेड़ने पर सितार के आकार की वायु कम्पित हुई और उसकी एक विशेष जाति बन गई।

अब यदि सितार के स्थान पर यह वाद्य सरोद, वीणा या अन्य कोई है, तो उससे उत्पन्न ध्वनि सितार की ध्वनि से भिन्न होगी।

इसी प्रकार जब हम कुछ बोलते या गाते हैं, तो जो वायु कंठ-पिटक से मुख में आती है, उसपर हमारे कंठ, गालों, दाँतों व जिह्वा की बनावट इत्यादि का प्रभाव पड़ता है। अतः हमारी वह आवाज किसी भी अन्य मनुष्य की आवाज से भिन्न होगी; क्योंकि उसके मुख के भागों की रचना हमारे मुख की रचना से भिन्न है। यही नाद-जाति के भिन्न होने का कारण है।

श्रुति

नित्यं गीतोपयोगित्वमभिज्ञेयत्वमप्युत।
लक्ष्ये प्रोक्तं सुपर्याप्तं संगीतश्रुतिलक्षणम्॥

—अभिनव राग-मंजरी

अर्थात्—वह आवाज, जो गीत में प्रयुक्त की जा सके और एक-दूसरे से अलग एवं स्पष्ट पहचानी जा सके, 'श्रुति' कहलाती है। इसे अधिक स्पष्ट समझने के लिए मान लीजिए कि हमने कोई एक नाद लिया। उदाहरण के लिए, इस नाद की आन्दोलन-संख्या १०० कम्पन प्रति सैकिंड है। अब हमने एक दूसरा नाद लिया, जिसकी आन्दोलन-संख्या १०१ कम्पन प्रति सैकिंड है। वैज्ञानिक दृष्टि से तो ये दो भिन्न नाद हैं, परन्तु इनकी कम्पन-संख्याओं में इतना कम अन्तर है कि किसी कुशल संगीतज्ञ के कान भी इन दोनों नादों को पृथक्-पृथक् शायद ही पहचान सकेंगे। अब यदि हम क्रमशः इस नाद में एक-एक कम्पन प्रति सैकिंड बढ़ाते जाएँ तो एक स्थिति ऐसी आ जाएगी कि ये दोनों नाद अलग-अलग स्पष्ट पहचाने जा सकेंगे या इन दोनों नादों को पृथक्-पृथक् स्पष्ट सुना जा सकेगा। इसी आधार पर विद्वानों ने श्रुति की परिभाषा यह दी है कि 'जो नाद एक-दूसरे से पृथक् तथा स्पष्ट पहचाना जा सके, उसे 'श्रुति' कहते हैं।'

कुछ विद्वान् एक सप्तक में ऐसे पृथक्-पृथक् सुने जा सकनेवाले नादों की संख्या बाईस मानते हैं। उदाहरण के लिए निम्नांकित श्लोक देखिए :—

तस्य द्वाविंशतिर्भेदः श्रवणात् श्रुतयो मताः ।
हृदयाभ्यन्तरसंलग्ना नाड्यो द्वाविंशतिर्मताः ॥

—स्वरमेल-कलानिधि

अर्थात्—हृदय-स्थान में बाईस नाड़ियाँ हैं। उनके सभी नाद स्पष्ट सुने जा सकते हैं, अतः उन्हें ही 'श्रुति' कहते हैं। यही नाद के बाईस भेद माने गए हैं।

हमारे संगीत-शास्त्रकार प्राचीन समय से ही बाईस नाद मानते चले आ रहे हैं। वे नाद क्रमशः एक-दूसरे से ऊँचे चढ़ते चले गए हैं। इन्हीं बाईस नादों को 'श्रुति' कहते हैं; क्योंकि बाईस श्रुतियों पर गान करने में सर्वसाधारण को कठिनाई होती, अतः इन बाईस में से बारह स्वर चुनकर गान-कार्य होने लगा।

स्वरों में श्रुतियों को बाँटने का नियम

प्राचीन ग्रन्थकारों ने श्रुतियों को निम्नांकित क्रम से स्वरों में विभाजित किया है :—

चतुश्चतुश्चतुश्चैव षड्जमध्यमपंचमाः ।
द्वे द्वे निषादगान्धारौ त्रिस्त्रीऋषभधैवतौ ॥

—संगीत-रत्नाकर

अर्थात्—षड्ज, मध्यम और पंचम स्वरों में चार-चार श्रुतियाँ, निषाद और गान्धार में दो-दो श्रुतियाँ तथा ऋषभ और धैवत में तीन-तीन श्रुतियाँ हैं। इस प्रकार बाईस श्रुतियाँ सात स्वरों में बाँट दी गई हैं। आगे दिया हुआ चित्र इसे अधिक स्पष्ट कर देगा :—
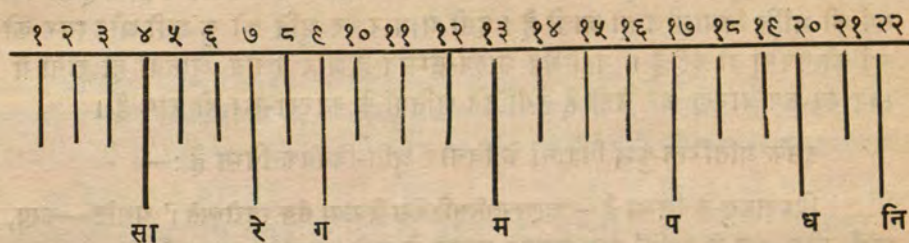
अर्थात्—चौथी श्रुति पर षड्ज, सातवीं पर ऋषभ, नवीं पर गान्धार, तेरहवीं पर मध्यम, सत्तरहवीं पर पंचम, बीसवीं पर धैवत और बाईसवीं पर निषाद है।

इसके विपरीत कुछ आधुनिक विद्वानों एवं ग्रन्थकारों ने पहली श्रुति पर षड्ज, पाँचवीं पर ऋषभ, आठवीं पर गान्धार, दसवीं पर मध्यम, चौदहवीं पर पंचम, अठारहवीं पर धैवत और इक्कीसवीं पर निषाद कायम किया है; जो नीचे दिए हुए चित्र से स्पष्ट हो जाएगा :—
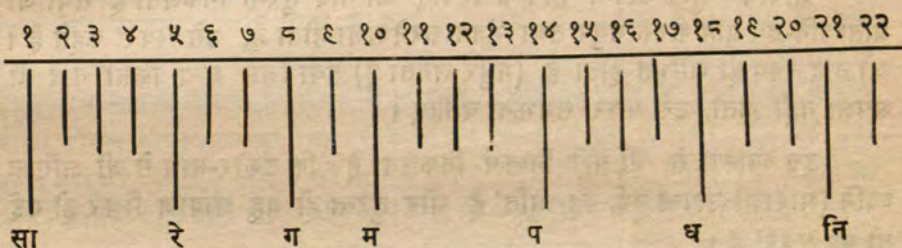
श्रुति और स्वर-तुलना

श्रुतयः स्युः स्वराभिन्ना श्रावणत्वेन हेतुना।
अहिकुण्डलवत्तत्र भेदोक्तिः शास्त्रसम्मता॥
सर्वाश्च श्रुतयस्तत्तद्रागेषु स्वरतां गताः।
रागाः हेतुत्व एतासां श्रुतिसंज्ञैव सम्मता॥

—संगीत-पारिजात

अर्थात्—जो सुनी जा सकती है, वह 'श्रुति' कहलाती है। स्वर और श्रुति में भेद इतना ही है, जितना सर्प तथा उसकी कुंडली में। अर्थात् इन बाईस श्रुतियों में से जो श्रुतियाँ किसी राग-विशेष में प्रयुक्त होती हैं, वे 'स्वर' कहलाती हैं। जब किसी अन्य राग में इन स्वरों के अतिरिक्त अन्य श्रुतियाँ काम में ली जाती हैं, तो जो श्रुतियाँ अब काम में आईं, वे स्वर बन गईं, और जो स्वर छोड़ दिए गए, वे पुनः श्रुतियाँ बन गईं। उदाहरण के लिए, आपने मालकोश राग गाया, तो जिन श्रुतियों पर यह राग गाया-बजाया जाएगा, वे 'स्वर' कहलाएँगी। परन्तु फिर आपने हिंडोल राग गाया, तो जो श्रुतियाँ मालकोश में प्रयुक्त होते समय स्वर बन गई थीं, अब उन्हें छोड़ना पड़ा, अतः वे पुनः श्रुतियाँ बन गईं, और जो श्रुतियाँ हिंडोल में प्रयुक्त होंगी, वे 'स्वर' कहलाएँगी। इस प्रकार जब गान-वादन में श्रुति का प्रयोग नहीं होता तो वह कुंडली

की भाँति सोई हुई रहती है और जब उसका प्रयोग किसी राग-विशेष में होता है तो वही सर्प की भाँति क्रियाशील हो जाती है। इसी आधार पर श्रुति को कुंडली और स्वर को सर्प की उपमा दी गई है। यही भेद शास्त्र-सम्मत है और ये सब श्रुतियाँ ही रागों में स्वर का रूप धारण कर लेती हैं तथा इन श्रुतियों के कारण-रूप ही राग हैं।

इसके अतिरिक्त कुछ विद्वानों के विचार श्रुति-विषयक निम्न हैं :—

विश्वावसु ने लिखा है—'कणस्पर्शात्श्रुतिर्ज्ञेया स्थित्या सैव स्वरोच्यते।' अर्थात्—कण, स्पर्श, मीड़, सूत से 'श्रुति' तथा उसपर ठहरने से वही 'स्वर' हो जाता है।

संगीतदर्पणकार दामोदर पंडित ने श्रुति-स्वर का भेद इस प्रकार बताया है :—

> श्रुत्यनन्तरभावित्वं यस्यानुरणनात्मकः।
> स्निग्धश्च रंजकश्चासौ स्वर इत्यभिधीयते॥
> स्वयं यो राजते नादः स स्वरः परिकीर्तितः।

भावार्थ—श्रुति उत्पन्न होने के पश्चात् जो नाद तुरन्त निकलता है तथा जो प्रतिध्वनि-रूप प्राप्त करके मधुर तथा रंजन करनेवाला होता है, उसे 'स्वर' कहते हैं। जो नाद स्वयं ही शोभित होता है (मधुर लगता है) तथा जिसे अन्य किसी नाद की अपेक्षा नहीं होती, उसे 'स्वर' समझना चाहिए।

इस व्याख्या से भी यही निष्कर्ष निकलता है कि टंकोर-मात्र से जो क्षणिक ध्वनि (आवाज) उत्पन्न हुई, वह 'श्रुति' है और तुरन्त ही वह आवाज स्थिर हो गई तो वह 'स्वर' है।

श्रुति-स्वरूप

> स्वरूपमात्रश्रवणान्नादोऽनुरणनं विना।
> श्रुतिमित्युच्यते भेदास्तस्या द्वाविंशतिर्मताः॥

—संगीत-दर्पण

अर्थात्—प्रथमाघात से अनुरणन (प्रतिध्वनि) हुए बिना जा ह्रस्व (टंकोर) नाद उत्पन्न होता है, उसे 'श्रुति' समझना चाहिए।

श्रुति और स्वर—देखने में ये दो नाम अवश्य हैं; किन्तु ध्यानपूर्वक देखा जाए, तो श्रुति और स्वर में कोई विशेष अन्तर नहीं है, क्योंकि दोनों ही संगीतोपयोगी आवाजें हैं, दोनों का ही प्रयोग गान-वादन में होता है और दोनों ही आवाजें स्पष्ट सुनी जा सकती हैं। अब श्रुति और स्वर का भेद सरलतापूर्वक समझाते हैं।

श्रुति

सुरीली ध्वनियों के एक समूह में से संगीत के प्राचीन पंडितों ने बाईस स्थान ऐसे चुन लिए, जिनकी आवाजें परस्पर ऊँची-नीची हैं और जो संगीत में उपयोगी सिद्ध हुई हैं। इन्हें ही 'श्रुति' कहा है।

स्वर

इसके बाद उन्हीं बाईस ध्वनियों में से बारह ध्वनि ऐसी चुन ली गईं, जिनकी आवाजें परस्पर ऊँची-नीची हैं। किन्तु उन बाईस ध्वनियों में परस्पर जो अन्तराल (Interval) है, वह बहुत ही सूक्ष्म है और इन बारह ध्वनियों में जो परस्पर अन्तराल है, वह उनसे कुछ अधिक है। यही कारण है कि श्रुतियों के अन्तर को साधारण संगीतज्ञ की अपेक्षा एक उत्तम संगीतज्ञ ही अनुभव कर सकता है, किन्तु स्वरों के अन्तर (फासले) को साधारण संगीत-प्रेमी भी पहचान लेते हैं। बारह ध्वनियों को फिर और भी संक्षिप्त किया तो सात ध्वनियाँ ही रह गईं। ये सात शुद्ध स्वर हुए और वे बारह स्वर शुद्ध व विकृत मिलकर हुए।

किसी राग में कोई स्वर लगाते समय कोई-कोई गायक यह कहते देखे जाते हैं कि इस राग का कोमल धैवत ऊँचा है, तो इसका अर्थ यह नहीं कि वहाँ पर कोमल की बजाए तीव्र धैवत लगेगा। उदाहरणार्थ राग पूर्वी में भी कोमल धैवत लगता है और भैरव में भी, किन्तु गुणी संगीतज्ञों का कहना है कि पूर्वी में लगनेवाला कोमल धैवत भैरव राग के कोमल धैवत से एक श्रुति ऊँचा है। इसी प्रकार यह भी कहा जाता है कि खमाज राग के अवरोह में लगनेवाले कोमल निषाद से खमाज के आरोह का कोमल निषाद एक श्रुति ऊँचा है। इसका अर्थ यह हुआ कि खमाज के आरोह में जो कोमल निषाद लगेगा, वह तीव्र निषाद की ओर कुछ खींचकर इस प्रकार ले जाया जाएगा कि तीव्र निषाद को तनिक छूकर शीघ्र ही अपने स्थान पर वापस आ जाए; क्योंकि यदि वहाँ अधिक देर लग गई, तो वह श्रुति-प्रयोग न होकर स्वर-प्रयोग हो जाएगा। इस प्रकार दूसरे स्वर का तनिक स्पर्श करना या छूना 'कण स्वर लगाना' कहलाता है। ऊपर कहा ही जा चुका है कि कण, मीड़, सूत द्वारा जबतक स्वर दिखाया जाता है, तबतक तो 'श्रुति' है और उसपर ठहरने से वही 'स्वर' कहलाता है। उपर्युक्त विवेचन से श्रुति और स्वर की तुलना में निम्नलिखित चार सिद्धान्त निश्चित हुए :—

१. श्रुति बाईस होती हैं और स्वर सात या बारह।

२. श्रुतियों का परस्पर अन्तराल या फासला (Interval) स्वरों की अपेक्षा कम होता है। स्वरों का परस्पर अन्तराल श्रुतियों की अपेक्षा अधिक होता है।

३. कण, मीड़ और सूत द्वारा जबतक किसी सुरीली ध्वनि को व्यक्त किया जाता है, तबतक तो वह 'श्रुति' है, और जहाँ उसपर ठहराव हुआ कि वह 'स्वर' कहलाएगी।

श्रुति और स्वर की तुलना में अहोबल पंडित ने 'संगीत-पारिजात' में सर्प और कुंडली का जो उदाहरण दिया है, उसके अनुसार सर्प की कुंडली तो श्रुति है और सर्प स्वर है। कुंडली के अन्दर जिस प्रकार सर्प रहता है, उसी प्रकार श्रुतियों के अन्दर स्वर स्थित हैं।

प्राचीन तथा मध्यकालीन ग्रन्थकारों की श्रुतियाँ

प्राचीन काल में संगीत के दो मुख्य ग्रन्थकार भरत और शार्ङ्गदेव हुए हैं। ईसा से काफी पूर्व भरत ने अपना प्रसिद्ध ग्रन्थ 'नाट्यशास्त्र' लिखा और तेरहवीं

शताब्दी में शार्ङ्गदेव ने 'संगीत-रत्नाकर' नामक ग्रन्थ लिखा, जिसका प्रमाण आज भी बहुत-सी संगीत-पुस्तकों द्वारा मिलता है। इन दोनों पंडितों ने अपने-अपने ग्रन्थों में श्रुतियों का वर्णन भी किया है, जिसमें इन दोनों ने एकमत से कुल बाईस श्रुतियाँ ही मानी हैं; साथ ही उनका श्रुति-स्वर-विभाजन भी एक ही सिद्धान्त पर हुआ है। अर्थात् कुछ विद्वानों के मतानुसार ये दोनों ही पंडित अपने स्वरों का परस्पर सम्बन्ध मालूम करने के लिए श्रुति का एक निश्चित नाद स्वीकार करते थे, यानी वे सब श्रुतियों को समान मानते थे। उनकी पहली श्रुति से दूसरी श्रुति जितने फासले पर है, उतना ही फासला उन्होंने समस्त श्रुतियों में रखा है। इसी फासले या अन्तर को श्रुत्यन्तर' कहते हैं।

सारणा-चतुष्टयी

('षड्जग्रामवीणा' पर भरत की श्रुतियाँ)

भरत का कहना है कि ऐसी दो वीणाएँ लेकर, जिनमें सात-सात तार चढ़े हुए हों, षड्ज-ग्राम में मिलाओ। दोनों वीणाओं में जो सात-सात तार चढ़े हुए हैं, उनको सात स्वरों में मिलाने का ढंग भरत इस प्रकार बताते हैं:—

षड्ज : यह स्वर चौथी श्रुति पर रहना चाहिए।
ऋषभ : यह स्वर सातवीं श्रुति पर रहना चाहिए।
गान्धार : यह स्वर नवीं श्रुति पर रहना चाहिए।
मध्यम : यह स्वर तेरहवीं श्रुति पर रहना चाहिए।
पंचम : यह स्वर सत्तरहवीं श्रुति पर रहना चाहिए।
धैवत : यह स्वर बीसवीं श्रुति पर रहना चाहिए।
निषाद : यह स्वर बाईसवीं श्रुति पर रहना चाहिए।

इस प्रकार की वीणा जो यार हुई, वह षड्जग्राम की 'अचल वीणा' कही जाएगी।

इसके पश्चात् षड्ज-ग्रामवाली इन दो वीणाओं में से एक वीणा लेकर उसका केवल पंचम का तार एक श्रुति कम कर दो और अन्य तारों को उसी प्रकार रहने दो; अर्थात् इस वीणा का पंचमवाला तार एक श्रुति नीचा हो गया, बाकी 'सा रे ग म ध नि', ये छह तार अपने-अपने स्थान पर कायम रहे। यह 'मध्यमग्राम-वीणा' कही जाएगी।

इसके बाद इसी वीणा के शेष छह तारों को भी एक-एक श्रुति कम कर दो; इसे उन्होंने 'चल वीणा' कहा। अब इस 'चल वीणा' पर स्वरों की स्थिति इस प्रकार हो जाएगी:—

स्वर :	सा	रे	ग	म	प	ध	नि
श्रुति-सं० :	३	६	८	१२	१६	१९	२१

अर्थात् उपर्युक्त सातों स्वर क्रमशः तीसरी, छठी, आठवीं, बारहवीं, सोलहवीं उन्नीसवीं, और इक्कीसवीं श्रुतियों पर पहुँच गए। ऐसा होने से यह स्पष्ट है कि पहली 'षड्जग्राम-वीणा' या 'अचल-वीणा' के सातों स्वरों में एक श्रुति का अन्तर हो गया। इसे भरत ने 'प्रथम सारणा' कहा है।

इसके पश्चात् भरत लिखते हैं कि 'चल वीणा' के पंचम को फिर एक श्रुति से कम कर दो और इसी प्रकार शेष छह स्वरों को भी एक-एक श्रुति नीचे कर दो। अब स्वरों की स्थिति इस प्रकार हो जाएगी :—

स्वर :	सा	रे	ग	म	प	ध	नि
श्रुति-सं०	२	५	७	११	१५	१८	२०

ऐसा होने से 'चल वीणा' के 'ग' और 'नि', जोकि क्रमश: सातवीं और बीसवीं श्रुति पर स्थित हैं, क्रमश: 'अचल वीणा' के 'रे' और 'ध' से मिलने लगेंगे; क्योंकि 'अचल वीणा' के 'रे-ध' भी क्रमश: सातवीं और बीसवीं श्रुति पर स्थित हैं। इसका अर्थ यह हुआ कि 'चल वीणा' और 'अचल वीणा' के स्वरों में दो श्रुतियों का अन्तर हो गया। इसी का नाम 'द्वितीय सारणा' है।

इसी प्रकार भरत ने 'चल वीणा' के स्वरों को पुन: एक-एक श्रुति कम करके आगे बताया है कि अब 'चल वीणा' 'अचल वीणा' से तीन श्रुतियाँ कम हो जाएगी। फलस्वरूप 'चल वीणा' के ऋषभ-धैवत क्रमश: 'अचल वीणा' के षड्ज व पंचम में लीन हो जाएँगे। क्योंकि ये दोनों स्वर तीन-तीन श्रुतियों के हैं। इसे भरत ने 'तृतीय सारणा' कहा है।

इसी प्रकार 'चल वीणा' को चौथी बार एक-एक श्रुति और कम करने पर 'चल वीणा' के पंचम, मध्यम और षड्ज क्रमश: 'अचल वीणा' के मध्यम, गान्धार और निषाद में लीन हो जाएँगे। इसे भरत ने 'चतुर्थ सारणा' कहा है।

इन्हीं सारणाओं के आधार पर कुछ लोगों का अनुमान है कि उनकी श्रुतियाँ परस्पर समानता रखती थीं, क्योंकि यदि उनके आपसी फासले कम या ज्यादा होते, तो 'अचल वीणा' का उपर्युक्त स्वर-निर्देशन सम्भव ही नहीं था। भरत के इसी सिद्धान्त अर्थात् 'समान श्रुत्यन्तर' को शार्ङ्गदेव भी मानते हैं।

इसके विरुद्ध मध्यकालीन विद्वानों ने श्रुतियाँ तो एक सप्तक में बाईस ही मानी हैं, किन्तु वे 'समान श्रुत्यन्तर' वाले सिद्धान्त को स्वीकार नहीं करते।

१४-वीं सदी से १८-वीं शताब्दी तक मध्यकालीन विद्वानों में मुख्य चार विद्वानों के संगीत-ग्रन्थ उल्लेखनीय हैं :—

राग-तरंगिणी

यह ग्रन्थ लोचन कवि ने १५-वीं शताब्दी के आरम्भ में लिखा।

संगीत-पारिजात

यह ग्रन्थ पं० अहोबल ने १७-वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में लिखा।

हृदय-कौतुक और हृदय-प्रकाश

ये दोनों ग्रन्थ हृदयनारायण देव ने १७-वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में लिखे।

राग-तत्त्व-विबोध

१८-वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में यह ग्रन्थ श्रीनिवास पंडित ने लिखा।

वीणा के तार पर बारह स्वरों के स्थान निश्चित करने का सर्वप्रथम प्रयास 'संगीत-पारिजात' के लेखक अहोबल पंडित ने किया। उनके बाद हृदयनारायण देव और श्रीनिवास पंडित ने वीणा के तार पर स्वरों को स्थापना अहोबल के अनुसार ही की है।

यद्यपि मध्यकालीन विद्वान् 'चतुश्चतुश्चतुश्चैव……' वाले श्लोक के अनुसार सात स्वरों का विभाजन बाईस श्रुतियों पर स्वीकार करते हैं तथा प्राचीन पंडितों के अनुसार ही उन्होंने भी प्रत्येक शुद्ध स्वर को उस स्वर की अन्तिम श्रुति पर स्थित किया है, किन्तु प्राचीन और मध्यकालीन विद्वानों में श्रुतियों के समान अन्तर पर मतभेद है।

आधुनिक ग्रन्थकारों की श्रुतियाँ

ऊपर बताए हुए प्राचीन और मध्यकालीन ग्रन्थकारों के विवेचन द्वारा यह बताया जा चुका है कि इन्होंने अपना प्रत्येक शुद्ध स्वर अन्तिम श्रुति पर निश्चित किया है। इसके विरुद्ध हमारे आधुनिक ग्रन्थकार अपना प्रत्येक शुद्ध स्वर प्रथम श्रुति पर स्थापित करते हैं। आधुनिक ग्रन्थकारों में 'अभिनव राग-मंजरी' के लेखक पं० विष्णु-नारायण भातखंडे का नाम विशेष उल्लेखनीय है। इन्होंने श्रुतियों के विभाजन के बारे में इस प्रकार लिखा है :—

वेदाचलांकश्रुतिषु त्रयोदश्यां श्रुतौ तथा।
सप्तदश्यां च विंश्यां च द्वाविंश्यां च श्रुतौ क्रमात् ॥
षड्जादीनां स्थितिः प्रोक्ता शुद्धाख्या भरतादिभिः।
हिन्दुस्थानीयसंगीते श्रुतिक्रमविपर्ययः ॥
एते शुद्धस्वराः सप्त स्वस्वाद्यश्रुतिसंस्थिताः।

अर्थात्—भरत इत्यादि प्राचीन शास्त्रकारों ने श्रुतियाँ शुद्ध स्वरों में इस क्रम से बाँटी हैं कि षड्ज चौथी श्रुति पर, ऋषभ सातवीं श्रुति पर, गान्धार नवीं पर, मध्यम तेरहवीं पर, पंचम सत्रहवीं पर, धैवत बीसवीं पर और निषाद बाईसवीं श्रुति पर स्थित है। किन्तु हिन्दुस्तानी संगीत-पद्धति में श्रुतियों को सात शुद्ध स्वरों पर बाँटने का क्रम इसके विपरीत रखकर प्रत्येक शुद्ध स्वर प्रथम श्रुति पर स्थापित किया गया है।

इस प्रकार आधुनिक ग्रन्थकार पहली श्रुति पर षड्ज, पाँचवीं पर ऋषभ, आठवीं पर गान्धार, दसवीं पर मध्यम, चौदहवीं पर पंचम, अठारहवीं पर धैवत और इक्कीसवीं पर निषाद कायम करते हैं।

प्राचीन व आधुनिक श्रुति स्वर-विभाजन

आगे दिए हुए कोष्ठक में प्राचीन ग्रन्थों द्वारा श्रुतियोंका शुद्ध स्वरों पर विभाजन दिखाया गया है; साथ ही आधुनिक संगीत-ग्रन्थकारों ने शुद्ध स्वर कौन-कौनसी श्रुतियों पर माने हैं, यह भी दिखाया गया है।

श्रुति सं०	श्रुति-नाम	प्राचीन ग्रन्थों के शुद्धस्वर-स्थान	आधुनिक संगीत-पद्धति के अनुसार शुद्धस्वर-विभाजन
१	तीव्रा ··· ··· ···	··· ··· ··· ···	षड्ज
२	कुमुद्वती ··· ···	···· ···· ···· ····	
३	मन्दा ··· ··· ···	···· ···· ···· ····	
४	छन्दोवती ··· ···	षड्ज ···· ···· ····	
५	दयावती ···· ····	···· ···· ···· ····	ऋषभ
६	रंजनी···· ···· ····	···· ···· ···· ····	
७	रक्तिका ···· ····	ऋषभ ···· ···· ····	
८	रौद्री···· ···· ····	···· ···· ···· ····	गान्धार
९	क्रोधा···· ···· ····	गान्धार ···· ····	
१०	वज्रिका ···· ····	···· ···· ····	मध्यम
११	प्रसारिणी···· ····	···· ···· ···· ····	
१२	प्रीति ···· ···· ····	···· ···· ···· ····	
१३	मार्जनी···· ···· ····	मध्यम ···· ····	
१४	क्षिति···· ···· ····	···· ···· ···· ····	पंचम
१५	रक्तिका ···· ····	···· ···· ···· ····	
१६	सन्दीपनी···· ····	···· ···· ···· ····	
१७	आलापिनी···· ····	पंचम ···· ···· ····	
१८	मदन्ती ···· ····	···· ···· ···· ····	धैवत
१९	रोहिणी ···· ····	···· ···· ···· ····	
२०	रम्या ···· ···· ····	धैवत ···· ···· ····	
२१	उग्रा ···· ···· ····	···· ···· ···· ····	निषाद
२२	क्षोभिणी ···· ····	निषाद ···· ····	

यह तो हुआ श्रुतियों का शुद्धस्वर-विभाजन। अब रहे पाँच विकृत स्वर। उनके लिए यह नियम है कि जिस श्रुति पर स्वर कायम हुआ है, उससे तीसरी श्रुति पर आगेवाला विकृत स्वर आएगा। इस प्रकार शुद्ध स्वरों से दो-दो श्रुति पर विकृत स्वरों की स्थापना करने पर यह तालिका बनेगी :—

बाईस श्रुतियों पर आधुनिक पद्धति के बारह स्वरों की स्थापना

सं०	श्रुति-नाम	स्वर	स्वर-आन्दोलन
१	तीव्रा ··· ··· ···	सा (अचल)	२४०
२	कुमुद्वती ··· ··· ···	··· ··· ··· ···	··· ··· ··· ···

३	मन्दा ... : ...	रे (कोमल)	२५४ २/१७
४	छन्दोवती	... ...	... ...
५	दयावती	रे (तीव्र)	२७०
६	रंजनी	... ...	... ...
७	रक्तिका	ग (कोमल)	२८८
८	रौद्री	ग (तीव्र)	३०१ १७/४३
९	क्रोधा	... ...	... ...
१०	वज्रिका	म (कोमल)	३२०
११	प्रसारिणी	... ...	... ...
१२	प्रीति	मं (तीव्र)	३३८ १४/१७
१३	मार्जनी	... ...	... ...
१४	क्षिति	प (अचल)	३६०
१५	रक्तिका	... ...	... ...
१६	सन्दीपनी	ध (कोमल)	१९१ ३/१७
१७	आलापिनी	... ...	... ...
१८	मदन्ती	ध (तीव्र)	४०५
१९	रोहिणी	... ...	... ...
२०	रम्या	नि (कोमल)	४३२
२१	उग्रा	नि (तीव्र)	४५२ ४/४३
२२	क्षोभिणी	... ...	... ...
१	तीव्रा	सां (तार)	४८०

अब हम प्राचीन, मध्यकालीन और आधुनिक संगीत-ग्रन्थकारों की एक तुलनात्मक तालिका देकर यह बताते हैं कि श्रुति-स्वर के बारे में उनके विचारों में कहाँ-कहाँ एकता और मतभेद है :—

प्राचीन, मध्यकालीन और आधुनिक ग्रन्थकारों का श्रुति-स्वर के सम्बन्ध में

तुलनात्मक विवेचन

वे सिद्धान्त, जिनपर तीनों ग्रन्थकार एकमत हैं :—

प्राचीन ग्रन्थकार (भरत, शार्ङ्गदेव आदि	मध्यकालीन ग्रन्थकार (अहोबल, श्रीनिवास, लोचन)	आधुनिक ग्रन्थकार (भातखंडे आदि)
बाईस श्रुतियाँ एक सप्तक में मानते हैं।	बाईस श्रुतियाँ एक सप्तक में मानते हैं।	बाईस श्रुतियाँ एक सप्तक में मानते हैं।

शुद्ध तथा विकृत बारह स्वर इन्हीं बाईस श्रुतियों पर बाँटते हैं।	शुद्ध तथा विकृत बारह स्वर इन्हीं बाईस श्रुतियों पर बाँटते हैं।	शुद्ध तथा विकृत बारह स्वर इन्हीं बाईस श्रुतियों पर बाँटते हैं।
षड्ज, मध्यम, पंचम की चार-चार श्रुतियाँ, निषाद-गान्धार की दो-दो श्रुतियाँ और ऋषभ-धैवत की तीन-तीन श्रुतियाँ मानकर स्वरों की स्थापना करते हैं।	प्राचीन ग्रन्थकारों की तरह ही इन्होंने भी उसी प्रकार के ये विभाजन स्वीकार करके प्राचीन सिद्धान्त स्वीकार किया है।	प्राचीन तथा मध्यकालीन ग्रन्थकारों के अनुसार इन्होंने भी इसी नियम का पालन करके उनका मत स्वीकार किया है।

वे सिद्धान्त, जिनपर आपस में मतभेद है :—

अपनी बाईस श्रुतियों को समानान्तर मानते हैं, अर्थात् प्रत्येक श्रुति का अन्तराल (Interval) बराबर-बराबर रखते हैं।	बाईस श्रुतियों को असमान मानकर उनका आपसी श्रुत्यन्तर बराबर-बराबर नहीं मानते।	बाईस श्रुतियों को असमान मानकर उनका आपसी श्रुत्यन्तर बराबर-बराबर नहीं मानते।
अपना प्रत्येक शुद्ध स्वर उस स्वर की शास्त्रोक्त अन्तिम श्रुति पर रखते हैं; अर्थात् सा, रे, ग, म, प, ध, नि ४-७-९-१३-१७-२०-२२, इन श्रुतियों पर रखते हैं।	इस विषय में यह भी प्राचीन ग्रन्थकारों का अनुकरण करते हैं और उसी प्रकार अपने सातों शुद्ध स्वर ४-७-९-१३-१७-२०-२२-वीं श्रुतियों पर रखते हैं।	अपना प्रत्येक शुद्ध स्वर पहली श्रुति पर कायम करके सा, रे, ग, म, प, ध, नि क्रमशः १-५-८-१०-१४-१८-२१, इन श्रुतियों पर स्थापित करते हैं।
इनके शुद्धस्वर-सप्तक में आधुनिक दृष्टि से ग–नि कोमल हैं।	इनके सप्तक में जो शुद्ध स्वर हैं, उनमें ग-नि हमारी दृष्टि से कोमल हैं। अर्थात् आधुनिक काफी ठाठ ही इनका शुद्ध-स्वर सप्तक है।	अपने शुद्धस्वर-सप्तक में बिलावल के स्वर निश्चित करते हैं।
वीणा के तार पर भिन्न-भिन्न स्वरों की स्थापना करने का इनके ग्रन्थों में कोई उल्लेख नहीं मिलता।	वीणा के तार की लम्बाई पर शुद्ध व विकृत स्वरों की स्थापना करते हैं।	वीणा के तार की लम्बाई पर शुद्ध व विकृत स्वरों की, स्थापना करते हैं, किन्तु रे, म॑, ध, इन तीन विकृतस्वरों पर मतभेद है।
शुद्ध तथा विकृत स्वरों की आन्दोलन-संख्या निकालने का इनके ग्रन्थों में कोई उल्लेख नहीं मिलता।	शुद्ध तथा विकृत स्वरों की आन्दोलन-संख्या निकालने का इन्होंने भी कोई प्रयास नहीं किया।	शुद्ध तथा विकृत बारह स्वरों की आन्दोलन-संख्या निकालकर इन्होंने अपने ग्रन्थों में इसका वर्णन किया है।

क्या भरत की श्रुतियों का अन्तराल समान था ?

इस अध्याय को समाप्त करने से पूर्व इस विषय पर विचार कर लेना अनुचित न होगा।

आज के युग में यह निश्चय हो चुका है कि ये श्रुति-अन्तराल असमान हैं। आचार्य डा० कैलासचन्द्र देव बृहस्पति का 'श्रुति-दर्पण' इसे अधिक स्पष्ट कर देगा।

आधुनिक युग में आचार्य बृहस्पति ने अपने ग्रन्थ 'भरत का संगीत-सिद्धान्त' (सन् १९५९ का संस्करण) में पृष्ठ २२ पर इसका विवेचन किया है। यदि आप भी इस श्रुति-दर्पण पर चतुःसारणा को करके देखें, तो आप यह स्पष्ट समझ जाएँगे कि भरत की श्रुतियाँ असमान थीं।

इसके लिए आप एक ऐसा तानपूरा लीजिए, जिसकी डाँड सपाट हो, अर्थात् बीच से उठी हुई न हो। इस तानपूरे पर परदे भी सपाट हों, अर्थात् वे सितार के परदों की भाँति बीच में उठे हुए न हों। तानपूरे में पाँच खूँटियाँ हों। अब पाँच तार एक-जैसे चढ़ा लीजिए। घुड़च बिलकुल सीधी हो, तनिक भी आड़ी-तिरछी न हो। परदे भी बिलकुल सीधे रहें। बस, यही हमारा श्रुति-दर्पण होगा। इसपर नियम पूर्वक षड्ज-ग्राम के परदे मिला लीजिए। इसके पाँचों तारों को भी समान ध्वनि में मिला लीजिए। इस श्रुति-दर्पण में बाईं ओरवाले तार को हम पहला तार कहेंगे। अन्य तार क्रमशः दूसरा, तीसरा चौथा और पाँचवाँ तार कहलाएँगे।

मूल सप्तक

पहले तार को षड्ज इत्यादि के परदों पर दबाकर छेड़ने से जो सप्तक बोलेगा, उसे हम 'मूल सप्तक' कहेंगे। यह पूर्वोक्त पद्धति के 'अचल सप्तक' का काम देगा।

प्रथम सारणा

दूसरे तार को इतना उतारिए कि 'मूल सप्तक' के ऋषभ के साथ उसके पंचम का संवाद षड्ज-मध्यम-भाव से होने लगे। इतना करने पर आप देखेंगे कि दूसरा तार 'मूल सप्तक' के तार की अपेक्षा 'कुछ' उतरा हुआ है। यह 'कुछ' अन्तर ही भरत की भाषा में 'प्रमाण-श्रुति' का अन्तर है।

अब यदि किसी भी परदे पर पहले और दूसरे तार को दबाकर बजाया जाए तो दोनों तारों की ध्वनियों में प्रमाण-श्रुति का अन्तर स्पष्ट सुनाई देगा। इसे यों भी कहा जा सकता है कि दूसरे तार पर ध्वनित होनेवाले स्वर, मूल सप्तक के तार पर ध्वनित होनेवाले स्वरों से 'प्रमाण-श्रुति' नीचे होंगे।

द्वितीय सारणा

अब तीसरे तार को इतना उतारिए कि उसके गान्धार की ध्वनि, मूल सप्तक के ऋषभ की ध्वनि में मिल जाए। इतना करने पर आप देखेंगे कि तीसरे तार का निषाद मूल सप्तक के धैवत में स्वतः मिल गया। तीसरे तार पर बोलनेवाला षड्ज-ग्रामिक सप्तक अब मूल सप्तक की अपेक्षा दो श्रुति उतरा हुआ है।

तृतीय सारणा

चौथे तार को अब इतना उतारिए कि उसका ऋषभ, मूल सप्तक के षड्ज में मिल जाए। ऐसा करने से चौथे तार का धैवत मूल सप्तक के पंचम में स्वतः मिल जाएगा। चौथे तार पर मिला हुआ षड्जग्रामिक सप्तक अब मूल सप्तक की अपेक्षा तीन श्रुतियाँ उतरा हुआ है।

चतुर्थ सारणा

अब पाँचवें तार को इतना उतारिए कि उसका मध्यम मूल सप्तक के गान्धार में मिल जाए। यह हो जाने पर पाँचवें तार के पंचम और षड्ज क्रमशः मूल सप्तक के मध्यम और निषाद में स्वतः मिल जाएँगे। इस स्थिति में पाँचवें तार पर ध्वनित होनेवाला सप्तक मूल सप्तक की अपेक्षा चार श्रुतियाँ उतरा हुआ है।

श्रुतियों के परिमाण

श्रुति-दर्पण के पहले और दूसरे तार की ध्वनि का अन्तर 'प्रमाण-श्रुति' है। बृहस्पतिजी ने इसे 'ग' अन्तर कहा है। दूसरे और तीसरे तारों को क्रमशः धीरे से बजाने पर हमें 'ग' अन्तर से बड़ा अन्तर दिखाई देगा। इसे बृहस्पतिजी ने 'ख' अन्तर कहा है। तीसरे और चौथे तार को छेड़ने पर हमें इनकी ध्वनियों में 'ख' अन्तर से बड़ा अन्तर सुनाई देगा। इसे बृहस्पतिजी ने 'क' अन्तर कहा है। अब चौथे और पाँचवें तारों की ध्वनियों में फिर 'ग' अन्तर सुनाई देगा; (क्योंकि चौथे तार के ऋषभ के साथ पाँचवें तार के पंचम का षड्ज-मध्यम-भाव से उसी प्रकार संवाद है, जिस प्रकार पहले तार के ऋषभ का संवाद दूसरे तार के पंचम के साथ है।

इस आधार पर यह निर्विवाद सिद्ध है कि महर्षि भरत की श्रुतियाँ असमान थीं। इनमें तीन परिमाण थे। 'क' अन्तर सबमें बड़ा था, 'ख' उससे छोटा और 'ग' सबसे छोटा।

इस अध्याय को समाप्त करने से पूर्व एक बात और समझ लेनी चाहिए कि जिन स्वरों में 'स-ग' अन्तर है, उनमें दो 'क', दो 'ख' और तीन 'ग' का अन्तर होना चाहिए। जिनमें 'स-म' का अन्तर है, उनमें दो 'क', तीन 'ख' और चार 'ग' का अन्तर होना चाहिए और जिनमें 'स-प' का अन्तर है, उनमें तीन 'क', चार 'ख' और छह 'ग' का अन्तर आवश्यक है। एक सप्तक में पाँच 'क', सात 'ख' और दस श्रुतियाँ 'ग' होती हैं।

स्वर-शास्त्र (Tonality)

स्वर-स्थान और आन्दोलन-संख्या

जब हम वीणा, सितार या तानपूरा के किसी तार को छेड़ते या बजाते हैं, तो उस तार से एक झनकार पैदा होती है। उस झनकार द्वारा एक सैंकिड में हवा में जो कम्पन पैदा होता है, उसे ही आन्दोलन (Vibration) कहते हैं। इसे पीछे समझा दिया गया है। आन्दोलन-संख्या जितनी अधिक होती है, नाद उतना ही ऊँचा होता है और आन्दोलन-संख्या जितनी कम होती है, उतना ही नाद नीचा होता है।

इसी प्रकार तार की लम्बाई से भी नाद की उँचाई और निचाई ज्ञात होती है। तार की लम्बाई कम होगी, तो नाद ऊँचा पैदा होगा और तार की लम्बाई अधिक होगी, तो नाद नीचा पैदा होगा।

स्वरों की आन्दोलन-संख्या निकालना

ऊपर बताया जा चुका है कि जितनी ही आवाज ऊँची होगी, उतने ही आन्दोलन अधिक होंगे और आवाज जितनी नीची होती जाएगी, आन्दोलन-संख्या उसी अनुपात से कम होती जाएगी।

विज्ञान के पंडितों ने यह सिद्ध कर दिया है कि सबसे नीची आवाज द्वारा एक सैंकिड में सोलह आन्दोलन हो सकते हैं और सबसे ऊँची आवाज के एक सैंकिड में ३८००० आन्दोलन हो सकते हैं। यह ऊँची आवाज लगभग ग्यारह सप्तक उँचाई की होगी। इस हिसाब से षड्ज स्वर की आन्दोलन-संख्या २४० मानकर हमारे शास्त्रकारों ने तथा पश्चिमी विद्वानों ने बारह स्वरों की आन्दोलन-संख्या नियत की है।

स्वरों की आन्दोलन-संख्या मालूम करने के तीन आधार हैं:—

(१) जिस स्वर की आन्दोलन-संख्या मालूम करनी हो, उसके तार की लम्बाई का नाप।
(२) षड्ज स्वर के तार की लम्बाई।
(३) षड्ज स्वर की आन्दोलन-संख्या।

स्वरों का गुणान्तर

स्वरों की आन्दोलन-संख्या मालूम करने के लिए स्वरों के आपसी गुणान्तर को समझे बिना आगे बढ़ना ठीक न होगा। दो स्वरों की आन्दोलन-संख्याओं के भजनफल को उनका गुणान्तर या स्वरान्तर कहते हैं; जैसे षड्ज स्वर की आन्दोलन-संख्या २४० मान ली गई है; अब यदि पंचम स्वर की आन्दोलन-संख्या ३६० हो, तो षड्ज और पंचम का गुणान्तर बड़ी संख्या में छोटी संख्या का भाग देने से निकल आएगा; अर्थात् ३६०÷२४०=$\frac{३६०}{२४०}$ अथवा $\frac{३}{२}$ या १$\frac{१}{२}$। इसका अर्थ यह हुआ कि पंचम स्वर षड्ज स्वर से डेढ़गुना ऊँचा है।

इस प्रकार यदि किसी स्वर का गुणान्तर हमें मालूम हो, तो षड्ज की आन्दोलन-संख्या २४० को उससे गुणा कर देने से उस स्वर की आन्दोलन-संख्या निकल

आती है। चाहे जिस स्वर की आन्दोलन-संख्या निकाली जाए, किन्तु षड्ज की मदद बिना वह नहीं निकल सकेगी, क्योंकि षड्ज ही सब स्वरों का आधार है।

तार की लम्बाई के नाप से भी स्वरों का गुणान्तर निकल आता है; जैसे षड्ज के तार की लम्बाई छत्तीस इंच है और मध्यम की लम्बाई सत्ताईस इंच है; अब हमने इसका गुणान्तर निकाला, तो ३६ में २७ का भाग दिया; इसका अर्थ हुआ $\frac{३६}{२७}$ या $\frac{४}{३}$। इस प्रकार षड्ज और मध्यम में ४ : ३ का या $\frac{४}{३}$ का स्वरान्तर है। अब इसी गुणान्तर या स्वरान्तर को लेकर मध्यम स्वर की आन्दोलन-संख्या मालूम की जाए, तो इस प्रकार निकलेगी— $\frac{४}{३} \times २४० = ३२०$; क्योंकि षड्ज की मानी हुई आन्दोलन-संख्या २४० है और षड्ज-मध्यम का स्वरान्तर $\frac{४}{३}$ है, इसलिए $\frac{४}{३}$ को २४० से गुणा करके आसानी से मध्यम की आन्दोलन-संख्या ३२० निकल आई। इसी प्रकार पंचम की आन्दोलन-संख्या निकालने के लिए सा = ३६ इंच, प = २४ इंच; इनका स्वरान्तर हुआ $\frac{३६}{२४}$ यानी $\frac{३}{२}$; इसको षड्ज की आन्दोलन-संख्या २४० से गुणा कर दिया, तो $\frac{३}{२} \times २४० = ३६०$ 'प' की आन्दोलन-संख्या निकल आई।

यह तो हुआ स्वरों की लम्बाई से आन्दोलन-संख्या निकालने का नियम। अब यह बताते हैं कि आन्दोलन-संख्या से स्वरों की लम्बाई किस प्रकार निकलती है :—

आन्दोलन-संख्या से लम्बाई निकालना

अगर दो स्वरों की आन्दोलन-संख्या हमें मालूम हो, तो उनकी लम्बाई भी निकाली जा सकती है और यदि उनमें से एक ही स्वर की लम्बाई मालूम हो, तो गुणान्तर (स्वरान्तर) निकालकर लम्बाई मालूम की जाएगी; उदाहरणार्थ षड्ज और मध्यम की आन्दोलन-संख्याओं से हमें मध्यम स्वर की लम्बाई मालूम करनी है, तो इस प्रकार करेंगे—षड्ज = २४० इंच, मध्यम = ३२० इंच; इनका गुणान्तर हुआ $\frac{३२०}{२४०} = \frac{४}{३}$; इस गुणान्तर का षड्ज की लम्बाई ३६ इंच में भाग दिया गया, $३६ \div \frac{४}{३} = २७$ इंच मध्यम की लम्बाई निकल आई। यहाँ पर एक बात ध्यान में रखनी चाहिए कि लम्बाई से आन्दोलन निकालने में तो स्वरान्तर का षड्ज की आन्दोलन-संख्या से गुणा करना होगा, और जब आन्दोलन से लम्बाई निकाली जाएगी, तब षड्ज की लम्बाई में उस स्वरान्तर का भाग देना होगा। इस प्रकार मालूम होगा कि तार की लम्बाई और स्वर की आन्दोलन-संख्या का सम्बन्ध बिलकुल उलटा है। लम्बाई घटेगी, तो नाद या आवाज ऊँची होगी; जैसे 'सा' की लम्बाई ३६ इंच है, प की २४ इंच ही रह गई। 'सा' से 'प' की आवाज तो ऊँची हो गई, किन्तु लम्बाई कम हो गई। इसके विरुद्ध स्वर ऊँचा होता है, तो आन्दोलन-संख्या बढ़ती है और स्वर नीचा होता है, तो आन्दोलन-संख्या कम होती है; जैसे 'सा' की आन्दोलन-संख्या २४० है और 'प' की बढ़कर ३६० हो गई।

इस प्रकार ध्वनि (नाद) की दृष्टि से स्वर-स्थानों का स्पष्टीकरण करने के लिए दो साधन हुए :—

१. प्रत्येक ध्वनि के एक सैकिंड में होनेवाले तुलनात्मक आन्दोलन बताना।

२. वीणा के बजनेवाले तार की लम्बाई के भिन्न-भिन्न भागों से ध्वनि की उँचाई-निचाई बताना।

हमारे प्राचीन ग्रन्थकारों को इनमें से पहला साधन या तो मालूम नहीं था, या उन्होंने इसका उल्लेख करना आवश्यक नहीं समझा। उन्होंने अपने ग्रन्थों में दूसरे साधन की ही चर्चा विशेष रूप से की है। प्रथम साधन की चर्चा आधुनिक ग्रन्थकारों तथा पाश्चात्य विद्वानों द्वारा की गई है।

संगीत के इतिहास का मध्य-काल १४-वीं शताब्दी से १८-वीं शताब्दी तक माना जाता है। इसमें संगीत के विद्वानों ने संगीत पर कुछ महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ लिखे, जिनके नाम हैं:—

१. संगीत-पारिजात, २. हृदय-कौतुक, ३. हृदय-प्रकाश, ४. राग-तत्त्व-विबोध इत्यादि।

इनमें से मुख्य ग्रन्थ 'संगीत-पारिजात' है, जिसके लेखक हैं अहोबल पंडित। इन्होंने ही सर्वप्रथम वीणा के तार की लम्बाई के विभिन्न भागों से बारह स्वरों के ठीक-ठीक स्थान निश्चित किए। इसके पश्चात् श्रीनिवास पंडित ने भी अपने लिखे हुए ग्रन्थ 'राग-तत्त्व-विबोध' में बारह स्वरों के स्थान बताए हैं।

पं० श्रीनिवास ने वीणा के छत्तीस इंच लम्बे खुले तार पर षड्ज स्वर मानकर क्रमशः बारहों स्वरों के परदे बाँधने का ढंग बताया है।

पंडित श्रीनिवास के स्वरों की स्थापना का नियम समझने से पहले हमें यह ध्यान रखना आवश्यक है कि श्रीनिवास का शुद्ध ठाठ आधुनिक 'काफी ठाठ' था; अर्थात् इनके शुद्ध ठाठ में गान्धार और निषाद कोमल थे, जबकि हमारे संगीतज्ञ आजकल शुद्ध ठाठ बिलावल मानते हैं। इसी प्रकार अन्य मध्यकालीन ग्रन्थकारों के सात शुद्ध स्वरों में 'ग–नि' कोमल होते थे। उनके सात शुद्ध स्वर हमारी दृष्टि से इस प्रकार थे :—

सा (शुद्ध)	प (शुद्ध)
रे (तीव्र)	ध (तीव्र)
ग (कोमल)	नि (कोमल)
म (कोमल)	

वीणा के तार पर श्रीनिवास के स्वर

सबसे पहले श्रीनिवास पंडित, तार-षड्ज और मध्य-षड्ज का स्थान वीणा पर इस प्रकार बताते हैं :—

पूर्वान्त्ययोश्चमेर्वोश्च मध्ये तारकसः स्थितिः।
तदर्धे त्वतितारस्य सस्वरस्य स्थितिर्भवेत् ॥

तार-षड्ज

मेरु से घुड़च तक जो वीणा का तार खिंचा हुआ है, उसके ठीक बीचों-बीच तार-षडज स्थित है; अर्थात् छत्तीस इंच लम्बा तार मानकर उसके दो भाग करने पर ३६÷२=१८ इंच पर तार-षड्ज बोलेगा।
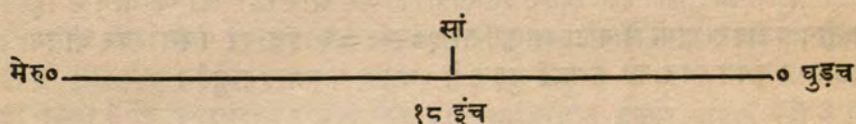
मध्य-षड्ज

पूरे छत्तीस इंच लम्बे खुले तार को बिना किसी जगह दबाए छेड़ा जाए, तो मध्य-सप्तक का षड्ज बोलेगा।

सा
मेरु० ———————————————————— ० घुड़च
३६ इंच
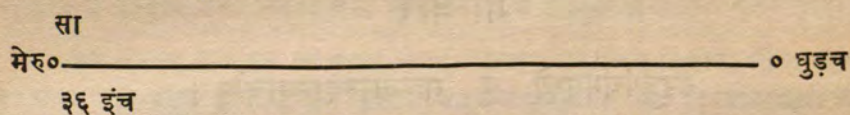
इसके बाद बताते हैं, अतितार-षड्ज और मध्य स्वरों के स्थान :—

मध्यस्थानादिमषड्जमारभ्यातारषड्जगम् ।
सूत्रं कुर्यात्तदर्धे तु स्वरम् मध्यममाचरेत् ॥

अतितार-षड्ज

घुड़च और तार-षड्ज (सां) के बीच में जो अठारह इंच स्थान है, उसके मध्य-स्थान में अतितार-षड्ज स्थापित है; अर्थात् 'सां' से नौ इंच आगे जाकर अतितार-षडज बोलेगा।
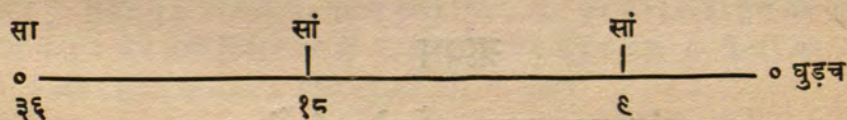
मध्यम

मेरु और तार-षड्ज के बीच में जो अठारह इंच का तार है, उसके दो भाग नौ-नौ इंच के हुए, अतः मध्यम स्वर १८+९=२७ इंच पर बोलेगा; अर्थात् 'सा' और 'सां' के बीच में मध्यम स्वर है।

सा म सां
० ———————————————————— ०
३६ इंच २७ इंच १८ इंच
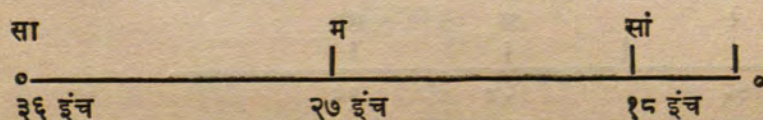
पंचम

भागत्रयसमायुक्तं तत्सूत्रं कारितम् भवेत् ।
पूर्वभागद्वयादग्रे स्थापनीयोऽथ पंचमः ॥

पंचम स्वर को इस प्रकार बताते हैं कि मेरु और तार 'सां' के बीच के हिस्से को तीन बराबर भागों में बाँटा जाए, तो १८÷३=६ इंच पर पंचम स्वर बोलेगा। इस प्रकार पंचम स्वर की लम्बाई घुड़च से १८+६=२४ इंच हुई।

गान्धार

षड्जपंचममध्ये तु गान्धारस्थानमाचरेत् ।
षड्जपंचमगं सूत्रमंशत्रयसमन्वितम् ॥

षड्ज और पंचम के बीच में गान्धार है; अर्थात् गान्धार स्वर पंचम से छह इंच बाईं ओर होगा और घुड़च से गान्धार की लम्बाई २४+६=३० इंच होगी।

सा	ग	प	सां
३६	३०	२४	१८

ध्यान रहे, श्रीनिवास का यह गान्धार वर्तमान प्रचलित कोमल गान्धार है, क्योंकि इन्होंने अपने शुद्ध ठाठ में 'ग-नि' कोमल लिए हैं।

ऋषभ

तत्रांशद्वयसन्त्यागात् पूर्वभागे तु रिर्भवेत् ।

ऋषभ स्वर को इस प्रकार बताते हैं कि षड्ज और पंचम के बीच के स्थान के तीन भाग करके मेरु के पूर्व-भाग में ऋषभ स्वर बोलेगा। मेरु और पंचम के बीच का स्थान बारह इंच है, तो १२÷३=४ अर्थात् मेरु से चार इंच पर ऋषभ हुआ। इस प्रकार घुड़च से ऋषभ की लम्बाई ३६−४=३२ इंच हो जाएगी।

सा	रे		प	सां
३६	३२		२४	१८

धैवत

पंचमोत्तरषड्जाख्यमध्ये धैवतमाचरेत् ॥

पंचम और तार-षड्ज के मध्य-स्थान में धैवत स्वर स्थित है, ऐसा श्रीनिवास पंडित का कहना है। किन्तु 'प-सां' के बीचों-बीच धैवत स्थापित करके जब हम बजाते हैं, तो कुछ ऊँचा अर्थात् चढ़ा हुआ बोलता है। इस थोड़े-से अन्तर के लिए श्रीनिवास का कहना है कि 'स्वरसंवादिताज्ञानं स्वरस्थापनकारणम्'। इसका भावार्थ यही है कि ऋषभ का स्थान निश्चित हो जाने पर धैवत का स्थान 'षड्ज-पंचम-भाव' से कायम कर लेना चाहिए। धैवत के उपर्युक्त श्लोक में 'मध्ये' का अर्थ बीच न मानकर क्षेत्र मान लेने से सब ठीक हो जाता है। षड्ज-पंचम-भाव का अर्थ यही है कि जिस प्रकार पंचम स्वर षड्ज स्वर से डेढ़गुना ऊँचा है, उसी प्रकार ऋषभ से डेढ़गुना ऊँचा धैवत, गान्धार से डेढ़गुना ऊँचा निषाद और मध्यम स्वर से डेढ़गुना ऊँचा तार-षड्ज होगा।

इस हिसाब से ऋषभ का पंचम धैवत, गान्धार का पंचम निषाद और मध्यम का पंचम तार-षड्ज होगा। इस प्रकार 'षड्ज-पंचम-भाव' की निम्नलिखित चार जोड़ियाँ बनीं :—

सपयो रिधयोश्चैव तथैव गनिषादयोः ।
संवादः सम्मतो लोके मसयोः स्वरयोर्मिथः ॥

अर्थात्—सा - प, रे - ध, ग - नि, म - सां, ये संवाद संगीतज्ञों में प्रसिद्ध हैं ही :—

षड्ज और पंचम स्वरों की उँचाई निचाई का सम्बन्ध ही षड्ज-पंचम-भाव कहलाता है, जिसका गुणान्तर १½ होता है। षड्ज की लम्बाई छत्तीस इंच है; इसमें डेढ़ का भाग दिया, तो ३६ ÷ १½ = २४ इंच पर पंचम हो गया। इसी प्रकार पंचम चौबीस इंच पर स्थित है। चौबीस का डेढ़ से गुणा किया, तो २४ × १½ = ३६ इंच पर षड्ज हो गया। अब इसी हिसाब को लेकर, अर्थात् षड्ज-पंचम-भाव से 'रे-ध' की दूरी निकाली गई, तो इस प्रकार निकली :—

चूँकि ऋषभ की लम्बाई बत्तीस इंच है, तो ३२ ÷ १½ = २१⅓; इसलिए २१⅓ इंच पर धैवत स्वर स्थित हुआ।

निषाद

पसयोर्मध्यभागे स्यात् भागत्रयसमन्विते ।
पूर्वभागद्वयं त्यक्त्वा निषादो राजते स्वरः ॥

पंचम और तार-षड्ज की लम्बाई के तीन भाग करके पहले दो भागों को छोड़ दिया जाए, तो तीसरे भाग पर निषाद स्वर होगा। पंचम और तार-षड्ज के बीच की लम्बाई छह इंच है। इसके तीन बराबर भाग किए गए तो ६÷३=२ इंच का प्रत्येक भाग हुआ; चूँकि षड्ज की लम्बाई अठारह इंच है, अतः १८+२=२० इंच पर निषाद स्वर स्थापित हुआ।

सा प नि सां

३६ २४ २० १८

ध्यान रहे, यह निषाद हमारा कोमल निषाद है। ऊपर हम बता चुके हैं कि श्रीनिवास ने अपने शुद्ध ठाठ में 'ग, नि' दोनों स्वर ले लिए हैं, जिन्हें हम आजकल कोमल 'ग, नि' कहते हैं।

उपर्युक्त वर्णन के अनुसार श्रीनिवास पंडित के शुद्ध स्वर-स्थानों की लम्बाई आन्दोलनों-सहित इस प्रकार हुई:—

श्रीनिवास के शुद्ध स्वर

स्वर	स्वर का पूरा नाम	तार की लम्बाई	अन्दोलन-संख्या
सा	षड्ज (मध्य-सप्तक)	३६ इंच	२४०
सां	षड्ज (तार-सप्तक)	१८ इंच	४८०
सां	षड्ज (अतितार-सप्तक)	९ इंच	९६०
म	मध्यम (मध्य-सप्तक)	२७ इंच	३२०
प	पंचम (मध्य-सप्तक)	२४ इंच	३६०
ग	गांधार (मध्य-सप्तक)	३० इंच	२८८
रे	ऋषभ (मध्य-सप्तक)	३२ इंच	२७०
ध	धैवत (मध्य-सप्तक)	२१$\frac{१}{३}$ इंच	४०५
नि	निषाद (मध्य सप्तक)	२० इंच	४३२

ये तो हुए श्रीनिवास के शुद्ध स्वर। अब रहे पाँच विकृत स्वर (कोमल ऋषभ, कोमल धैवत, तीव्रतर मध्यम, तीव्र गान्धार और तीव्र निषाद)। श्रीनिवास पंडित गान्धार और निषाद के विकृत होने पर उन्हें तीव्र गान्धार और तीव्र निषाद कहते हैं, जबकि हमारी पद्धति में 'ग, नि' विकृत होने पर कोमल 'ग, नि' कहलाते हैं।

श्रीनिवास के विकृत स्वर

कोमल रे

भागत्रयोदि्ते मध्ये मेरोर्क्टभसंज्ञितात् ।
भागद्वयोत्तरं मेरोः कुर्यात् कोमलरिस्वरम् ॥

मध्य 'सा' और शुद्ध 'रे' के बीच में तार की जितनी लम्बाई है, उसके तीन भाग किए, तो 'सा' से दूसरे भाग पर या मेरु से दूसरे भाग पर कोमल 'रे' स्वर बोलेगा।

'सा' और 'रे' का अन्तर चार इंच है। इसके तीन भाग किए, तो प्रत्येक भाग $\frac{४}{३}$ इंच का हुआ; क्योंकि 'रे' की लम्बाई घुड़च से बत्तीस इंच की दूरी पर है, अतः ३२ + $\frac{४}{३}$ = ३३ $\frac{१}{३}$ इंच पर कोमल 'रे' स्थापित हुआ। नीचे के चित्र में षड्ज और शुद्ध ऋषभ के तार की चार इंच लम्बाई दिखाकर, तीन भाग करके कोमल ऋषभ दिखाया जाता है :—
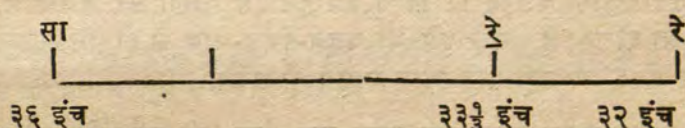
तीव्र ग

मेरुधैवतयोर्मध्ये तीव्रगान्धारमाचरेत् ।

मेरु (षड्ज) और धैवत के बीच में तीव्र गान्धार है। मेरु और 'ध' का अन्तर इस प्रकार है—सा ३६—ध २१$\frac{१}{३}$=१४$\frac{२}{३}$; इसका आधा हुआ ७$\frac{१}{३}$ इंच, अतः तीव्र गान्धार की लम्बाई धैवत से ७$\frac{१}{३}$ इंच हुई और घुड़च से हुई २१$\frac{१}{३}$+७$\frac{१}{३}$=२८$\frac{२}{३}$ इंच। नीचे के चित्र में 'सा' और 'ध' के बीच में तीव्र गान्धार दिखाया है :—

सा ग ध

३६ इंच २८$\frac{२}{३}$ इंच २१$\frac{१}{३}$ इंच
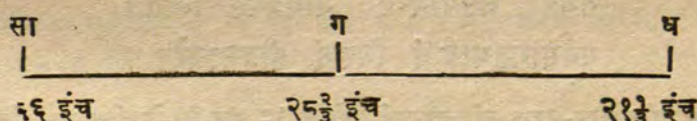
तीव्रतर मध्यम

भागत्रयविशिष्टेस्मिन् तीव्रगान्धारषड्जयोः ।
पूर्वभागोत्तरं मध्ये मं तीव्रतरमाचरेत् ॥

तीव्र गान्धार और तार-षड्ज के मध्यम के तीन भाग करके प्रथम भाग पर तीव्रतर मध्यम स्थापित होगा। तीव्र 'ग' और तार 'सां' का अन्तर=२८$\frac{२}{३}$—१८=१०$\frac{२}{३}$ अर्थात् $\frac{३२}{३}$ हुआ; इसके तीन भाग किए गए तो $\frac{३२}{३}\times\frac{१}{३}=\frac{३२}{९}$ इंच का प्रत्येक भाग होगा। अतः तीव्रतर मध्यम घुड़च से १८+$\frac{३२}{९}$+$\frac{३२}{९}$=२५$\frac{१}{९}$ इंच की दूरी पर होगा।

नीचे के चित्र में तार-षड्ज और तीव्र गान्धार के बीच में तीव्र मध्यम का स्थान देखिए :—
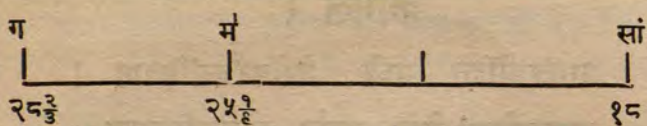
कोमल धैवत

भागत्रयान्विते मध्ये पंचमोत्तरषड्जयोः।
कोमलो धैवतः स्थाप्यः पूर्वभागे विवेकिभिः॥

पंचम और तार-षड्ज के बीच के तार की छह इंच लम्बाई के तीन भाग करें, तो कोमल धैवत पंचम से पहले भाग पर होगा; क्योंकि पंचम की लम्बाई घुड़च से चौबीस इंच है; इसमें से दो घटाए जाएँगे, तो बाईस इंच पर कोमल धैवत उपर्युक्त श्लोक के अनुसार होना चाहिए। किन्तु जब हम इसे वीणा पर बजाते हैं, तो यह कुछ चढ़ा हुआ बोलता है, अतः इसे भी षड्ज-पंचम-भाव से ही निकालना होगा; तभी कोमल धैवत का सही-सही स्थान मालूम हो सकेगा।

जिस प्रकार षड्ज-पंचम-भाव द्वारा शुद्ध धैवत की लम्बाई शुद्ध ऋषभ की सहायता से निकाली गई थी, उसी प्रकार कोमल ऋषभ की सहायता से कोमल धैवत की लम्बाई निकलेगी:—

रे॒ की लम्बाई ३३$\frac{१}{३}$ इंच है। इसमें डेढ़ का भाग दिया ३३$\frac{१}{३}$ ÷ १$\frac{१}{२}$ = $\frac{१००}{३}$ × $\frac{२}{३}$ = २२$\frac{२}{९}$ इंच। अर्थात् कोमल धैवत की लम्बाई घुड़च से २२$\frac{२}{९}$ इंच बिलकुल ठीक है।

तीव्र निषाद

तथैव धसयोर्मध्ये भागत्रयसमन्विते।
पूर्वभागद्वयादूर्ध्वं निषादं तीव्रमाचरेत्॥

धैवत और तार-षड्ज की लम्बाई (जोकि $\frac{१०}{३}$ इंच है) के तीन भाग किए जाएँ, तो धैवत से दूसरे भाग पर तीव्र निषाद स्थित होगा; अर्थात् :—

धैवत २१$\frac{१}{३}$—तार-षड्ज १८ = $\frac{१०}{३}$ ÷ ३ = $\frac{१०}{९}$ इंच का प्रत्येक भाग हुआ और घुड़च से तीव्र निषाद की लम्बाई १८ + $\frac{१०}{९}$ = १९$\frac{१}{९}$ इंच हुई। नीचे के चित्र में धैवत और तार-षड्ज के तीन भागों में तीव्र निषाद देखिए :—

ध नि सां

२१$\frac{१}{३}$ १९$\frac{१}{९}$ १८
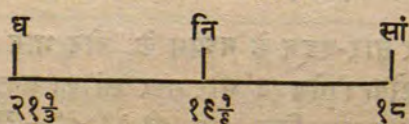
इस प्रकार श्रीनिवास के पाँचों विकृत स्वर निश्चित हुए, जिनकी लम्बाई आगे दिए हुए नक्शे में देखिए :—

श्री निवास के पाँच विकृत स्वर

स्वर	स्वर का पूरा नाम	तार की लम्बाई	आन्दोलन
रे॒	कोमल ऋषभ (मध्य-सप्तक)	३३ १/३ इंच	२५९ ४/५
ग	तीव्र गान्धार "	२८ २/३ इंच	३०१ १७/४३
मं	तीव्रतर मध्यम "	२५ १/९ इंच	३४४ ८/११३
ध॒	कोमल धैवत "	२२ २/९ इंच	३८८ ४/५
नि	तीव्र निषाद "	१९ १/९ इंच	४५२ ४/४३

श्रीनिवास के उपर्युक्त पाँच विकृत स्वरों में 'ग, नि' तीव्र हैं। इसका कारण यही है कि श्रीनिवास इन दोनों तीव्र स्वरों को विकृत मानते थे, जबकि हम आजकल इन्हें शुद्ध स्वर मानते हैं।

'अभिनव राग-मंजरी' के लेखक श्री भातखंडे ने आधुनिक संगीत-पद्धति के स्वरों की स्थापना दो प्रकार से बताई है—एक तो वीणा के तार की लम्बाई के विभिन्न नापों द्वारा और दूसरी स्वरों के आन्दोलन द्वारा। वीणा के तार की लम्बाई से उन्होंने जो स्वर-स्थान निश्चित किए हैं, उनमें श्रीनिवास की प्रणाली ही अपनाई गई है। शुद्ध स्वरों की लम्बाई तो श्रीनिवास की और भातखंडे (मंजरीकार) की एकसी ही है; केवल अन्तर इतना ही है कि मंजरीकार ने अपने शुद्ध 'ग, नि' की लम्बाइयाँ वे रखी हैं, जो श्रीनिवास ने तीव्र 'ग, नि' की रखी हैं। इसका कारण यही है कि मंजरीकार अपने शुद्ध ठाठ में 'ग, नि' तीव्र ही लेते हैं, जबकि श्रीनिवास अपने शुद्ध ठाठ में कोमल 'ग, नि' लेते हैं।

विकृत स्वरों में मंजरीकार ने कोमल 'ग-नि' की लम्बाइयाँ वही रखी हैं, जो श्रीनिवास ने शुद्ध 'ग, नि' की रखी थीं; केवल 'रे॒, ध॒, मं,' इन तीन स्वरों के स्थान मंजरीकार ने बदलकर बताए हैं। कोमल ऋषभ और कोमल धैवत के लिए उन्होंने लिखा है:—

मध्ये षड्जर्षभकयोः संस्थितः कोमलर्षभ।
षड्जपंचमभावेन तत्संवादी ध कोमलः॥

अर्थात्—मध्य-षड्ज और शुद्ध रे के बीचों-बीच कोमल ऋषभ स्थापित है और उसी के षडज-पंचम-भाव द्वारा कोमल धैवत का स्थान नियत किया है। मंजरीकार के कोमल ऋषभ तथा कोमल धैवत की लम्बाई इस प्रकार निकलती है:—

कोमल ऋषभ

मध्य 'सा' और शुद्ध 'रे' के तार की लम्बाई चार इंच के दो बराबर भाग करें, तो प्रत्येक भाग दो इंच का हुआ; क्योंकि मध्य-षड्ज छत्तीस इंच पर है और शुद्ध 'रे' बत्तीस इंच पर है, अतः कोमल 'रे' घुड़च से चौंतीस इंच पर होगा।

कोमल धैवत

इसे षड्ज-पंचम-भाव से निकाला गया, तो इस प्रकार निकलेगा :—

कोमल ऋषभ की लम्बाई चौतीस इंच है। इसमें डेढ़ का भाग दिया, तो ३४÷१ १/२=२२ २/३ इंच पर कोमल धैवत हुआ। अब रहा मंजरीकार का तीव्र मध्यम इसके लिए वह लिखते हैं:—

मध्यपंचमयोर्मध्ये तीव्रमध्यममाचरेत्।

अर्थात्—शुद्ध मध्यम और पंचम के ठीक बीचों-बीच तीव्र मध्यम है। शुद्ध मध्यम की लम्बाई सत्ताईस इंच और पंचम की चौबोस इंच है, तो २५ १/२ इंच पर तीव्र मध्यम स्थापित हुआ।

इसके अतिरिक्त मंजरीकार श्री भातखंडे ने स्वरों के आन्दोलन द्वारा स्वरों की उँचाई-निचाई नियत की है। मंजरीकार के स्वरों की आन्दोलन-संख्या समझने से पहले यह जान लेना आवश्यक है कि मंजरीकार का शुद्ध ठाठ बिलावल है, अर्थात् वह अपने ठाठ में सब शुद्ध स्वर मानते हैं। उनके बारह शुद्ध-विकृत स्वर, तार की लम्बाई तथा आन्दोलन-संख्या-सहित इस प्रकार हैं :—

मंजरीकार (भातखंडे) के बारह स्वर-स्थान

स्वर	शुद्ध या विकृत	तार की लम्बाई	आन्दोलन-संख्या
१ सा	शुद्ध	३६ इंच	२४०
२ <u>रे</u>	कोमल विकृत	३४ इंच	२५४ २/१७
३ रे	तीव्र (शुद्ध)	३२ इंच	२७०
४ <u>ग</u>	कोमल (विकृत)	३० इंच	२८८
५ ग	तीव्र (शुद्ध)	२८ २/३ इंच	३०१ १७/४३
६ म	कोमल (शुद्ध)	२७ इंच	३२०
७ मं	तीव्र (विकृत)	२५ १/२ इंच	३३८ १४/१७
८ प	शुद्ध	२४ इंच	३६०

९ ध॒	कोमल (विकृत)	२२ २/३ इंच	३८१ ३/१७
१० ध	तीव्र (शुद्ध)	२१ १/३ इंच	४०५
११ नि॒	कोमल (विकृत)	२० इंच	४३२
१२ नि	तीव्र (शुद्ध)	१९ १/९ इंच	४५२
सां	तार (शुद्ध)	१८ इंच	४८०

यहाँ पर यह बता देना आवश्यक है कि मंजरीकार के कोमल 'रे', कोमल 'ध' और तीव्र 'म', ये तीन स्वर-स्थान प्राचीन ग्रन्थों से अलग हैं।

वीणा के तार पर

श्रीनिवास और मंजरीकार के स्वर-स्थान तथा आन्दोलन-संख्याएँ

श्रीनिवास के स्वर-स्थान			मंजरीकार के स्वर-स्थान		
स्वर-नाम	लम्बाई	आन्दोलन-संख्या	स्वर-नाम	लम्बाई	आन्दोलन-संख्या
षड्ज शुद्ध	३६ इंच	२४०	षड्ज	३६ इंच	२४०
ऋषभ कोमल	३३ १/३ इंच	२५९ १/५	ऋषभ कोमल	३४ इंच	२५४ २/१७
ऋषभ शुद्ध	३२ इंच	२७०	ऋषभ तीव्र	३२ इंच	२७०
गान्धार शुद्ध	३० इंच	२८८	गान्धार कोमल	३० इंच	२८८
गान्धार तीव्र	२८ २/३ इंच	३०१ १७/४३	गान्धार तीव्र	२८ २/३ इंच	३०१ १७/४३
मध्यम शुद्ध	२७ इंच	३२०	मध्यम कोमल	२७ इंच	३२०
मध्यम तीव्रतर	२५ १/९ इंच	३४४ ५/११३	मध्यम तीव्र	२५ १/२ इंच	३३८ १४/१७
पंचम शुद्ध	२४ इंच	३६०	पंचम	२४ इंच	३६०
धैवत कोमल	२२ २/९ इंच	३८८ ४/५	धैवत कोमल	२२ २/३ इंच	३८१ ३/१७
धैवत शुद्ध	२१ १/३ इंच	४०५	धैवत तीव्र	२१ १/३ इंच	४०५
निषाद शुद्ध	२० इंच	४३२	निषाद कोमल	२० इंच	४३२
निषाद तीव्र	१९ १/९ इंच	४५२ ४/४३	निषाद तीव्र	१९ १/९ इंच	४५२ ४/४३
षड्ज शुद्ध (तार)	१८ इंच	४८०	तार-षड्ज	१८ इंच	४८०

उपर्युक्त तालिका से यह स्पष्ट है कि श्रीनिवास के सभी शुद्ध स्वर-स्थान मंजरीकार ने मान लिए हैं; केवल कुछ विकृत स्वर-स्थानों के बारे में इन दोनों विद्वानों के

मत नहीं मिलते। अतः अब हम बताएँगे कि इनका मतैक्य तथा मतभेद कौन-कौनसी बातों पर है।

मतैक्य (समानता)

१. दोनों ही विद्वान् कोमल धैवत तथा शुद्ध धैवत को षड्ज-पंचम से निकालकर वीणा के तार पर स्थापित करते हैं।

२. दोनों ही विद्वानों ने तीव्र निषाद को भिन्न रीति से वीणा के तार-पर स्थापित करके एकमत से उसकी लम्बाई १९ १/९ इंच स्वीकार की है।

३. दोनों ही विद्वानों ने कोमल ऋषभ, तीव्र मध्यम और कोमल धैवत, ये तीन स्वर वीणा के तार पर भिन्न-भिन्न रीति से स्थापित किए हैं।

४. कोमल 'रे', कोमल 'ध' और तीव्र 'म' को छोड़कर शेष स्वर-स्थान दोनों ही विद्वानों के एकसे हैं।

५. दोनों ही विद्वानों के शुद्ध स्वरों तथा कोमल गान्धार और कोमल निषाद के स्थानों को वर्तमान संगीतज्ञ मानते हैं और वे हिन्दुस्तानी संगीत-पद्धति में प्रचलित हैं।

मतभेद (असमानता)

श्रीनिवास

१. शुद्ध ठाठ में गान्धार-निषाद कोमल रखते हैं।
२. हमारे काफी ठाठ को शुद्ध ठाठ मानते हैं।
३. 'सा' और 'रे' के तार की लम्बाई के तीन भाग करके 'सा' से दूसरे भाग पर कोमल 'रे' स्थापित करते हैं, जिसकी लम्बाई घुड़च से तेंतीस इंच होती है।
४. कोमल धैवत २२ २/९ इंच पर स्थापित करते हैं।
५. तीव्र निषाद १९ १/९ इंच पर स्थापित करते हैं।
६. तीव्र निषाद का स्थान निकालने के लिए तीव्र 'ध' और तार-षड्ज के तार की लम्बाई के तीन भाग करके तीव्र 'ध' से दूसरे भाग पर तीव्र 'नि' वीणा पर स्थापित करते हैं।
७. तीव्रतर मध्यम २५ १/३ इंच पर स्थापित करते हैं।

मंजरीकार (भातखंडे)

१. शुद्ध ठाठ में गान्धार-निषाद तीव्र (शुद्ध) रखते हैं।
२. बिलावल ठाठ को शुद्ध ठाठ मानते हैं।
३. 'सा' और 'रे' के तार की लम्बाई के दो भाग करके इन दोनों स्वरों के ठीक मध्य में कोमल 'रे' की स्थापना करते हैं, जिसकी लम्बाई घुड़च से चौंतीस इंच होती है।
४. कोमल धैवत बाईस इंच पर स्थापित करते हैं।
५. तीव्र निषाद उन्नीस इंच पर स्थापित करते हैं।
६. षड्ज-पंचम-भाव से तीव्र निषाद की लम्बाई निकालकर वीणा पर इसका स्थान निश्चित करते हैं।
७. तीव्र मध्यम २५ १/३ इंच पर स्थापित करते हैं।

८. कोमल ऋषभ ३३⅓ इंच पर स्थापित करते हैं; क्योंकि इन्होंने 'सा' और 'रे' की लम्बाई के तीन भाग करके कोमल 'रे' को 'सा' से दूसरे भाग पर रखा है।
९. कोमल 'रे', कोमल 'ध' और तीव्रतर 'म' को छोड़कर बाकी सब शुद्ध और विकृत स्वर वर्तमान हिन्दुस्तानी संगीत-पद्धति में प्रचलित हैं।
१०. कोमल 'रे', तीव्रतर 'म' और कोमल 'ध', ये तीन स्वर 'संगीत-पारिजात' तथा अन्य मध्यकालीन ग्रन्थकारों के आधार पर हैं।

८. कोमल ऋषभ चौंतीस इंच पर स्थापित करते हैं; क्योंकि इन्होंने 'सा' और 'रे' की लम्बाई के दो भाग करके उनके मध्य में कोमल ऋषभ माना है।
९. इनके कोमल, तीव्र या शुद्ध और विकृत सभी स्वर एकमत से वर्तमान हिन्दुस्तानी संगीत-पद्धति में प्रचलित हैं।
१०. कोमल 'रे', तीव्र 'म' और कोमल 'ध', इनके ये तीनों स्वर-स्थान मध्यकालीन ग्रन्थकारों से मेल नहीं खाते। यह इनके स्वयं आविष्कारक हैं।

योरोपीय स्वर-संवाद

कौन्सोनेन्स (Consonance)

जब दो या दो से अधिक स्वरों को एकसाथ बजाया जाता है, तो इन स्वरों की जो सम्मिलित ध्वनि उत्पन्न होती है, उसे 'कार्ड' (Chord) कहते हैं। अब यदि यह मिश्रण सुनने पर कानों को प्रिय लगता है तो इसे 'कान्कार्ड' (Concord) का 'कौन्सोनेन्स' (Consonance) कहते हैं।

डिस्सोनेन्स (Dissonance)

परन्तु यदि यह मिश्रित ध्वनि सुनने में बुरी लगती है तो इसे 'डिस्सोनेन्स' (Dissonance) कहते हैं। हेल्महोज विद्वान् कहते हैं कि इस अप्रियता (Dissonance) का कारण या तो उन दोनों मूल स्वरों में अथवा उनसे उत्पन्न होनेवाले स्वयंभू नादों के मध्य में डोल (Beats) का उपस्थित होना है। मध्य-षड्ज तथा तार-षड्ज का मेल अत्यन्त मधुर होता है; क्योंकि तार 'सां' के आन्दोलन मध्य 'सा' से ठीक दुगुने होते हैं और इनमें डोल (Beats) उत्पन्न नहीं होती। अब यदि दो स्वरों के मध्य में चार डोल तक भी उत्पन्न होती हैं, तब भी वह अप्रिय प्रतीत नहीं होंगे। परन्तु यदि इन डोलों की संख्या चार डोल प्रति सैकिंड से अधिक होती जाए, तो ध्वनि में अप्रियता बढ़ती जाएगी। यह अप्रियता बढ़ते-बढ़ते किसी एक स्थान पर सबसे अधिक होगी, जोकि आन्दोलन-संख्या के बढ़ाते रहने पर स्वतः कम होती चली जाएगी और फिर ऐसे स्थान पर पहुँच जाएगी, जहाँ उन स्वरों की सम्मिलित ध्वनियों में कटुता प्रतीत ही नहीं होगी।

मेयर (Mayer) नामक वैज्ञानिक ने संगीतज्ञों के कानों को आधार मानकर यह निश्चय कर दिया है कि किस आन्दोलन-संख्यावाले स्वर पर किस आन्दोलन-संख्या का स्वर सबसे अधिक कर्णकटुता उत्पन्न करेगा और किस आन्दोलन-संख्या पर

पहुँचकर यह अप्रियता समाप्त हो जाएगी। हम मेयर द्वारा बनाई गई तालिका को नीचे दे रहे हैं:—

नीचे के स्वरों की आन्दोलन-संख्या	प्रति सैकिंड डोल की संख्या	
	जब अप्रियता सबसे अधिक होगी	जब अप्रियता समाप्त हो जाएगी
६४	६·४	१६
१२८	१०·४	२६
२५६	१८·८	४७
३८४	२४·०	६०

इसका अर्थ यह समझना चाहिए कि यदि हम चौंसठ कम्पन-संख्यावाले स्वर को और उनहत्तर कम्पन-संख्यावाले स्वर को एकसाथ बजादें तो अप्रियता प्रारम्भ हो जाएगी। यदि इसे ७०·४ कम्पन प्रति सैकिंडवाले स्वर के साथ बजाएँ तो अप्रियता सबसे अधिक होगी (क्योंकि ६४+६·४=७०·४) और यदि ८० (=६४+१६) कम्पन-संख्या प्रति सैकिंड के स्वर के साथ बजाएँ तो यह अप्रियता बिलकुल नहीं रहेगी। इसका अर्थ यह हुआ कि यदि हमें चौंसठ कम्पन प्रति सैकिंडवाले स्वर के साथ किसी अन्य ऐसे स्वर को बजाना है कि सुनने में अप्रिय प्रतीत न हो तो दूसरे स्वर की कम्पन-संख्या या तो चौंसठ और अड़सठ के बीच में होनी चाहिए अथवा अस्सी कम्पन प्रति सैकिंड से अधिक।

भारतीय तथा योरोपीय स्वर-संवाद

हिन्दुस्तानी संगीत-पद्धति में जिन स्वरों को 'सा, रे, ग, म, प, ध, नि' कहा जाता है, पश्चिमी (अँग्रेजी) संगीत-पद्धति में उन्हें 'Do. Re. Mi. Fa. Sol. La. Se.' कहते हैं। उन्होंने अपने निर्धारित स्वर-स्टैंडर्ड के लिए सात स्वरों के संक्षिप्त नाम या इशारे इस प्रकार कायम किए हैं।

'C. D. E. F. G. A. B.' इन स्वर-संकेतों के आधार पर ही पश्चिम तथा अन्य देशों के संगीत-कलाकार अपने-अपने वाद्य तैयार करते हैं।

उपर्युक्त अँग्रेजी स्वरों की तुलना यदि हिन्दुस्तानी संगीत-पद्धति के स्वरों से की जाए, तो दोनों में काफी अन्तर दिखाई देता है। यद्यपि पश्चिमी संगीतज्ञ अपने सात स्वरों को हमारी संगीत-पद्धति के लगभग बिलावल ठाठ अर्थात् शुद्ध स्वर-सप्तक के समान मानते हैं, फिर भी हमारे और उनके स्वरों की आन्दोलन-संख्या में कुछ अन्तर दिखाई पड़ता है। इसका कारण यह है कि हमारे और उनके स्वरान्तर अलग-अलग हैं।

वे अपने सात स्वरों को तीन भागों में विभाजित करते हैं—१. मेजरटोन (Major Tone), २. माइनरटोन (MinorTone), ३. सेमीटोन (Semi Tone)। पश्चिमी विद्वानों ने अपने सात स्वरों का परस्पर अन्तर अर्थात् स्वरान्तर निकालकर उनकी आन्दोलन-संख्या निश्चित की है। उनके स्वरान्तर (फ़ासले) इस प्रकार हैं:—

C–D	D–E	E–F	F–G	G–A	A–B	B–C
९/८	१०/९	१६/१५	९/८	१०/९	९/८	१६/१५

इन स्वरान्तरों में पहला, चौथा और छठा स्वरान्तर 'मेजर टोन,' दूसरा और पाँचवाँ स्वरान्तर 'माइनर टोन' तथा तीसरा और सातवाँ स्वरान्तर 'सेमी-टोन' कहलाता है।

उपर्युक्त स्वरान्तरों के द्वारा ही पश्चिमी संगीत-पंडितों ने स्वरों की आन्दोलन-संख्या इस प्रकार निश्चित की है :—

पश्चिमी स्वर	हिन्दुस्तानी में उनके स्वर-नाम	पश्चिमी आन्दोलन-संख्या	हिन्दुस्तानी आन्दोलन-संख्या (मंजरीकार)
C	सा (अचल)	२४०	२४०
	रे कोमल	२५६	२५४ ३/१७
D	रे तीव्र	२७०	२७०
	ग कोमल	२८८	२८८
E	ग तीव्र	३००	३०१ १९/४३
F	म कोमल	३२०	३२०
	म तीव्र	३३७ १/२	३३८ १४/१७
G	प (अचल)	३६०	३६०
	ध कोमल	३८४	३८१ ३/१७
A	ध तीव्र	४००	४०५
	नि कोमल	४३२	४३२
B	नि तीव्र	४५०	४५२ ८/४३
C	सा (तार)	४८०	४८०

उपर्युक्त नक्शे से यह स्पष्ट है कि पश्चिमी विद्वानों द्वारा निर्धारित किए हुए 'रे' कोमल, 'ग' तीव्र, 'म' तीव्र, 'ध' कोमल, 'ध' तीव्र तथा 'नि' तीव्र, इन छह स्वरों के आन्दोलन मंजरीकार अथवा हिन्दुस्तानी संगीत-पद्धति के आन्दोलनों से मेल

नहीं खाते। केवल 'सा' (अचल), 'रे' तीव्र, 'ग' कोमल, 'म' कोमल, 'प' अचल और 'नि' कोमल के स्वरान्दोलन ही हमारी पद्धति से ठीक-ठीक मिलते हैं।

ज्ञातव्य : कुछ संगीत-विद्वानों का मत है कि अँग्रेजी-स्वरों में से 'ई' (E) को 'सा' मानकर ही सप्तक कायम करना चाहिए।

स्वरान्तर

इस अध्याय को समाप्त करने से पूर्व आपको यह बता देना उचित समझते हैं कि स्वरान्तर दो प्रकार के होते हैं। एक तो षड्ज से प्रत्येक स्वर का अन्तराल और दूसरा स्वरों का आपसी अन्तराल। उदाहरण के लिए, भरत मुनि के षड्ज-ग्राम के अन्तराल इस प्रकार हैं:—

मध्य-षड्ज से—	१		१०/९		३२/२७		४/३		३/२		५/३		१६/९		२
	सा		रे		ग		म		प		ध		नि		सां
स्वरों का परस्पर अन्तराल		१०/९		१६/१५		९/८		९/८		१०/९		१६/१५		९/८	

ऊपर आए हुए अन्तरालों में ९/८, १०/९ और १६/१५ को क्रम से चार श्रुति, तीन श्रुति और दो श्रुति का अन्तराल भी कहते हैं। इन अन्तरालों के अतिरिक्त तीन अन्तराल एक-एक श्रुति के और होते हैं, जिन्हें हमने पीछे 'क', 'ख' और 'ग' अन्तराल कहा है। इन्हें गणित में क्रम से २५६/२४३, २५/२४ और ८१/८० भी कहते हैं।

इन अन्तरालों पर जब साधारण दृष्टि पड़ती है, तो यह पहचानना तनिक कठिन हो जाता है कि कौन अन्तराल बड़ा है और कौन छोटा। इसलिए एक फ्रांस के विद्वान् ने इन अन्तरालों को स्पष्ट करने के लिए एक माप निकाला और उसे अपने नाम पर ही 'सेवर्ट' कहा। इस आधार पर इन अन्तरालों का मूल्य सेवर्ट में इस प्रकार आता है:—

पूरे सप्तक का अन्तराल=३०१ सेवर्ट
गुरु स्वर (९/८) का अन्तराल=५१.१ सेवर्ट
लघु स्वर (१०/९) का अन्तराल=४५.८ सेवर्ट
अर्ध स्वर (१६/१५) का अन्तराल=२८.० सेवर्ट
लीमा (२५६/२४३) का अन्तराल=२३.० सेवर्ट
लघु अर्ध स्वर(२५/२४) का अन्तराल=लगभग १८० सेवर्ट
कॉमा (८१/८०) का अन्तराल=लगभग ५.० सेवर्ट

इसी प्रकार एलिस नामक एक अन्य विद्वान् ने सप्तक को १२०० सेंट में विभाजित कर दिया। उसके अनुसार ऊपर के स्वरों का मान सेंट में इस प्रकार हुआ:—

पूरे सप्तक का अन्तराल=१२०० सेंट
गुरु स्वर (९/८) का अन्तराल=२०३.७ सेंट
लघु स्वर (१०/९) का अन्तराल=१८२.६ सेंट
अर्ध स्वर (१६/१५) का अन्तराल=१११.६ सेंट

संगीत के सप्तक का विकास

पायथागोरस का स्वर-सप्तक

मानव को सबसे पहले षड्ज-पंचम के कर्णप्रिय भाव का अनुभव हुआ। साथ-ही-साथ उसे यह भी विदित हुआ कि पंचम स्वर षड्ज स्वर का ड्योढ़ा है। तब यह विचार किया गया कि तार षड्ज जिस स्वर का ड्योढ़ा है, वह स्वर कौनसा है (कारण कि मध्य-षड्ज और तार-षड्ज के मेल भी अत्यन्त कर्णप्रिय लगते हैं)। खोजने पर मालूम हुआ कि वह स्वर मध्यम है। ऐसा होने पर मध्यम और पंचम स्वरों के बीच का एक नया अन्तराल और मालूम हो गया, जो $\frac{9}{8}$ है। अब मध्य-षड्ज से इसी अन्तराल पर एक स्वर स्थापित किया, जिसे 'ऋषभ' कहा गया। ऐसा करने पर ज्ञात हुआ कि अभी ऋषभ और मध्यम के बीच में इतना अन्तराल और शेष है, जितना षड्ज-ऋषभ या मध्यम-पंचम के बीच में है; और उस अन्तराल पर एक स्वर भी स्थापित किया जा सकता है। अतः उस अन्तराल पर 'रे' से आगे एक स्वर और स्थापित कर दिया गया, जिसे 'गान्धार' कहा गया। अब गान्धार और मध्यम के बीच में इतना अन्तराल न बचा कि उसपर और कोई स्वर स्थापित किया जा सके।

जो भी स्थिति मध्य-षड्ज से आगे हुई, वही पंचम से आगे भी हुई; अर्थात् पंचम स्वर से आगे तार-षड्ज तक के बीच में, मध्यम और पंचम स्वरों के अन्तराल की दूरी पर क्रम से धैवत, और इसी अन्तराल पर धैवत से आगे निषाद स्वर स्थापित किए गए। अब पुनः निषाद और तार-षड्ज के मध्य में बहुत थोड़ा अन्तराल बचा, अतः इसे भी ज्यों-का-त्यों छोड़ दिया गया। इस प्रकार जो सप्तक बना, उसमें षड्ज से ऋषभ, ऋषभ से गान्धार, मध्यम से पंचम, पंचम से धैवत और धैवत से निषाद के बीच में अन्तराल एक-समान थे। गान्धार और मध्यम तथा निषाद और तार-षड्ज के बीच में जो अन्तराल आया, वह था तो बराबर, परन्तु पहले अन्तराल से छोटा था। इस प्रकार इस सप्तक में दो अन्तराल थे, एक बड़ा और दूसरा छोटा। चूँकि इस सप्तक को बनाने का प्रयास यूनान के प्रसिद्ध विद्वान् पायथागोरस ने किया था, अतः इसे 'पायथागोरियन स्केल' कहते हैं।

षड्ज-पंचम-भाव से सप्तक का निर्माण

उपर्युक्त आधार पर जो सप्तक बना, उसके निषाद तथा गान्धार स्वर 'हारमनी' की रचना करने में कुछ अधिक कर्णप्रिय न लगे। अतः सप्तक को किसी अन्य प्रकार से बनाने का प्रयत्न किया गया। इन परिस्थितियों में षड्ज-पंचम-भाव से सप्तक बनाने का प्रयास किया गया। इस आधार पर षड्ज का ड्योढ़ा पंचम निकाला। इसी पंचम को षड्ज माना और इसका ड्योढ़ा स्वर पंचम खोजा, जो ऋषभ आया। पुनः इस नवीन पंचम (अर्थात् ऋषभ) का ड्योढ़ा स्वर खोजा, जो धैवत आया। इसी प्रकार जो पंचम आता रहा, उसे षड्ज मानकर उसका पंचम खोजते चले गए। अतः जो सप्तक बना, उसमें अन्तिम षड्ज के आन्दोलन प्रारम्भिक षड्ज के ही आन्दोलन के

गुणान्तर नहीं थे, वरन् कुछ अधिक थे। इस प्रकार यह सप्तक भी सन्तोषजनक न बना।

षड्ज-मध्यम-भाव के आधार पर सप्तक की रचना

जब षड्ज-पंचम-भाव से उत्तम सप्तक न बन पाया तो तार-षड्ज से पीछे की ओर पाँचवें स्वर अर्थात् मध्यम स्वर की सहायता से सप्तक बनाने का प्रयास किया गया। मध्यम को षड्ज मानकर पीछे की ओर इसका मध्यम खोजा तो निषाद प्राप्त हुआ। इसी प्रकार इस क्रिया को तबतक करते रहे, जबतक कि जिस आन्दोलन-संख्या से चले थे, उसी के गुणान्तर का कोई आन्दोलन प्राप्त न हुआ। इस आधार पर जो सप्तक बना, उसमें अन्तिम षड्ज उस षड्ज से कुछ नीचा आया, जो आना चाहिए था। फलस्वरूप यह सप्तक भी सन्तोषजनक न बना। हाँ, ऐसा करने पर एक बात अवश्य विदित हो गई कि जितना अन्तराल षड्ज-पंचम-भाव के समय अन्तिम षड्ज के समय बढ़ा था, ठीक उतना ही अन्तराल अब षड्ज-मध्यम-भाव से सप्तक बनाते समय कम हो गया।

डायाटानिक स्केल की रचना

क्योंकि अभी तक कोई सन्तोषजनक स्केल नहीं बन पाया था। अतः विद्वान् उत्तम स्वर-सप्तक बनाने का प्रयत्न बराबर करते रहे। विचार करने पर यह अनुभव किया गया कि षड्ज, मध्यम और पंचम के अतिरिक्त यदि स्वरों को ४–५–६ के अनुपात में बजाएँ तो वे भी बड़े कर्णप्रिय लगते हैं। ऐसा करने पर जब षड्ज से इस अनुपात पर स्वर खोजे गए तो 'सा', 'ग' और 'प' प्राप्त हुए। पुनः मध्यम से ४–५–६ के अनुपात पर 'म', 'ध' और 'सां' प्राप्त हुए। इसी प्रकार पंचम से ४–५–६ के अनुपात पर 'प', 'नि' और 'रें' प्राप्त हुए। जब इस ऋषभ को एक सप्तक नीचा कर लिया तो पूरा एक सप्तक बन गया। इस सप्तक के स्वर बड़े मधुर थे। इसका नाम 'सच्चा स्वर-सप्तक' या 'नेचुरल स्केल' रखा गया। इस सप्तक में तीन अन्तराल प्राप्त हुए, जो क्रम से $\frac{९}{८}$, $\frac{१०}{९}$ और $\frac{१६}{१५}$ थे। इनमें से $\frac{९}{८}$ और $\frac{१०}{९}$ अन्तरालों में बहुत न्यून अन्तर था, अतः इन्हें 'टोन' कहा गया, और $\frac{१६}{१५}$ को 'सेमीटोन'। इस सप्तक में केवल स्थूल रूप से 'टोन' और 'सेमीटोन', ये दो ही अन्तराल होने के कारण इसे 'डाया (अर्थात् दो का) टानिक (स्वरवाला) स्केल' कहा गया।

इस सप्तक की बड़ी अड़चन

वैसे तो 'डायाटानिक स्केल' बड़ा उत्तम बन गया, किन्तु इस सप्तक में एक बड़ी अड़चन उत्पन्न हो गई कि जबतक हम षड्ज को ही अपना षड्ज मानकर गान-वादन करते हैं, तबतक तो हमें उस स्केल के सच्चे स्वर प्राप्त होते रहते हैं; परन्तु यदि कोई गायक या वादक षड्ज के अतिरिक्त किसी अन्य स्वर को अपना षड्ज मान लेता है, तो उसे 'डायाटानिक स्केल' के सच्चे स्वर प्राप्त नहीं होते। यह सम्भव नहीं कि प्रत्येक व्यक्ति, वह चाहे मोटी आवाजवाला, हो या पतली आवाजवाला, एक ही स्वर को षड्ज मानकर गान करे। अतः इसमें भी कमी दिखाई देने लगी।

औसत-स्वरान्तर-सप्तक

उपर्युक्त कठिनाई को दूर करने के लिए यह सोचा गया कि यदि ९/८ और १०/९ अन्तरालों का, जोकि बड़े-बड़े हैं और जिनमें बहुत थोड़ा अन्तर है, औसत निकाल लिया जाए और इसी औसत स्वरान्तर को ९/८ और १०/९ स्वरान्तरों के स्थान पर रख दिया जाए तो समस्या हल हो जाएगी। ऐसा ही किया गया और इस प्रकार जो सप्तक बना, उसे 'औसत-स्वरान्तर-सप्तक' (Mean Tone Temperament Scale) कहा गया।

समानान्तरालीय स्वर-सप्तक

ऊपर बताए स्वर-सप्तकों के अतिरिक्त विद्वानों ने विचार किया कि षड्ज-पंचम-भाव और षड्ज-मध्यम-भाव के आधार से स्वर-सप्तक बनाते समय जो अन्तराल बढ़ा या घटा था, यदि उसे बारह स्वरों में बराबर बाँट दिया जाए तो इस सप्तक में जितना 'सा' से 'प' बेसुरा होगा, ठीक उतना ही 'रे' से 'ध' बेसुरा होगा। दूसरे शब्दों में, 'सा' से 'रे॒' के बीच में जितना अन्तराल होगा, ठीक वही अन्तराल 'रे॒' और 'रे' के बीच में कर दिया। तात्पर्य यह कि किसी भी एक स्वर से, उससे अगले या पिछले स्वर के अन्तराल को समान कर दिया; अर्थात् पूरे सप्तक को बराबर बारह भागों में विभाजित कर दिया और इस सप्तक को 'समानान्तरालीय स्वर-सप्तक' (Equally Tempered Scale) कहा गया।

अबतक हम अनेक स्वर-सप्तक बना आए हैं, परन्तु अभी तक यह निश्चय नहीं कर सके कि किस स्वर-सप्तक को अपनाया जाए। इसका निश्चय करने से पूर्व हमें यह ध्यान रखना होगा कि हम उसी स्वर-सप्तक को अपना सकते हैं, जोकि 'डायाटानिक स्केल' या 'नेचुरल स्केल' के अधिक समीप हो। खोज करने पर ज्ञात हुआ कि 'समानान्तरालीय स्वर-सप्तक' (Equally Tempered Scale) 'डायाटानिक स्केल' के स्वरों के अधिक समीप है। अतः हमने इसे ही अपना स्वर-सप्तक मान लिया। इसी स्वर-सप्तक के आधार पर समस्त पाश्चात्य वाद्य (प्यानो, गिटार, मेंडोलिन इत्यादि) बनाए गए हैं। वही स्वर हमें हारमोनियम में मिलते हैं। इस आधार पर हम निस्संकोच कह सकते हैं कि यदि हम हारमोनियम के साथ गान-वादन करते हैं तो वे समानान्तरालीय स्वर-सप्तक के ही स्वर हैं, न कि 'प्राकृतिक या नेचुरल स्केल' के।

पाश्चात्य संगीत के 'स्केल'

अब पाश्चात्य संगीत के उन स्केलों के विषय में बताते हैं, जिनके आधार पर पाश्चात्य संगीतज्ञ अपनी रचनाएँ करते हैं। विद्यार्थी अपने समझने के लिए इन्हें 'ठाठ' जैसी संज्ञा दे सकते हैं, परन्तु यह ध्यान रखना है कि ये ठाठ नहीं कहलाते।

पाश्चात्य संगीत में प्रमुख रूप से दो स्केल प्रचलित हैं। इन्हें क्रम से 'मेजर स्केल' और 'माइनर स्केल' कहते हैं। इन स्केलों को समझने से पूर्व दो बातें ध्यान में रखनी चाहिए—१. सप्तक में प्रत्येक स्वर की दूरी समान है, अर्थात् समानान्तरालीय स्वर-सप्तक (कुछ विद्वान् इसे 'समसाधृत ग्राम' भी कहते हैं। पाश्चात्य विद्वान् इसे 'ईक्वली टेम्पर्ड स्केल' नाम से सम्बोधित करते हैं) के स्वरों को अपने प्रयोग में लाते हैं।

२. प्रत्येक स्वर की परस्पर दूरी को 'सेमीटोन' कहते हैं; जैसे 'सा' से 'रे॒' एक सेमीटोन की दूरी पर है, 'रे॒' से 'रे' भी एक सेमीटोन की दूरी पर है।

अर्थात् एक पूरे सप्तक में बारह स्वरों के बीच में बारह सेमीटोन की दूरी है। हम सेमीटोन को 'आधा टोन' भी कह सकते हैं। इसका अर्थ यह हुआ कि जब हम 'सा' से शुद्ध 'रे' पर जाएँगे, तो बीच में जो दूरी पड़ेगी, वह एक टोन की दूरी कहलाएगी (क्योंकि 'सा' से 'रे॒' तक आधा टोन और 'रे॒' से 'रे' तक आधा टोन मिलकर पूरा एक टोन बन गया)।

यदि बिलावल ठाठ के स्वरों को 'टोन' और 'सेमीटोन' के आधार से देखें, तो नक्शा इस प्रकार होगा :—

सा ग म प ध नि सां

टोन टोन से० टोन टोन टोन टोन से० टोन
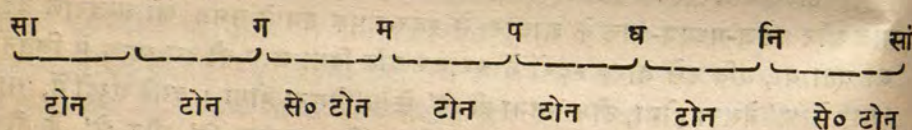
अब यदि इस सप्तक के दो भाग कर दें, अर्थात् 'सा' से 'म' तक एक भाग और 'प' से 'सां' तक दूसरा, तो नक्शा इस प्रकार होगा :—
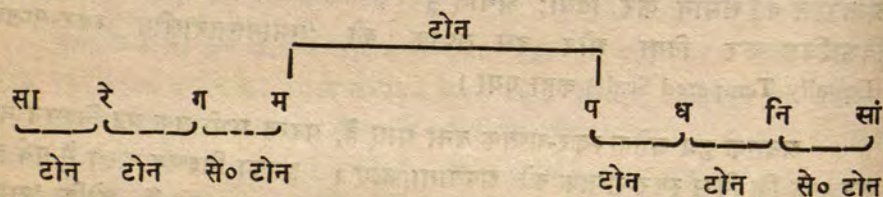
यहाँ देखने पर विदित होगा कि 'सा रे ग म' और 'प ध नि सां' की रचना एक-समान टोन, टोन, सेमीटोन है और इसे टोन द्वारा ('म' से 'प' तक) जोड़कर पूरा सप्तक बनाया गया है।

मेजर स्केल

पाश्चात्य संगीत में मेजर स्केल की परिभाषा यह दी गई है कि जब किसी सप्तक के पूर्वांग और उत्तरांग की रचना टोन, टोन, सेमीटोन हो और उन्हें टोन द्वारा जोड़ दिया जाए, तो वह सप्तक-रचना 'मेजर स्केल' कहलाती है।

इसे और अधिक समझने के लिए हम अब पंचम स्वर का मेजर स्केल बनाते हैं :—
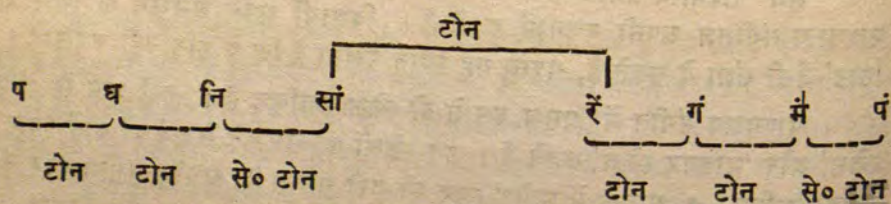
इस सप्तक के पूर्वांग में अर्थात् 'प ध नि सां' में तो टोन, टोन, सेमीटोन का क्रम है ही, 'सां' व 'रें' के बीच भी टोन का ही अन्तराल है। किन्तु जबतक हम अपने

शुद्ध मध्यम को तीव्र नहीं करेंगे, तबतक न तो 'गं, मं' के बीच में टोन होगा और न 'मं, पं' के बीच में सेमीटोन (क्योंकि शुद्ध गान्धार से शुद्ध मध्यम का अन्तराल एक सेमीटोन होता है और शुद्ध मध्यम से पंचम का अन्तराल एक टोन होता है)।

पाश्चात्य संगीतज्ञ 'सा, रे, ग, म, प, ध, नि, सां' को क्रम से पहली, दूसरी, तीसरी, चौथी, पाँचवीं, छठी, सातवीं और आठवीं डिग्री के स्वर मानते हैं। जब किसी शुद्ध स्वर को एक सेमीटोन से चढ़ाना होता है, तो उसे 'शार्प (Sharp) करना' और यदि शुद्ध स्वर से नीचे करना होता है तो एक सेमीटोन से 'फ्लैट (Flat) करना' कहते हैं। अत: पाश्चात्य संगीतज्ञों के अनुसार हम यह कह सकते हैं कि 'प' या 'जी' (G) (पाश्चात्य संगीतज्ञ 'प' को 'जी' स्वर की संज्ञा देते हैं) के मेजर स्केल में सातवीं डिग्री का स्वर शार्प होता है। संक्षेप में इसे यों भी कहा जा सकता है कि 'जी' के मेजर स्केल में एक स्वर शार्प होता है। अत: पाश्चात्य संगीत की स्वरलिपि में जब 'की-सिग्नेचर' (Key Signature) में केवल एक शार्प का चिह्न दिखाई दे, तो वह रचना 'प' के मेजर स्केल के स्वरों पर बजाई या गाई जाएगी। अर्थात् जब हम अपने 'पंचम' को 'सा' मानकर अपने बिलावल ठाठ के स्वर बजाएँगे, तो वही स्वर पाश्चात्य संगीतज्ञों की दृष्टि में 'जी' स्वर के मेजर स्केल के स्वर होंगे।

इसे और स्पष्ट करने के लिए अगला उदाहरण देने से पूर्व यह और बता दें कि पाश्चात्य संगीत में सातों स्वरों को 'फ्लैट' या 'शार्प' किया जा सकता है। भारतीय संगीत की भाँति पाश्चात्य संगीत में 'सा' और 'प' स्वर अचल नहीं होते, अत: मध्य 'सा' को फ्लैट कर देने से वह मन्द्र-सप्तक का शुद्ध निषाद और शार्प कर देने से मध्य-सप्तक का कोमल ऋषभ हो जाएगा। इस स्थिति में शुद्ध निषाद को 'सी-फ्लैट' ('सी' का अर्थ 'सा' से है) और कोमल ऋषभ को 'सी-शार्प' कहा जाएगा। यदि पाश्चात्य संगीतज्ञों के शार्प के चिह्न को हम अपने पिछले 'प' के मेजर स्केल के स्वरों पर रख दें, तो उसे इस प्रकार लिखा जा सकेगा :—

#
प ध नि सां रें गं मं पं

ज्ञातव्य : पाश्चात्य संगीतज्ञ जिस स्वर से पूर्व # इस चिह्न को लगा देते हैं, वही स्वर एक सेमीटोन से शार्प हुआ समझा जाता है, किन्तु हमने यहाँ स्वर को समझाने की दृष्टि से लगा दिया है।

यदि हम टोन, टोन, सेमीटोन के आधार पर 'रे' स्वर का मेजर स्केल बनाएँ और जिन स्वरों को शार्प करना हो, उनके ऊपर शार्प के चिह्न लगा दें, तो इस स्केल के स्वर इस प्रकार होंगे :—

यदि किसी स्वरलिपि में ऊपर की तरह दो शार्प के चिह्न हैं तो वह निश्चित रूप से 'रे' के मेजर स्केल पर गाई या बजाई जानेवाली रचना है; अर्थात् 'रे' के मेजर स्केल में दो शार्प होते हैं। भारतीय संगीतज्ञों को यह देखकर कुछ आश्चर्य होगा कि इस स्केल में 'सा' स्वर है ही नहीं तो यह रचना बजेगी कैसे। जो 'सां' है, वह कोमल 'रे' बन जाता है और दोनों 'रे' साथ-साथ आ जाते हैं। आपकी दृष्टि से बात ठीक है, परन्तु अब आप 'सा, रे, ग, म' इत्यादि स्वरों का ध्यान छोड़ दीजिए और अपने शुद्ध 'रे' को 'सा' मानकर बिलावल ठाठ के स्वर बजाइए। आप देखेंगे कि यही पाश्चात्य संगीतज्ञों के 'रे' स्वर से बजनेवाले मेजर स्केल के स्वर हैं।

माइनर स्केल

पहले आप देख चुके हैं कि जब तीसरे और चौथे अर्थात् 'ग' और 'म' तथा सातवें और आठवें अर्थात् 'नि' और 'सां' स्वरों के बीच में सेमीटोन तथा शेष स्वरों के बीच में टोन होता है तो वह स्केल 'मेजर स्केल' कहलाता है। इसी आधार पर अब 'माइनर स्केल' की रचना करते समय यह ध्यान रखिए कि दूसरे और तीसरे अर्थात् 'रे' और 'ग' तथा पाँचवें और छठे अर्थात् 'प' और 'ध' स्वरों के बीच में सेमीटोन तथा शेष स्वरों के बीच में टोन होने पर जो स्केल बनेगा, उसे 'माइनर स्केल' कहेंगे। यदि इस स्केल के भी 'सा रे ग म' और 'प ध नि सां' दो भाग कर दें, तो इस आधार पर उनके अन्तराल इस प्रकार होंगे :—
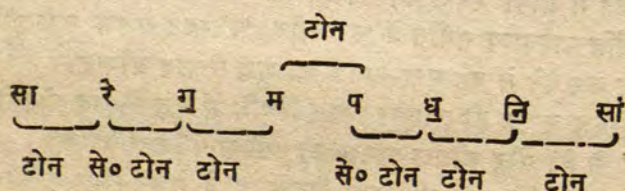
हारमोनिक माइनर स्केल

ऊपर के 'माइनर स्केल' की रचना करने के पश्चात् पाश्चात्य संगीत-विद्वानों को अनुभव हुआ कि सातवें और आठवें अर्थात् 'नि' और 'सां' स्वरों के बीच में जो टोन की दूरी है, वह हारमनी के लिए यदि सेमीटोन हो जाती तो अधिक उतम रहता। अतः ऐसा करने के लिए उन्होंने सातवें स्वर को एक सेमीटोन ऊँचा कर लिया। इस प्रकार जो स्केल बना, उसे 'हारमोनिक माइनर स्केल' कहा गया। इस स्केल के स्वर इस प्रकार होंगे :—

टोन

सा रे ग॒ म प ध॒ नि सां

टोन से० टोन टोन से० टोन १½ टोन से० टोन
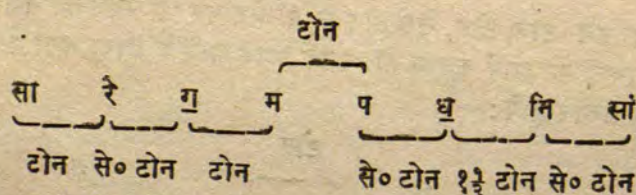
मेलोडिक माइनर स्केल

उपर्युक्त हारमोनिक स्कैल का गायन में प्रयोग करते समय यह अनुभव हुआ कि छठे और सातवें (अर्थात् कोमल 'ध' और शुद्ध 'नि') स्वरों के बीच में जो डेढ़ टोन की

दूरी है, वह कुछ कठिनाई उत्पन्न करती है। अतः इसे एक टोन ही होना चाहिए था। यह दो प्रकार से हो सकता था—छठे स्वर को एक सेमीटोन से ऊँचा करने पर और सातवें स्वर को एक सेमीटोन से नीचा करने पर। किन्तु यदि सातवें स्वर को नीचा किया जाएगा तो सातवें और आठवें स्वरों के मध्य में 'टोन' की दूरी हो जाएगी। इसलिए सातवें स्वर को न छेड़कर छठे को एक सेमीटोन से ऊँचा कर दिया। यह केवल आरोही में किया और अवरोही को ठीक माइनर स्केल-जैसा रखा। इस प्रकार इस स्केल की आरोही और अवरोही भिन्न हो गई। अब यदि इन्हें टोन, सेमीटोन के क्रम से रखें, तो स्थिति इस प्रकार होगी :—
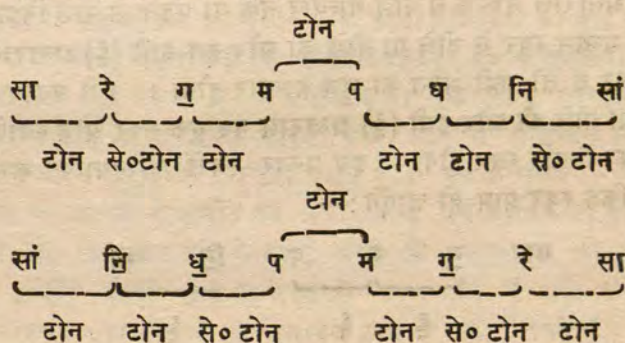
यहाँ आप एक बात देखेंगे कि माइनर स्केल से जब हारमोनिक माइनर या मैलोडिक माइनर स्केल बनाए गए तो जो भी परिवर्तन हुए, वे सप्तक के उत्तरांग में ही हुए। सप्तक के पूर्वांग की रचना सदैव एक समान ही रही। इस आधार पर पाश्चात्य संगीत-विद्वानों ने एक सिद्धान्त बना लिया कि जब सब 'सा' से तीसरे स्वर की दूरी मेजर अन्तराल में हो (अर्थात् 'सा' के साथ रचना में प्रयोज्य गान्धार शुद्ध हो, जोकि मेजर स्केल में आता है) तो उस स्केल को 'मेजर स्केल' और यही अन्तर माइनर हो जाता है (अर्थात् 'सा' के साथ प्रयोज्य तीसरा स्वर कोमल गान्धार है) तो इस स्केल को 'माइनर स्केल' कहेंगे।

क्रोमेटिक स्केल

पाश्चात्य संगीत में ऊपर बताए गए स्केलों के अतिरिक्त एक स्केल और होता है, जिसे 'क्रोमेटिक स्केल कहते हैं। इस स्केल में प्रत्येक स्वर का पारस्परिक अन्तराल एक सेमीटोन होता है। अर्थात् जब हम 'सा, रे॒, रे, ग॒, ग, म, मं, प, ध॒, ध, नि॒, नि, सां' स्वरों को बजाएँगे तो वही स्केल 'क्रोमेटिक स्केल' कहलाएगा।

भारतीय स्वर-सप्तक का विकास

जिस स्वर-सप्तक का हम यहाँ स्पष्टीकरण करेंगे, वह भरत का षड्ज तथा मध्यम ग्राम है। भारतीय स्वर-सप्तक के विकास को समझने से पूर्व विद्यार्थियों को यह सदैव स्मरण रखना चाहिए कि जिस स्वर-सप्तक को भरत ने शुद्ध कहा है, उसके स्वर आधुनिक काफी ठाठ जैसे हैं। इसलिए हम जहाँ भी भरत के शुद्ध स्वरों को स्वरलिपि में लिखेंगे, वहाँ उनपर 'भातखंडे-स्वरलिपि-पद्धति' के कोमल स्वर का चिह्न लगा देंगे।

भरत के षड्ज-ग्राम के स्वरों का विकास

जैसाकि पहले बताया जा चुका है कि जिस प्रकार मध्य-षड्ज से मध्य-पंचम आगे की ओर का पाँचवाँ स्वर है, उसी प्रकार तार-षड्ज से शुद्ध मध्यम पीछे की ओर का पाँचवाँ स्वर है। यह अन्तराल ९/८ या एक गुरु स्वर है। जैसाकि भरत की सारणा-चतुष्टयी के आधार पर हमने देखा था कि चौथी सारणा में चल वीणा के पंचम को अचल वीणा के मध्यम में मिलाया गया, तो चल वीणा का मध्यम और षड्ज स्वतः ही क्रम से अचल वीणा के गान्धार और निषाद में लीन हो गए। निष्कर्ष यह निकला कि जो अन्तराल मध्यम और पंचम के बीच में था (९/८ या गुरु स्वर या चार श्रुतियों का) ठीक वही अन्तराल मध्यम से पीछे गान्धार तक या षड्ज से पीछे निषाद तक का है। अब यदि मध्यम स्वर से नीचे या पीछे की ओर हम इसी (९/८) अन्तराल पर एक स्वर स्थापित कर दें तो यही भरत का शुद्ध गान्धार होगा। इसी प्रकार यदि तार-षड्ज से नीचे या पीछे की ओर इसी (९/८) अन्तराल पर एक स्वर और स्थापित कर दें तो यही भरत का निषाद स्वर होगा। इस प्रकार स्वरों को स्थापित करने पर हमें भरत के निम्नांकित स्वर प्राप्त हो जाएँगे :—

सा	ग		म		प	नि		सां
		९/८		९/८			९/८	

अब इस सप्तक को पूरा करने के लिए दो स्वर ऋषभ और धैवत को और खोजना है कि उनकी स्थिति किस स्थान पर है। किन्तु इससे पूर्व यह जान लेना आवश्यक है कि दो श्रुतियों का अन्तराल क्या है। इसका संकेत हमें प्राचीन ग्रन्थकारों के दो स्वर 'अन्तर-गान्धार' तथा 'काकली निषाद' से प्राप्त होता है। उनका कथन है कि अन्तर-गान्धार की प्राप्ति 'ग' को दो श्रुतियाँ चढ़ाने पर अथवा मध्यम को इसी अन्तराल से कम करने पर प्राप्त हो सकती है। इससे यह स्पष्ट है कि 'अन्तर गान्धार' स्वर इसी 'ग' और 'म' के ठीक मध्य में है। इसी प्रकार 'काकली निषाद' भी 'तार-षड्ज' और 'नि' के ठीक मध्य में है। इस आधार पर यदि हम 'ग–म' अथवा 'नि–सां' के अन्तराल को आधा कर लेंगे, तो जो अन्तराल प्राप्त होगा, वह दो श्रुतियों का अन्तराल होगा। अब यदि इस दो श्रुतियों के अन्तराल में एक श्रुति का अन्तराल (जो पीछे बताए गए 'क', 'ख', ग, अन्तरालों में से 'ख' अन्तराल है) जोड़ दिया जाए, तो जो स्वर-स्थान प्राप्त होगा, वह गान्धार के पहले ऋषभ और निषाद से पूर्व धैवत होगा। इस आधार पर भरत के षड्ज-ग्राम में स्वरों में परस्पर अन्तराल इस प्रकार होंगे :—

स		रे		ग		म		प		ध		नि		सां
	१०/९		१६/१५		९/८		९/८		१०/९		१६/१५		९/८	

मध्यम-ग्राम

मध्यम-ग्राम में पंचम स्वर में तीन श्रुतियों और धैवत में चार श्रुतियों का अन्तराल हो जाता है, अतः इस ग्राम के स्वरों का परस्पर अन्तराल इस प्रकार होगा :—

स	रे	ग॒	म	प	ध	नि॒	सां
$\frac{१०}{९}$	$\frac{१६}{१५}$	$\frac{९}{८}$	$\frac{१०}{९}$	$\frac{९}{८}$	$\frac{१६}{१५}$	$\frac{९}{८}$	

यही भरत के स्वर-सप्तक का विकास है।

बिलावल ठाठ की मान्यता

अब हम इसपर विचार करेंगे कि जब भरत मुनि का षड्ज-ग्राम शुद्ध ग्राम माना जाता था, तो बिलावल ठाठ को शुद्ध ग्राम (शुद्ध सप्तक) मानने का प्रचार कबसे और क्यों हुआ। यह बताया जा चुका है कि प्राचीन विद्वानों का शुद्ध मेल आधुनिक काफी ठाठ था। किन्तु अनुमान है कि अहोबल (१६१५ ई० के लगभग) से बहुत पूर्व ही बिलावल ठाठ शुद्ध मेल के रूप में प्रचार में आ चुका था। कारण कि यूनानी पायथागोरस का ग्राम और अरबी-फारसी ग्राम सदा से आधुनिक बिलावल ठाठ जैसे ही रहे हैं। फिर, अमीर खुसरो (सन् १३०० ई० के लगभग) के सम्पर्क से उत्तरी संगीत पर फारस के सगीत का प्रभाव होना स्वाभाविक-सा हो गया। यदि ध्यान से देखें तो बिलावल ठाठ के स्वर, भरत के षड्ज-ग्राम की नैषादी रजनी मूर्च्छना है; अर्थात् काफी ठाठ या भरत के षड्ज-ग्राम में यदि आरम्भिक स्वर निषाद को मानकर आरोही करें तो बिलावल ठाठ के स्वर बनते हैं। दूसरे, भरत का ग्राम अवरोही होने से प्रत्येक स्वर की श्रुतियाँ नीचे की ओर चलती हैं। अब यदि श्रुतियों के स्वरों का मान भरत के आदेशानुसार ही रखें और प्रत्येक स्वर की श्रुतियों को ऊपर की ओर जाता हुआ मानें, तो बिलावल ठाठ की रचना होती है। भरत के अनुसार, षड्ज की तीव्रा, कुमुद्वती, मन्दा और छन्दोवती ये चार श्रुतियाँ मानी जाती हैं। ये चारों श्रुतियाँ उत्तरोत्तर ऊँची होती जाती हैं। षड्ज को भरत और शार्ङ्गदेव ने छन्दोवती पर स्थापित किया है। किन्तु षड्ज को तीव्रा पर मान लें और इसी तरह शेष स्वरों के स्थान को निम्नतम श्रुति पर मानें, तो भरत का ग्राम स्वयं ही बिलावल ठाठ में बदल जाएगा; जैसे :—

भरत	ऩि॒	सा	रे	ग॒	म	प	ध	नि॒
बिलावल	सा	रे	ग	म	प	ध	नि	सां

यहाँ ऊपर की तालिका में भरत के स्वरों में 'सा' की श्रुतियाँ 'सा' स्वर से पहले हैं, जबकि बिलावल ठाठ के स्वरों में 'सा' की श्रुतियाँ 'सा' से आगे हैं।

इस प्रकार यह सिद्ध होता है कि बिलावल ठाठ को, जो शुद्ध ग्राम के नाते फारसी संगीत के सम्पर्क से ही भारतीय संगीत में आया, भारतीय परम्परा बनाए रखने के लिए भरत से जोड़ दिया गया। यह ग्राम हरिदास, तानसेन के काल में भी प्रचलित था। उत्तर-भारत के संगीत की ऐसी ही अनेक उलझनों को सुलझाने के लिए जयपुर-नरेश महाराज प्रतापसिंह देव (१७७९-१८०१ ई०) ने एक बृहत् संगीत-विचार-गोष्ठी का आयोजन किया। इस विचार-गोष्ठी के फलस्वरूप 'संगीत-सार' नामक ग्रन्थ की रचना हुई। इस ग्रन्थ में बिलावल ग्राम को ही शुद्ध ग्राम माना

गया है। इसके पश्चात् १८१३ ई० में पटना के नवाब मुहम्मद रजा साहब ने एक ग्रन्थ 'नगमाते-आसफी' लिखा। इसमें बिलावल को ही शुद्ध ग्राम माना है।

यही नहीं, दक्षिण में भी शंकराभरण (बिलावल) राग सबसे अधिक लोकप्रिय समझा जाता है। यह इस बात की ओर संकेत करता है कि उधर भी बिलावल को ही शुद्ध मेल मानने की ओर झुकाव है। साथ में यह भी ध्यान रखना चाहिए कि पाश्चात्य संगीत में भी 'सा' का मेजर स्केल' (Major Scale of C) यही बिलावल ठाठ है।

इस प्रकार आज हिन्दुस्तानी संगीत में बिलावल ठाठ को ही शुद्ध मेल मानते हैं।

ठाठ-पद्धति का विकास

पन्द्रहवीं शताब्दी के अन्तिम काल में 'राग-तरंगिणी' के लेखक लोचन कवि ने रागों के वर्गीकरण की परम्परागत शैली ग्राम और मूर्च्छना का परिमार्जन करके मेल अथवा ठाठ को सामने रखा। उस समय तक लोचन कवि के लेखानुसार सोलहसौ राग थे, जिन्हें गोपियाँ कृष्ण के सामने गाया करती थीं, किन्तु उनमें से छत्तीस राग प्रसिद्ध थे। उन्होंने इन सब बखेड़ों को समाप्त करके बारह ठाठ या मेल इस प्रकार कायम किए :—

१ भैरवी, २ तोड़ी, ३ गौरी, ४ कर्णाट, ५ केदार, ६ ईमन, ७ सारंग, ८ मेघ, ९ धनाश्री, १० पूर्वी, ११ मुखारी, १२ दीपक।

लोचन के मेलों (ठाठों) की जन्य-राग-व्यवस्था

भैरवी : १ भैरवी, २ नीलाम्बरी।

तोड़ी : १ तोड़ी

गौरी : १ मालव, २ श्री-गौरी, ३ चैतीगौरी, ४ पहाड़ीगौरी, ५ देशीतोड़ी, ६ देशिकार, ७ गौरी, ८ त्रिवण, ९ मुलतानी, १० धनाश्री, ११ बसन्त, १२ रामकरी, १३ गुर्जरी, १४ बहुली, १५ रेवा, १६ भटियार, १७ षट्, १८ पंचम, १९ जयन्तश्री, २० आसावरी, २१ देवगान्धार, २२ सैंध-व्यासावरी, २३ गुणकरी।

कर्णाट : १ कानर, २ वेगीश्वरीकानर, खम्बावती, ४ सोरट, ५ परज, ६ मारू, ७ जैजैवन्ती, ८ ककुभा, ९ कामोद, १० कामोदी, ११ गौर, १२ माल-कौशिक, १३ हिंडोल, १४ सुग्राही, १५ अडाणा, १६ गौरकानर, १७ श्रीराग।

केदार : १ केदारनाट, २ आभीरनाट, ३ खम्बावती, ४ शंकराभरण, ५ विहागरा, ६ हम्मीर, ७ श्याम, ८ छायानट, ९ भूपाली, १० भीमपलासी, ११ कौशिक, १२ मारु।

ईमन : १ ईमन, २ शुद्धकल्याण, ३ पूरिया, ४ जयतकल्याण।

सारंग : १ सारंग, २ पटमंजरी, ३ वृन्दावनी, ४ सामन्त, ५ वड़हंसक।

मेघ : १ मेघमल्लार, २ गौणसारंग, ३ नाट, ४ वेलावली, ५ अलैया, ६ सुहू, ७ देशी सुहू, ८ देशाख्य, ९ शुद्ध नाट।

धनाश्री : १ धनाश्री, २ ललित।

पूर्वी : १ पूर्वी।

मुखारी : १ मुखारी।

दीपक : १ दीपक।

लोचन के बाद बहुत समय तक मेल या ठाठ के बारे में कोई विशेष प्रगति नहीं हुई। १६५५ ई० के लगभग श्री हृदयनारायण देव ने लोचन के उक्त ठाठों के वर्गीकरण की पुष्टि करते हुए इस प्रकार व्याख्या की:—

१. भैरवी : शुद्ध स्वर—'सांशन्यासा च सम्पूर्णा षड्जादिर्भैरवो भवेत् ।'

२. कर्नाट : कर्णाटस्त्रयसम्पूर्णाः षड्जादिः परिकीर्तितः ॥

३. मुखारी : कोमल धैवत—धकोमला मुखारी स्यात्पूर्णाधादिक मूर्धना ।

४. तोड़ी : कोमलर्षभधैवतो तीव्रतरगान्धारनिषादौ च ।
कोमलर्षभधा पूर्णा गांशा तोडी निरूप्यते ॥

५. केदार : गान्धार और निषाद ।

६. यमन : तीव्रतर गान्धार, धैवत और निषाद ।

७. मेघ :

८. तीव्रतम गान्धार, मध्यम और निषाद । —हृदय राम
गस्यतीव्रतमत्वेऽथ तथा तीव्रतमौ मनी ।
इहैवोत्प्रेक्षिता पूर्णा हृदयाद्यारिभोच्यते ॥

९. गौरी :

१०. सारंग :

११. पूर्वा :

१२. धनाश्री :

सत्रहवीं शताब्दी में ठाठों के अन्तर्गत रागों का वर्गीकरण प्रचार में आ गया था; जो उस समय के प्रसिद्ध ग्रन्थ 'संगीत-पारिजात' और 'राग-विबोध' से स्पष्ट है। इसी काल में श्रीनिवास ने मेल की परिभाषा करते हुए बताया कि राग की उत्पत्ति ठाठ से होती है और ठाठ के तीन रूप हो सकते हैं—औडुव, षाडव और सम्पूर्ण। उसके पश्चात् सत्रहवीं शताब्दी के अन्त तक ठाठों की संख्या में विद्वानों का विशेष मतभेद रहा। उदाहरणार्थ 'राग-विबोध' के लेखक ने ठाठों की संख्या तेईस, 'स्वर-मेल-कलानिधि' के लेखक ने बीस तथा 'चतुर्दण्डिप्रकाशिका' के लेखक ने उन्नीस बताई है।

दक्षिणी संगीत-पद्धति के विद्वान् लेखक पं० व्यंकटमखी ने ठाठों की संख्या निश्चित करने के लिए गणित का सहारा लिया और पूर्ण रूप से हिसाब लगाकर ठाठों की कुल निश्चित संख्या बहत्तर बताई। इसके बारे में अपने दृढ़ विश्वास के साथ उन्होंने कहा कि इस संख्या में संगीत के जनक भगवान् शंकर भी घटा-बढ़ी नहीं कर सकते। बहत्तर में से व्यंकटमखी ने उन्नीस ठाठ कामचलाऊ चुन लिए, जिनकी तालिका आगे दी जाएगी। व्यंकटमखी की इस ठाठ-संख्या को दक्षिणी संगीतज्ञों ने

तो अपनाया, किन्तु उत्तरी विद्वानों पर इसका विशेष प्रभाव नहीं पड़ा। फिर भी उत्तर-भारत के संगीतज्ञ ठाठों की कुल निर्धारित संख्या (७२) को गलत नहीं मानते। ठाठों की यह संख्या कुछ कारणों से उत्तरी पद्धति के लिए अनुकूल नहीं रही, अतः आधुनिक काल के विद्वान् संगीताचार्य पं० विष्णुनारायण भातखडे ने उक्त बहत्तर ठाठों में से केवल दस ठाठ चुनकर समस्त प्रचलित रागों का वर्गीकरण किया, जिसे उत्तर-भारतीय संगीत-विद्यार्थियों ने अपनाकर राग-रागिनी की प्राचीन पद्धति से अपना पीछा छुड़ाया। इस प्रकार लोचन कवि से आरम्भ होकर यह ठाठ-पद्धति चक्कर काटती हुई श्री भातखंडे के समय में आकर वैज्ञानिक रूप से स्थिर हो गई।

ठाठ-व्याख्या

मेलः स्वरसमूहः स्याद्रागव्यंजनशक्तिमान।

—अभिनव राग-मंजरी

अर्थात्—'मेल' (ठाठ) स्वरों के उस समूह को कहते हैं, जिससे राग उत्पन्न हो सकें। नाद से स्वर, स्वरों से सप्तक और सप्तक से ठाठ तैयार होते हैं।

एक सप्तक में शुद्ध-विकृत (कोमल-तीव्र) मिलकर कुल बारह स्वर होते हैं, यह पहले बताया ही जा चुका है। इन्हीं स्वरों की सहायता से ठाठ तैयार होते हैं। 'ठाठ' को ही संस्कृत में 'मेल' कहते हैं।

ठाठ के विषय में निम्नांकित बातें ध्यान रखनी चाहिए :—

१. यद्यपि ठाठ बारह स्वरों से तैयार किए गए हैं, किन्तु ठाठ में सात स्वर ही लिए जाते हैं। ये सात स्वर उन्हीं बारह स्वरों में से चुन लिए जाते हैं।

२. वे सात स्वर 'सा, रे, ग, म, प, ध, नि' इसी क्रम से और इन्हीं नामों से होने चाहिए। यह हो सकता है कि उपर्युक्त सात स्वरों में कोई कोमल या कोई तीव्र ले लिया जाए, किन्तु सिलसिला यही रहेगा। राग में ये स्वर इस क्रम से हों या न हों, किन्तु ठाठ में इस क्रम का होना आवश्यक है। राग में सात स्वरों से कम भी हो सकते हैं, किन्तु ठाठ में सात स्वरों का होना जरूरी है। अर्थात् ठाठ का सम्पूर्ण होना आवश्यक है; क्योंकि बहुत-से ऐसे राग हैं, जिनमें सातों स्वर लगते हैं, इसलिए ठाठ में सातों स्वरों का होना आवश्यक है; अन्यथा उससे सम्पूर्ण जाति के राग तैयार करने में असुविधा होगी।

३. ठाठ में केवल आरोह ही होता है, क्योंकि इसमें आरोह-अवरोह, दोनों का होना आवश्यक नहीं है।

४. ठाठ में एक ही स्वर के दो रूप (कोमल व तीव्र) साथ-साथ आ सकते हैं।

५. ठाठ में रंजकता का होना आवश्यक नहीं है; अर्थात यह आवश्यक नहीं कि ठाठ सुनने में कानों को अच्छा ही लगे। कारण, ठाठ में क्रमानुसार सात स्वर लेना अनिवार्य होता है और कभी-कभी एक स्वर के दो स्वरूप (कोमल-तीव्र) भी साथ-

साथ आ सकते हैं; इसलिए प्रत्येक ठाठ में रंजकता का रहना सम्भव है ही नहीं।

६. ठाठ को पहचानने के लिए, उसमें से उत्पन्न हुए किसी प्रमुख राग का नाम दे दिया जाता है, जैसे भैरव एक प्रसिद्ध राग है, इसलिए भैरव राग के स्वरों के अनुसार जो ठाठ बना, उस ठाठ का नाम भी 'भैरव ठाठ' रख दिया। इसी प्रकार अन्य ठाठों के नाम रखे गए हैं। प्रत्येक ठाठ में स्वर तो केवल सात ही होते हैं, किन्तु उनके स्वरों में कोमल, तीव्र का अन्तर पड़ जाता है। इस अन्तर से ही तरह-तरह के ठाठ बना लिए गए हैं।

यमन, बिलावल और खमाजी, भैरव, पूरबि, मारव, काफी।
आसा, भैरवि, तोड़ि बखाने, दशमित ठाठ 'चतुर' गुनमाने॥

चतुर पंडित की इस कविता से दस ठाठों के नाम आसानी से याद हो जाते हैं। नीचे दस ठाठों में लगनेवाले कोमल व तीव्र स्वर दिखाए गए हैं:—

दस ठाठों के सांकेतिक चिह्न

यमन या कल्याण ठाठ :	सा	रे	ग	म॑	प	ध	नि	सां
बिलावल ठाठ :	सा	रे	ग	म	प	ध	नि	सां
खमाज ठाठ :	सा	रे	ग	म	प	ध	नि॒	सां
भैरव ठाठ :	सा	रे॒	ग	म	प	ध॒	नि	सां
पूर्वी ठाठ :	सा	रे॒	ग	म॑	प	ध॒	नि	सां
मारवा ठाठ :	सा	रे॒	ग	म॑	प	ध	नि	सां
काफी ठाठ :	सा	रे	ग॒	म	प	ध	नि॒	सां
आसावरी ठाठ :	सा	रे	ग॒	म	प	ध॒	नि॒	सां
भैरवी ठाठ :	सा	रे॒	ग॒	म	प	ध॒	नि॒	सां
तोड़ी ठाठ :	सा	रे॒	ग॒	म॑	प	ध॒	नि	सां

बहत्तर ठाठ कैसे बनते हैं ?

एक सप्तक के बारह स्वरों से बहत्तर ठाठ कैसे बनते हैं, इसे समझाते हैं :—

सा रे॒ रे ग॒ ग म म॑ प ध॒ ध नि॒ नि।

इन बारह स्वरों में से कुछ देर के लिए 'म॑' (तीव्र मध्यम) हटा दीजिए और ऊपर की सप्तक का 'सा' जोड़कर स्वर-संख्या बारह पूरी कर लीजिए। अब यह स्वरूप हो गया :—

सा रे॒ रे ग॒ ग म प ध॒ ध नि॒ नि सां।

इस स्वर-समुदाय के दो भाग कर दिए, तो पहले छह स्वरोंवाले समुदाय को 'पूर्वार्द्ध' और आगे के स्वरों के समुदाय को 'उत्तरार्द्ध' कहेंगे।

पूर्वार्द्ध	उत्तरार्द्ध
सा रे॒ रे ग॒ ग म	प ध॒ ध नि॒ नि सां

अब यह देखिए कि प्रत्येक छह स्वरों के समुदाय को उलट-पलटकर रखने से चार-चार स्वरोंवाले कितने 'मेल' बन सकते हैं। पहले पूर्वार्द्ध वाले स्वर-समुदाय को लेकर चलते हैं :—

पूर्वार्द्ध					उत्तरार्द्ध				
१.	सा	रे	रे	म	१.	प	ध	ध	सां
२.	सा	रे	ग	म	२.	प	ध	नि	सां
३.	सा	रे	ग	म	३.	प	ध	नि	सां
४.	सा	रे	ग	म	४.	प	ध	नि	सां
५.	सा	रे	ग	म	५.	प	ध	नि	सां
६.	सा	ग	ग	म	६.	प	नि	नि	सां

उपर्युक्त प्रकारों के अलावा और कोई नवीन प्रकार का मेल इन स्वरों से नहीं बन सकता। अब इन दोनों को आपस में मिलाया गया, तो ६×६=३६ ठाठ बने, जो निम्नलिखित हैं:—

पूर्वार्द्ध और उत्तरार्द्ध के छत्तीस ठाठ

(१)									(२)								
१.	सा	रे	रे	म	प	ध	ध	सां	७.	सा	रे	ग	म	प	ध	ध	सां
२.	सा	रे	रे	म	प	ध	नि	सां	८.	सा	रे	ग	म	प	ध	नि	सां
३.	सा	रे	रे	म	प	ध	नि	सां	९.	सा	रे	ग	म	प	ध	नि	सां
४.	सा	रे	रे	म	प	ध	नि	सां	१०.	सा	रे	ग	म	प	ध	नि	सां
५.	सा	रे	रे	म	प	ध	नि	सां	११.	सा	रे	ग	म	प	ध	नि	सां
६.	सा	रे	रे	म	प	नि	नि	सां	१२.	सा	रे	ग	म	प	नि	नि	सां
(३)									**(४)**								
१३.	सा	रे	ग	म	प	ध	ध	सां	१९.	सा	रे	ग	म	प	ध	ध	सां
१४.	सा	रे	ग	म	प	ध	नि	सां	२०.	सा	रे	ग	म	प	ध	नि	सां
१५.	सा	रे	ग	म	प	ध	नि	सां	२१.	सा	रे	ग	म	प	ध	नि	सां
१६.	सा	रे	ग	म	प	ध	नि	सां	२२.	सा	रे	ग	म	प	ध	नि	सां
१७.	सा	रे	ग	म	प	ध	नि	सां	२३.	सा	रे	ग	म	प	ध	नि	सां
१८.	सा	रे	ग	म	प	नि	नि	सां	२४.	सा	रे	ग	म	प	नि	नि	सां

(५)								(६)							
२५. सा	रे	ग	म	प	ध	ध	सां	३१. सा	ग	ग	म	प	ध	ध	सां
२६. सा	रे	ग	प	प	ध	नि	सां	३२. सा	ग	ग	म	प	ध	नि	सां
२७. सा	रे	ग	म	प	ध	नि	सां	३३. सा	ग	ग	म	प	ध	नि	सां
२८. सा	रे	ग	म	प	ध	नि	सां	३४. सा	ग	ग	म	प	ध	नि	सां
२९. सा	रे	ग	म	प	ध	नि	सां	३५. सा	ग	ग	म	प	ध	नि	सां
३०. सा	रे	ग	म	प	नि	नि	सां	३६. सा	ग	ग	म	प	नि	नि	सां

उपर्युक्त पूर्वार्द्ध और उत्तरार्द्ध के मेल से उत्पन्न हुए छत्तीस ठाठों में केवल शुद्ध मध्यम ही लिया गया है। अब अगले छत्तीस ठाठ भी इसी तरह तैयार होंगे; अन्तर केवल इतना हो जाएगा कि शुद्ध मध्यम की जगह उनमें तीव्र मध्यम लग जाएगा। इस प्रकार बहत्तर ठाठ हो जाते हैं; अर्थात् दोनों मध्यमों से ३६×२=७२ ठाठ उत्पन्न हो गए। उपर्युक्त बहत्तर प्रकारों के अलावा अन्य कोई नवीन प्रकार इन स्वरों से नहीं बन सकता।

एक शंका

यहाँ पर यह शंका होना स्वाभाविक है कि जब ठाठ सम्पूर्ण होता है अर्थात् उसमें सातों स्वरों का होना जरूरी है, तो क्या कारण है कि ठाठ-संख्या १ में 'ग, नि' वर्जित हो गए हैं। ठाठ-संख्या इकत्तीस में 'रे, नि' वर्जित हो गए हैं और अन्य कुछ ठाठों में भी 'रे' और कुछ ठाठों में 'ग' वर्जित हो गया है।

इसका उत्तर यह है कि पं० व्यंकटमखी के बारहों स्वर हमारे प्रचलित बारह स्वरों के समान नहीं थे। उनमें प्रति सैकिंड में होनेवाले आन्दोलन आधुनिक बारह स्वरों के आन्दोलनों से भिन्न थे। व्यंकटमखी ने ठाठ को सम्पूर्ण बनाने के लिए अपने स्वरों के कुछ और ही नाम रख लिए थे; जैसे पूर्वार्द्ध सप्तक में हमारे यहाँ 'सा, रे, रे, म' रखा गया है; उन्होंने वहाँ इसे 'सा, रा, गा, मा,' इस प्रकार नाम दिया है; देखिए :—

हमारा पूर्वार्द्ध सप्तक				पं० व्यंकटमखी के कल्पित नाम			
१. सा	रे	रे	म	१. सा	रा	गा	मा
२. सा	रे	ग	म	२. सा	रा	गी	मा
३. सा	रे	ग	म	३. सा	रा	गू	मा
४. सा	रे	ग	म	४. सा	री	गी	मा
५. सा	रे	ग	म	५. सा	रू	गी	मा
६. सा	ग	ग	म	६. सा	रू	गू	मा

हमारा उत्तरार्द्ध सप्तक				व्यंकटमखी के कल्पित नाम			
१. प	ध	ध	सां	१. प	धा	ना	सां
२. प	ध	नि	सां	२. प	धा	नि	सां
३. प	ध	नि	सां	३. प	धा	नू	सां
४. प	ध	नि	सां	४. प	धी	नी	सां
५. प	ध	नि	सां	५. प	धू	नो	सां
६. प	नि	नि	सां	६. प	धू	नू	सां

इस प्रकार स्वरों को कल्पित संज्ञाएँ देकर उन्होंने ठाठ की सम्पूर्णता कायम रखी है। इस युक्ति से उनके बहत्तर ठाठों में कोई भी स्वर वर्जित दिखाई नहीं देगा।

उपर्युक्त बहत्तर ठाठों में से हिन्दुस्तानी (उत्तर-भारतीय) संगीत-पद्धति में केवल दस ठाठ ही प्रचलित हैं, क्योंकि इनसे ही हमारा काम भली-भाँति चल जाता है। इनके नाम और स्वर इस लेख के आरम्भ में बताए ही जा चुके हैं।

उत्तर-भारतीय संगीत-पद्धति के बारह स्वरों से बत्तीस ठाठ

यह बताया जा चुका है कि व्यंकटमखी पंडित के स्वर हमारे स्वरों के समान नहीं थे, इसलिए उन्होंने अपने स्वरों के हिसाब से बहत्तर ठाठ बनाए। किन्तु यदि हम व्यंकटमखी के स्वरों पर ध्यान न देकर अपनी हिन्दुस्तानी संगीत-पद्धति के बारह स्वरों के अनुसार ठाठ-रचना करें, तो उनके अनुसार केवल बत्तीस ठाठ ही बनने सम्भव हैं। वे किस प्रकार बनेंगे, यह बताया जाता है।

सप्तक के पूर्वांग और उत्तरांग, ये दो भाग पहले की तरह कर लीजिए :—

१. सा रे रे ग ग म और २. प ध ध नि नि सां।

सप्तक के पहले भाग से				सप्तक के दूसरे भाग से			
१. सा	रे	ग	म	१. प	ध	नि	सां
२. सा	रे	ग	म	२. प	ध	नि	सां
३. सा	रे	ग	म	३. प	ध	नि	सां
४. सा	रे	ग	म	४. प	ध	नि	सां

इस प्रकार चार स्वरवाले आठ मेल बनाने के बाद अब इनको मिलाकर सात स्वरवाले मेल बनाए जाएँ, तो ४×४=१६ मेल इस प्रकार बनेंगे :—

शुद्ध मध्यमवाले सोलह मेल

*१. सा रे॒ ग॒ म प ध॒ नि॒ सां	५. सा रे॒ ग म प ध॒ नि॒ सां
२. सा रे॒ ग॒ म प ध॒ नि सां	*६. सा रे॒ ग म प ध॒ नि सां
३. सा रे॒ ग॒ म प ध नि॒ सां	७. सा रे॒ ग म प ध नि॒ सां
४. सा रे॒ ग॒ म प ध नि सां	८. सा रे॒ ग म प ध नि सां
*९. सा रे ग॒ म प ध॒ नि॒ सां	१३. सा रे ग म प ध॒ नि॒ सां
१०. सा रे ग॒ म प ध॒ नि सां	१४. सा रे ग म प ध॒ नि सां
*११. सा रे ग॒ म प ध नि॒ सां	*१५. सा रे ग म प ध नि॒ सां
१२. सा रे ग॒ म प ध नि सां	*१६. सा रे ग म प ध नि सां

उपर्युक्त सोलह ठाठों में शुद्ध मध्यम लगाया गया है। अब यदि हम शुद्ध की बजाए तीव्र मध्यम लगाकर बिलकुल इसी प्रकार से स्वर लिखें, तो सोलह मेल और बन जाएँगे :—

तीव्र मध्यमवाले सोलह मेल

१. सा रे॒ ग॒ म॑ प ध॒ नि॒ सां	५. सा रे॒ ग म॑ प ध॒ नि॒ सां
*२. सा रे॒ ग॒ म॑ प ध॒ नि सां	*६. सा रे॒ ग म॑ प ध॒ नि सां
३. सा रे॒ ग॒ म॑ प ध नि॒ सां	७. सा रे॒ ग म॑ प ध नि॒ सां
४. सा रे॒ ग॒ म॑ प ध नि सां	*८. सा रे॒ ग म॑ प ध नि सां
९. सा रे ग॒ म॑ प ध॒ नि॒ सां	१३. सा रे ग म॑ प ध॒ नि सां
१०. सा रे ग॒ म॑ प ध॒ नि सां	१४. सा रे ग म॑ प ध॒ नि सां
११. सा रे ग॒ म॑ प ध नि॒ सां	१५. सा रे ग म॑ प ध नि॒ सां
१२. सा रे ग॒ म॑ प ध नि सां	*१६. सा रे ग म॑ प ध नि सां

इस प्रकार सोलह मेल शुद्ध मध्यमवाले और सोलह मेल तीव्र मध्यमवाले मिलकर १६+१६=३२ मेल हमारी पद्धति से बन सकते हैं और इनमें सिलसिलेवार स्वरों में से कोई स्वर भी नहीं छूटा तथा एक स्वर के दो रूप पास-पास भी नहीं आए।

उपर्युक्त बत्तीस मेलों में हमारे प्रचलित दस ठाठ भी मौजूद हैं, जो यथास्थान पुष्पांकित किए गए हैं। देखिए :—

शुद्ध मध्यमवाले सोलह मेलों में	तीव्र मध्यमवाले सोलह मे
सं० १ पर भैरवी ठाठ	सं० २ पर तोड़ी ठाठ
सं० ६ पर भैरवी ठाठ	सं० ६ पर पूर्वी ठाठ
सं० ९ पर आसावरी ठाठ	सं० ८ पर मारवा ठाठ
सं० ११ पर काफी ठाठ	सं० १६ पर कल्याण ठाठ
सं० १५ पर खमाज ठाठ	
सं० १६ पर बिलावल ठाठ	

यद्यपि हमारी पद्धति से उपर्युक्त बत्तीस ठाठ ही सम्भव हैं, फिर भी पं० व्यंकटमखी के बहत्तर ठाठों का सिद्धान्त इसलिए मानना पड़ता है कि इसके आविष्कारक व्यंकटमखी ही थे और उन्होंने अपने देश की अर्थात् कर्नाटकी पद्धति के स्वरों से बहत्तर ठाठ बनाने का जो सिद्धान्त सबसे पहले प्रतिपादित किया, गणित के अनुसार वह बिलकुल ठीक था। किन्तु उन्होंने बहत्तर ठाठों में से उन्नीस ठाठ अपना काम चलाने को ऐसे चुन लिए, जिनसे दक्षिणी रागों का वर्गीकरण किया जा सकता था। इसी प्रकार उत्तर-भारत के विद्वानों ने उपर्युक्त बहत्तर ठाठों में से बत्तीस ठाठ ऐसे चुने, जिनके अन्तर्गत उत्तर-भारतीय संगीत-पद्धति के रागों का वर्गीकरण सम्भव हो सकता था। फिर अपना काम चलाने के लिए बत्तीस में से केवल दस ठाठ उत्तर-भारतीय संगीत में चालू रखे गए, जो आजकल प्रचलित हैं।

इन दस ठाठों को भी तीन वर्गों में विभाजित किया जा सकता है :—

पहला वर्ग

कल्याण
बिलावल
खमाज } शुद्ध 'रे, ग, ध' वाले रागों के लिए

दूसरा वर्ग

भैरव
पूर्वी
मारवा } कोमल 'रे' तथा शुद्ध 'ग, नि' वाले रागों के लिए

तीसरा वर्ग

काफी
भैरवी
आसावरी
तोड़ी } कोमल 'ग, नि' वाले रागों के लिए

इस प्रकार इन दस ठाठों के अन्तर्गत हमारे प्रत्येक समय के राग आ सकते हैं। इसीलिए भातखंडे जी ने केवल दस ठाठ ग्रहण किए और शेष ठाठों को विदेशी तथा अपने लिए अनुपयोगी समझकर छोड़ दिया।

उत्तर-भारतीय संगीत-पद्धति के दस ठाठों से उत्पन्न कुछ राग

कल्याण ठाठ के राग

१. यमन, २. भूपाली, ३. शुद्ध कल्याण, ४. चन्द्रकान्त, ५. जयतकल्याण, ६. मालश्री, ७. हिन्दोल, ८. हमीर, ९. केदार, १०. कामोद, ११. श्याम, १२. छायानट, १३. गौड़सारंग इत्यादि।

बिलावल ठाठ के राग

१. बिलावल शुद्ध, २. अल्हैयाबिलावल, ३. शुक्लबिलावल, ४. देवगिरी, ५. यमनी, ६. ककुभ, ७. नटबिलावल, ८. लच्छासाख, ९. सरपर्दा, १०. बिहाग, ११. देशकार, १२. हेमकल्याण, १३. नटराग, १४. पहाड़ी, १५. माँड़, १६. दुर्गा, १७. मलुहा, १८. शंकरा इत्यादि।

खमाज ठाठ के राग

१. झिझोटी, २. खमाज, ३. द्वितीय दुर्गा, ४. तिलंग, ५. रागेश्वरी, ६. खम्बावती, ७. गारा, ८. सोरठ, ९. देस, १०. जैजैवन्ती, ११. तिलक-कामोद इत्यादि

भैरव ठाठ के राग

१. भैरव, २. रामकली. ३. बंगालभैरव, ४. सौराष्ट्रटंक, ५. प्रभात, ६. शिवभैरव, ७. आनन्दभैरव, ८. अहीरभैरव, ९. गुणकली, १०. कालिंगड़ा, ११. जोगिया, १२. विभास, १३. मेघरंजनी इत्यादि।

पूर्वी ठाठ के राग

१. पूर्वी, २. पूर्याधनाश्री, ३. जेतश्री, ४. परज, ५. श्री राग, ६. गौरी, ७. मालवी, ८. त्रिवेणी, ९. टंकी, १०. वसन्त इत्यादि।

मारवा ठाठ के राग

१. मारवा, २. पूरिया, ३. जैत, ४. मालीगौरा, ५. साजगिरी, ६. वराटी, ७. ललित, ८. सोहनी, ९. पंचम, १०. भटियार, ११. विभास, १२. भंखार इत्यादि।

काफी ठाठ के राग

१. काफी, २. सैन्धवी, ३. सिन्दूरा, ४. धनाश्री, ५. भीमपलासी, ६. धानी, ७. पटमंजरी, ८. पटदीपकी, ९. हंसकंकणी, १०. पीलू, ११. बागेश्वरी, १२. सहाना, १३. सूहा, १४. सुघराई, १५. नायकीकान्हरा, १६. देवसाख, १७. बहार, १८. वृन्दावनी सारंग, १९. मध्यमादिसारंग, २०. सामन्तसारंग, २१. शुद्ध सारंग,

२२. मियाँ की सारंग, २३. बड़हंससारंग, २४. शुद्धमल्लार, २५. मेघ, २६. मियाँ की मल्लार, २७. सूरमल्लार, २८. गौड़मल्लार इत्यादि।

आसावरी ठाठ के राग

१. आसावरी, २. जौनपुरी, ३. देवगन्धार, ४. सिन्धुभैरवी, ५. देसी, ६. षट्राग, ७. कौशिक कान्हड़ा, ८. दरबारी कान्हड़ा, ९. अडाणा, १०. द्वितीय नायकी इत्यादि।

भैरवी ठाठ के राग

१. भैरवी, २. मालकोंस, ३. धनाश्री, ४. विलासखानी तोड़ी इत्यादि।

तोड़ी ठाठ के राग

१. तोड़ी, (चौदह प्रकार की), २. मुलतानी इत्यादि।

यद्यपि उपर्युक्त दस ठाठों द्वारा और भी बहुत-से राग उत्पन्न होते हैं, किन्तु यहाँ कुछ प्रचलित रागों का ही उल्लेख किया गया है।

व्यंकटमखी पंडित के बहत्तर मेल (ठाठ)

१. कनकाम्बरी	१४. वसन्तभैरवी	२७. सौरसेना
२. फेनद्युति	१५. मायामालवगौल	२८. केदारगौल
३. सामवराली	१६. वेगवाहिनी	२९. शंकराभरण
४. भानुमती	१७. छायावती	३०. नागाभरण
५. मनोरंजनी	१८. शुद्धमालवी	३१. कलावती
६. तनुकीर्ति	१९. झंकारभ्रमरी	३२. चूड़ामणि
७. सेनाग्रणी	२०. रीतिगौल	३३. गंगातरंगिणी
८. तोड़ी	२१. किरणावली	३४. छायानट
९. भिन्नषड्ज	२२. श्रीराग	३५. देशाक्षी
१०. नटाभरण	२३. गौरीबेलावली	३६. चलनाट
११. कोकिलरव	२४. वीरवसन्त	३७. सौगन्धिनी
१२. रूपवती	२५. शरावती	३८. जगमोहिनी
१३. हेजुज्जी	२६. तरंगिणी	३९. वरालिका

४०. नभोमणि	५१. रामक्रिया	६२. रतिप्रिया
४१. कुम्भिनी	५२. रमामनोहरी	६३. गीतप्रिया
४२. रविक्रिया	५३. गमकक्रिया	६४. भूषावती
४३. गीर्वाणी	५४. वंशावती	६५. शान्तकल्याण
४४. भवानो	५५. शामला	६६. चतुरंगिणी
४५. शैवपन्तुवराली	५६. चामरा	६७. सन्तानमंजरी
४६. स्तवराज	५७. समद्युति	६८. ज्योति
४७. सौवीरा	५८. सिंहरव	६९. धौतपंचम
४८. जीवन्तिका	५९. धामवती	७०. नासामणि
४९. धवलांग	६०. नैषध	७१. कुसुमाकर
५०. नामदेशी	६१. कुन्तल	७२. रसमंजरी

व्यंकटमखी पंडित के उन्नीस मेल और उनके स्वर

मेल-नाम	सा	रि	ग	म	प	ध	नि
१. मुखारी	शुद्ध	शुद्ध	शुद्ध	शुद्ध	शुद्ध	शुद्ध	शुद्ध
२. सामवराली	,,	,,	साधारण	,,	,,	,,	काकली
३. भूपाल	,,	,,	,,	,,	,,	,,	कैशिक
४. हेजुज्जी	,,	,,	अन्तर	,,	,,	,,	शुद्ध
५. वसन्तभैरवी	,,	,,	,,	,,	,,	,,	कैशिक
६. गौल	,,	,,	,,	,,	,,	,,	काकली
७. भैरवी	,,	पंचश्रुति	साधारण	,,	,,	,,	कैशिक
८. आहीरी	,,	,,	,,	,,	,,	,,	,,
९. श्री	,,	,,	,,	,,	,,	पंचश्रुति	,,
१०. काम्भोजी	,,	,,	अन्तर	,,	,,	,,	,,

११. शंकराभरण	"	"	"	"	"	"	काकली
१२. सामन्त	"	"	"	"	"	षट्मुख	"
१३. देशाक्षी	"	षट्श्रुति	"	"	"	पंचश्रुति	"
१४. नाट	"	"	"	"	"	षट्श्रुति	"
१५. शुद्धवराली	"	शुद्ध	शुद्ध	वराली	"	शुद्ध	"
१६. पन्तुवराली	"	"	साधारण	"	"	"	"
१७. शुद्धरामक्रिया	"	"	अन्तर	"	"	"	"
१८. सिंहरव	"	पंचश्रुति	साधारण	"	"	पंचश्रुति	कैशिक
१९. कल्याणी	"	"	अन्तर	"	"	"	काकलो

पंडित व्यंकटमखी के जनक मेल तथा जन्य राग

'चतुर्दंडिप्रकाशिका' में पं० व्यंकटमखी के उन्नीस ठाठों से उत्पन्न हुए रागों की नामावली इस प्रकार है :—

जनक मेल	जन्य राग
१. मुखारी	१. मुखारी
२. सामवरालो	१. सामवराली
३. भूपाल	१. भूपाल, २. भिन्नषड्ज
४. वसन्तभैरवी	१. वसन्तभैरवी
५. गौल	१. गौल, २. गुंडक्रिया, ३. सालंगनाट, ४. नादरामक्रिया, ५. ललिता, ६. पाडी, ७. गुर्जरी, ८. बहुली, ९. मल्लहरी, १०. सावेरी, ११. छायागौल, १२. पूर्वगौल, १३. कर्णाटक, १४. बंगाल, १५. सौराष्ट्र
६. अहीरी	१. आभेरी, २. हिंडोलवसन्त,
७. भैरवी	१. भैरवी, २. हिंडोल, ३. अहीरी, ४. घंटारव, ५. रीतिगौल
८ श्रीराग	१. श्री, २. सालगभैरवी, ३. धन्यासी, ४. मालवश्री, ५. देवगान्धार, ६. आन्धाली, ७. बेलावली, ८. कन्नडगौल
९. हेजुज्जी	१. हेजुज्जी, २. रेवगुप्ति

१० काम्भोजी	१. काम्भोजी, २. केदारगौल, ३. नारायणगौल
११. शंकराभरण	१. शंकराभरण, २. आरभी, ३. रागध्वनि, ४. साम, ५. शुद्धवसन्त, ६. नारायणदेशाक्षी, ७. नारायणी
१२. सामन्त	१. सामन्त
१३. देशाक्षी	१. देशाक्षी
१४. नाट	१. नाट
१५. शुद्धवराली	१. वराली
१६. पन्तुवराली	१. पन्तुवराली
१७. शुद्धरामक्रिया	१. शुद्धरामक्रिया
१८. सिंहरव	१. सिंहरव
१९. कल्याणी	१. कल्याणी

इस प्रकार उन्नीस मेलों से पचपन जन्य राग बताए गए हैं।

'रागलक्षणम्' के बहत्तर कर्नाटकी मेल

पं० व्यंकटमखी के बाद कर्नाटकी संगीत की एक पुस्तक 'रागलक्षणम्' और लिखी गई। उसके लेखक ने भी बहत्तर ठाठ मानकर उनमें लगभग पाँचसौ जन्य रागों की उत्पत्ति बताई है। इस ग्रन्थ के अनुसार, आजकल कर्नाटकी संगीत-पद्धति में बहत्तर ठाठ प्रचलित हैं। इसे वे अपना आधार-ग्रन्थ मानते हैं।

'रागलक्षणम्' के लेखक के स्वरों में और व्यंकटमखी के स्वर-नामों में कहीं-कहीं अन्तर पाया जाता है। नीचे की तालिका में हम अपने प्रचलित उत्तर-भारतीय संगीत-पद्धति के बारह स्वरों के साथ-साथ व्यंकटमखी और 'रागलक्षणम्' के स्वर दिखाते हैं:—

उत्तर-भारतीय स्वर	व्यंकटमखी के स्वर	'रागलक्षणम्' के स्वर
१. सा	सा	सा
२. रे (कोमल)	शुद्ध रि	शुद्ध रि
३. रे (शुद्ध)	पंचश्रुति रि या शुद्ध ग	चतुःश्रुति रि या शुद्ध ग

४. ग़ (कोमल)	षट्श्रुति रि या साधारण ग	षट्श्रुति रि या साधारण ग
५. ग (शुद्ध)	अन्तर ग	अन्तर ग
६. म (शुद्ध)	शुद्ध म	शुद्ध म
७. मं (तीव्र)	प्रति म या वराली म	प्रति म
८. प	प	प
९. ध़ (कोमल)	शुद्ध ध	शुद्ध ध
१०. ध (शुद्ध)	पंचश्रुति ध या शुद्ध नि	चतु:श्रुति ध या शुद्ध नि
११. नि़ (कोमल)	षट्श्रुति ध या कैशिक नि	षट्श्रुति ध या कैशिक नि
१२. नि (शुद्ध)	काकली नि	काकली नि

अब आगे की तालिका में 'रागलक्षणम्' ग्रन्थ के अनुसार ७२ मेल-नाम स्वर-सहित दिए जाते हैं। इसमें आरम्भ के ३६ मेल शुद्ध मध्यमवाले तथा उसके बाद के ३६ मेल प्रति-मध्यमवाले हैं।

'रागलक्षणम्'—(कर्नाटकी पद्धति) के ७२ ठाठ (मेल) और उनके स्वर

(शुद्ध मध्यमवाले ३६ मेल)

ठाठ (मेल) नाम	सा	रे	ग	म	प	ध	नि
१. कनकांगी	सा	शुद्ध	शुद्ध	शुद्ध	प	शुद्ध	शु.
२. रत्नांगी	"	"	"	"	"	"	कै.
३. गानमूर्ति	"	"	"	"	"	"	का.
४. वनस्पति	"	"	"	"	"	च.	कै.
५. मानवती	"	"	"	"	"	"	का.
६. तानरूपी	"	"	"	"	"	ष.	"
७. सेनावती	"	"	साधारण	"	"	शु.	शु.
८. हनुमत्तोड़ी	"	"	"	"	"	"	कै.

६. धेनुका	सा	शुद्ध	साधारण	शुद्ध	प	शुद्ध	काकली
१०. नाटकप्रिय	"	"	"	"	"	च.	कै.
११. कोकिलप्रिय	"	"	"	"	"	"	काकली
१२. रूपवती	"	"	"	"	"	ष.	"
१३. गायकप्रिय	"	"	"	"	"	शु.	शुद्ध
१४. बकुलाभरण	"	"	"	"	"	"	कैशिक
१५. मायामालवगौल	"	"	"	"	"	"	काकली
१६. चक्रवाल	"	"	"	"	"	च.	कैशिक
१७. सूर्यकान्त	"	"	"	"	"	"	काकली
१८. हाटकाम्बरी	"	"	"	"	"	ष.	"
१९. झंकारध्वनि	"	च.	"	"	"	शु.	शुद्ध
२०. नटभैरवी	"	"	"	"	"	"	कैशिक
२१. कीरवाणी	"	शुद्ध	"	"	"	शुद्ध	काकली
२२. खरहरप्रिय	"	"	"	"	"	च.	कैशिक
२३. गौरीमनोहरी	"	"	"	"	"	"	काकली
२४. वरुणप्रिय	"	"	"	"	"	ष.	"
२५. मानरंजनी	"	"	अन्तर	"	"	शुद्ध	शुद्ध
२६. चारुकेशी	"	"	"	"	"	"	कैशिक
२७. सांगी	"	"	"	"	"	"	काकली
२८. हरिकाम्भोजी	"	"	"	"	"	च.	कैशिक
२९. धीरशंकराभरण	"	"	"	"	"	"	काकली
३०. नागानन्दिनी	"	"	"	"	"	ष.	"
३१. यागप्रिया	"	ष. श्रु.	"	"	"	शुद्ध	शुद्ध
३२. रागवर्धिनी	"	"	"	"	"	"	कैशिक

३३. गांगेयभूषणा	सा	ष.श्रु.	अन्तर	शुद्ध	प	शु.	का.
३४. वागधीश्वरी	"	"	"	"	"	च.	कै.
३५. शूलिनी	"	"	"	"	"	"	का.
३६. बलनाट	"	"	"	"	"	ष.	"

प्रति मध्यमवाले छत्तीस मेल

३७. सालग	सा	शुद्ध	शुद्ध	प्रति	प	शुद्ध	शु.
३८. जलार्णव	"	"	"	"	"	"	कै.
३९. झालवराली	"	"	"	"	"	"	का.
४०. नवनीत	"	"	"	"	"	च.	कै.
४१. पावनी	"	"	"	"	"	"	का.
४२. रघुप्रिय	"	"	"	"	"	ष.	"
४३. गवाम्बोधी	"	"	साधारण	"	"	शु.	शु.
४४. भवप्रिय	"	"	"	"	"	"	कै.
४५. शुभपन्तुवराली	"	"	"	"	"	"	का.
४६. षड्विधमार्गिणी	"	"	"	"	"	च.	कै.
४७. सुवर्णांगी	"	"	"	"	"	"	का.
४८. दिव्यमणि	"	"	"	"	"	ष.	"
४९. धवलाम्बरी	"	"	अन्तर	"	"	शु.	शु.
५०. नामनारायणी	"	"	"	"	"	"	कै.
५१. कामवर्धनी	"	"	"	"	"	"	का.
५२. रामप्रिय	"	"	"	"	"	च.	कै.
५३. गमनश्रिय	"	"	"	"	"	"	का.
५४. विश्वम्भरी	"	"	"	"	"	ष.	"
५५. श्यामलांगी	च.	"	साधारण	"	"	शु.	शु.

५६. षण्मुखप्रिय	च.	शु.	साधारण	प्रति.	शु.	शु.	कै.
५७. सिंहेन्द्रमध्यम	"	"	"	"	"	"	का.
५८. हेमवती	"	"	"	"	"	च.	कै.
५९. धर्मवती	"	"	"	"	"	"	का.
६०. नीतिमणी	"	"	"	"	"	ष.	"
६१. कान्ताणी	"	"	अन्तर	"	"	शु	शु.
६२. ऋषभप्रिय	"	"	"	"	"	"	कै.
६३. लतांगी	"	"	"	"	"	"	का.
६४. वाचस्पति	"	"	"	"	"	च.	कै
६५. मेचकल्याणी	"	"	"	"	"	"	का.
६६. चित्राम्बरी	"	"	"	"	"	ष.	"
६७. सुचरित्र	"	"	"	"	"	शु.	शु.
६८. ज्योतिःस्वरूपिणी	"	"	"	"	"	"	कै.
६९. धातुर्वर्धिनी	"	"	"	,	"	"	का
७०. नासिका	"	"	"	"	"	च.	कै.
७१. कोसल	"	"	"	"	"	"	का.
७२. रसिकप्रिया	"	"	"	"	"	ष.	"

इन बहत्तर ठाठों से लगभग ५०० रागों की उत्पत्ति भी बताई गई है। उपर्युक्त तालिका में स्वरों के संक्षिप्त संकेत इस प्रकार समझिए :—

शु : शुद्ध

ष : षट्श्रुतिक

च : चतुःश्रुतिक

कै : कैशिक निषाद

साधारण : साधारणगान्धार

अन्तर : अन्तर-गन्धार

प्रति : प्रति-मध्यम

'रागलक्षणम्' के बहत्तर ठाठों की जो तालिका ऊपर दी गई है, उसमें अपने

उत्तर भारतीय संगीत-पद्धति के दस ठाठ भी मिलते हैं। उनके नाम और नम्बर इस प्रकार हैं:—

उत्तर भारतीय पद्धति के दस ठाठ	दक्षिण भारतीय पद्धति के मेल तथा नम्बर	
१. कल्याण	मेचकल्याणी	६५
२. बिलावल	धीरशंकराभरण	२९
३. खमाज	हरिकाम्भोजी	२८
४. भैरव	मायामालवगौल	१५
५. पूर्वी	कामवर्धिनी	५१
६. मारवा	गमनश्रिय	५३
७. काफी	खरहरप्रिय	२२
८. आसावरी	नटभैरवी	२०
९. भैरवी	हनुमत्तोड़ी	८
१०. तोड़ी	शुभपन्तुवराली	४५

नाद्-स्थान, सप्तक, वर्ण, अलंकार, राग और ग्राम

नाद्-स्थान

नाद अर्थात् आवाज की उँचाई और निचाई के आधार पर उसके मन्द्र, मध्य और तार, ये तीन भेद माने जाते हैं। इनको 'नाद-स्थान' (Voice Register) कहते हैं। इन तीन नाद-स्थानों में एक-एक सप्तक मानकर क्रमश: मन्द्र-सप्तक, मध्य-सप्तक और तार-सप्तक कहलाते हैं। इस प्रकार तीन सप्तक होते हैं; यथा :—

प्रथमं सप्तकं मन्द्रं द्वितीयं मध्यमं स्मृतम् ।
तृतीयं तारसंज्ञं स्यादेवं स्थानत्रयं मतम् ॥

—अभिनव राग-मंजरी

अर्थात्—पहले सप्तक को मन्द्र, दूसरे को मध्य और तीसरे को तार-सप्तक कहते हैं। इस प्रकार तीन सप्तक माने गए हैं।

सप्तक

'सप्तक' का अर्थ है 'सात'। क्योंकि एक स्थान पर सात शुद्ध स्वर निवास करते हैं, अत: इसका नाम 'सप्तक' हुआ।

ध्वनि की साधारण उचाई में जब मनुष्य बात करता है अथवा 'आ ऽ ऽ ऽ' इस प्रकार आलाप लेता है, तो उसे 'मध्य सप्तक' कहते हैं; किन्तु जब-कभी गाने-बजाने में नीचे को आवाज ले जाने की आवश्यकता होती है तो वहाँ 'मन्द्र-सप्तक' के स्वर काम देते हैं। और, जब मध्य-सप्तक से भी ऊँचा गाने की आवश्यकता पड़ती है, तब 'तार-सप्तक' के स्वर प्रयुक्त होते हैं।

मन्द्र-सप्तक के स्वरों को बोलने में हृदय पर, मध्य-सप्तक के स्वरों को बोलने में कंठ पर और तार-सप्तक के स्वरों को बोलने में तालू पर जोर लगाना पड़ता है।

मन्द्र-सप्तक : जिस सप्तक के स्वरों की आवाज सबसे नीची हो अथवा मध्य-सप्तक से आधी हो, उसे 'मन्द्र-सप्तक' कहते हैं। भातखंडे-पद्धति में इसके स्वरों की पहचान यह है :—

सा़ रे़ ग़ म़ प़ ध़ नि़ (मन्द्र-सप्तक)

मध्य-सप्तक : मन्द्र-सप्तक से दुगुनी आवाज होने पर 'मध्य-सप्तक' कहलाता है। 'मध्य' का अर्थ है 'बीच', अर्थात् न अधिक नीचा, न अधिक ऊँचा। इसके स्वरों पर कोई चिह्न नहीं होता:—

सा रे ग म प ध नि (मध्य-सप्तक)

तार-सप्तक : मध्य-सप्तक से दुगुनी ऊँची आवाज होने पर 'तार-सप्तक' कहलाता है। इसे 'उच्च सप्तक' भी कहते हैं। इसकी पहचान के लिए स्वरों के ऊपर एक विन्दु लगा दिया जाता है; जैसे :—

सां रें गं मं पं धं निं (तार-सप्तक)

ज्ञातव्य : यद्यपि एक सप्तक में सात स्वर कहे गए हैं, किन्तु पिछले पृष्ठों में बताया जा चुका है कि कोमल-तीव्र रूप करके स्वरों की संख्या एक सप्तक में बारह हो जाती है। बारह-बारह स्वरों के इस प्रकार तीन सप्तक होते हैं :—

सा़ रे़ रे़ ग़ ग़ म़ म़॑ प़ ध़ ध़ नि़ नि़ मन्द्र-सप्तक

सा रे रे ग ग म म॑ प ध ध नि नि मध्य-सप्तक

सां रें रें गं गं मं म॑ं पं धं धं निं निं तार-सप्तक

वर्ण

गान क्रियोच्यते वर्णः स चतुर्धा निरूपितः।
स्थाय्यारोह्यवरोही च संचारीत्यथ लक्षणम् ॥

—अभिनव राग-मंजरी

अर्थात् गाने की जो क्रिया है, उसे 'वर्ण' कहते हैं। वर्ण चार प्रकार के होते हैं, जिन्हें क्रमशः १. स्थायी, २. आरोही, ३. अवरोही और ४. संचारी वर्ण कहते हैं।

स्थायी वर्ण—एक ही स्वर बार-बार ठहर-ठहरकर बोलने या गाने की क्रिया को स्थायी वर्ण कहते हैं; जैसे—सा सा सा सा, रे रे रे रे अथवा ग ग ग ग। स्थायी का अर्थ है—'ठहरा हुआ'।

आरोही वर्ण—नीचे स्वर से ऊँचे स्वर तक चढ़ने या गाने की क्रिया को अवरोही वर्ण कहते हैं; जैसे हमें षड्ज से आगे स्वर बोलने हैं, तो 'सा रे ग म प ध नि', यह आरोही वर्ण हुआ।

अवरोही वर्ण—ऊँचे स्वर से नीचे स्वरों पर आने या गाने की क्रिया को अवरोही वर्ण कहते हैं; जैसे षड्ज स्वर से नीचे के स्वर बोलने हैं, तो 'सां नि ध प म ग रे सा', यह अवरोही वर्ण हुआ।

संचारी वर्ण—स्थायी, आरोही और अवरोही—इन तीनों वर्णों के संयोग मिलावट से जब स्वरों की उलट-पलट की जाती है, अर्थात् जब तीनों वर्ण मिलकर अपना रूप दिखाते हैं, तब इस क्रिया को संचारी वर्ण कहते हैं।

ज्ञातव्य : गाते-बजाते समय उपर्युक्त चारों वर्ण काम में लाए जाते हैं। किसी भी गायन में उपर्युक्त चारों वर्ण अवश्य ही मिलेंगे, क्योंकि इनके बिना गान-क्रिया चल नहीं सकती।

अलंकार

प्राचीन ग्रन्थकार 'अलंकार' की परिभाषा इस प्रकार करते हैं :—

विशिष्टवर्णसन्दर्भमलंकारं प्रचक्षते ।

अर्थात्—कुछ नियमित वर्ण-समुदायों को 'अलंकार' कहते हैं।

'अलंकार' का अर्थ है 'आभूषण' या 'गहना'। जिस प्रकार आभूषण शारीरिक शोभा बढ़ाते हैं, उसी प्रकार अलंकारों के द्वारा गायन की शोभा बढ़ जाती है। 'अभिनव राग-मंजरी' में लिखा है :—

शशिना रहितेव निशा विजलेव नदी लता विपुष्पेव ।
अविभूषिते कान्ता गीतिरलंकारहीना स्यात् ॥

अर्थात्—जैसे चन्द्रमा के बिना रात्रि, जल के बिना नदी, फूलों के बिना लता एवं आभूषणों के बिना स्त्री शोभा नहीं देती, उसी प्रकार अलंकार-बिना गीत भी शोभा को प्राप्त नहीं होते।

अलंकार को 'पलटा' भी कहते हैं। गायन सीखने से पहले विद्यार्थियों को अलंकार सिखाए जाते हैं, क्योंकि इनके बिना न तो अच्छा स्वर-ज्ञान ही होता है और न उन्हें आगे संगीत-कला में सफलता ही मिलती है। अलंकारों से राग-विस्तार में भी काफी सहायता मिलती है। अलंकारों के द्वारा राग की सजावट करके उसमें चार चाँद लगाए जा सकते हैं। तान इत्यादि भी अलंकारों के आधार पर ही बनती हैं; जैसे 'सारे गरे गम गम पऽ। रेग रेग मप मप धऽ' इत्यादि।

अलंकार वर्ण-समुदायों में ही होते हैं। उदाहरण के लिए एक वर्ण-समुदाय को लीजिए, 'सा रे ग सा'। इसमें आरोही और अवरोही, दोनों वर्ण आ गए हैं। यह एक सीढ़ी मान लीजिए। अब इसी आधार पर आगे बढ़िए और पिछला स्वर छोड़कर आगे का स्वर बढ़ाते जाइए, रे ग म रे—यह दूसरी सीढ़ी हुई; ग म प ग—यह तीसरी सीढ़ी हुई। इसी प्रकार बहुत-से अलंकार तैयार किए जा सकते हैं। शुद्ध स्वरों के अलावा कोमल, तीव्र स्वरों के अलंकार भी तैयार किए जा सकते हैं, किन्तु उनमें यह ध्यान रखना आवश्यक होता है कि जिस राग में जो स्वर लगते हैं, वे ही स्वर उस राग के अलंकारों में लिए जाएँ।

राग

योऽयं ध्वनिविशेषस्तु स्वरवर्णविभूषितः ।
रंजको जनचित्तानां स रागः कथितो बुधैः ॥

—अभिनव राग-मंजरी

अर्थात्—ध्वनि की उस विशिष्ट रचना को, जिसमें स्वर तथा वर्णों के कारण सौन्दर्य हो, जो मनुष्य के चित्त का रंजन करे, अर्थात् जो श्रोताओं के मन को प्रसन्न करे, बुद्धिमान् लोग 'राग' कहते हैं।

राग में निम्नलिखित बातों का होना जरूरी है :—

(१) राग किसी ठाठ से उत्पन्न होना चाहिए।
(२) ध्वनि (आवाज) की एक विशेष रचना हो।
(३) उसमें स्वर तथा वर्ण हों।
(४) रंजकता यानी सुन्दरता हो।
(५) राग में कम-से-कम पाँच स्वर अवश्य होने चाहिए।

(६) राग में एक ही स्वर के दो रूप पास-पास लेने का शास्त्रकारों ने निषेध किया है; जैसे 'ग॒' 'ग' या 'म' 'मं' इत्यादि।*

(७) राग में आरोह तथा अवरोह का होना आवश्यक है; क्योंकि इनके बिना राग का रूप पहचाना नहीं जा सकता।

(८) किसी भी राग में षड्ज (सा) स्वर वर्जित नहीं होता।

(९) मध्यम और पंचम, ये दो स्वर एक साथ तथा एक ही समय कभी भी वर्जित नहीं होते।

(१०) राग में वादी-संवादी स्वर अवश्य रहते हैं। इन स्वरों पर ही विशेष जोर रहता है।

रागों की जाति

पहले यह बताया जा चुका है कि ठाठ के स्वरों में से ही राग तैयार होते हैं, और यह भी बताया गया था कि ठाठ में सात स्वर होने जरूरी हैं; किन्तु राग में यह जरूरी नहीं कि सात ही स्वर हों। अत: किसी ठाठ के सात स्वरों में से पाँच, छह या सात स्वरों को लेकर जब कोई राग तैयार किया जाता है, तो जितने स्वर उस ठाठ में से लिए जाते हैं, उन्हीं के आधार पर उसकी जाति निश्चित की जाती है।

इस प्रकार स्वरों की संख्या के अनुसार रागों के तीन जातियाँ मानी गई हैं, जिन्हें औडुव, षाडव और सम्पूर्ण कहते हैं :—

औडुव-राग—जब किसी ठाठ में से कोई दो स्वर घटाकर (वर्जित करके) कोई राग उत्पन्न होता है, अर्थात् जब किसी राग में पाँच स्वर लगते हैं, तो उसे 'औडुव राग' कहते हैं; जैसे भूपाली, मालकोश इत्यादि। ध्यान रहे कि 'स।' स्वर कभी भी वर्जित नहीं किया जाता।

षाडव राग—किसी ठाठ में से केवल एक स्वर वर्जित करके जब कोई राग उत्पन्न होता है, अर्थात् जब किसी राग में छह स्वर प्रयुक्त होते हैं, तो उसे 'षाडव राग' कहते हैं; जैसे मारवा, पूरिया इत्यादि।

---

* नियम सं० ६ के विरुद्ध कुछ राग ऐसे भी हैं, जिनमें एक ही स्वर के दो रूप पास-पास आ जाते हैं; जैसे ललित, बिहाग, केदार इत्यादि। किन्तु इन्हें इस नियम के अपवाद-स्वरूप ही समझना चाहिए।

सम्पूर्ण राग—ठाठ से कोई भी स्वर न घटाकर सातों स्वर जिस राग में लगते हैं, उसे 'सम्पूर्ण राग' कहते हैं; जैसे यमन, बिलावल, भैरव और भैरवी इत्यादि। ऊपर बताई हुई तीन जातियों के रागों के आरोह तथा अवरोह में क्रमशः पाँच-छह स्वर हैं; लेकिन कुछ राग ऐसे भी हैं, जिनके आरोह में छह तथा अवरोह में पाँच स्वर लगते हैं अथवा आरोह में सात और अवरोह में पाँच स्वर लगते हैं। ऐसे रागों को पहचानने के लिए ग्रन्थकारों ने उपर्युक्त तीन जातियों में से हरएक जाति की तीन-तीन उपजातियाँ और बना दी हैं। इस प्रकार नौ प्रकार की जातियाँ बनीं :—
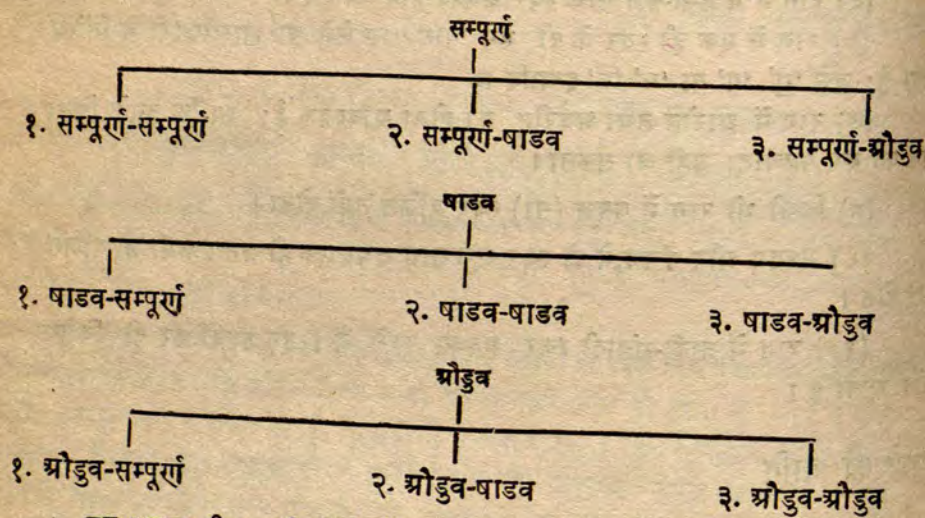
इस प्रकार तीन जातियों से नौ उपजातियों की उत्पत्ति हुई। अब इनका पूर्ण विवरण देखिए :—

सम्पूर्ण-सम्पूर्ण—जिस राग के आरोह में सात स्वर हों और अवरोह में भी सात स्वर हों, उसे सम्पूर्ण-सम्पूर्ण जाति का राग कहेंगे।

सम्पूर्ण-षाडव—जिस राग के आरोह में सात स्वर और अवरोह में छह स्वर लगते हों, उसे सम्पूर्ण-षाडव जाति का राग कहेंगे।

सम्पूर्ण-औडुव—जिसके आरोह में सात स्वर और अवरोह में पाँच स्वर हों।

षाडव सम्पूर्ण—जिसके आरोह में छह स्वर और अवरोह में सात स्वर हों।

षाडव-षाडव—जिसके आरोह में भी छह स्वर हों तथा अवरोह में भी छह स्वर हों।

षाडव-औडुव—जिसके आरोह में छह स्वर और अवरोह में पाँच स्वर हों।

औडुव-सम्पूर्ण—जिसके आरोह में पाँच स्वर और अवरोह में सात स्वर हों।

औडुव-षाडव—जिसके आरोह में पाँच स्वर और अवरोह में छह स्वर हों।

औडुव-औडुव—जिसके आरोह में भी पाँच स्वर हों तथा अवरोह में भी पाँच स्वर लगते हों।

रागों की इन जातियों से राग-संख्या मालूम हो जाती है। देखिए, उपर्युक्त नौ जातियों से किस प्रकार किसी एक ठाठ द्वारा ४८४ राग तैयार हुए।

सम्पूर्ण-सम्पूर्ण—इससे केवल एक राग ही बन सका, क्योंकि आरोह में भी सात स्वर हैं और अवरोह में भी सात स्वर हैं।

सम्पूर्ण-षाडव—इस जाति के छह राग बन सकते हैं, क्योंकि आरोह तो सम्पूर्ण रखते जाइए और अवरोह में प्रत्येक बार एक स्वर बदलकर छोड़ते जाइए।

सम्पूर्ण-औड़ुव—इसके आरोह में सात स्वर रखते जाइए और अवरोह में दो स्वर (बदल-बदलकर) छोड़ते जाइए, तो इससे पन्द्रह राग बने।

षाडव-सम्पूर्ण—आरोह में छह स्वर होने के कारण, छह बार एक-एक स्वर बदलकर छोड़ने से इसके भी छह राग बने।

षाडव-षाडव—इसके आरोह में छह बार एक-एक स्वर बदलकर रखा, तो छह टुकड़े हुए। इसी प्रकार अवरोह में भी ऐसा ही किया, तो ६×६=३६ राग इस जाति से बने।

षाडव-औड़ुव—इस जाति के नब्बे राग हो सकते हैं; क्योंकि आरोह में एक स्वर छोड़ने से छह और अवरोह में दो-दो स्वर छोड़ने से पन्द्रह अर्थात् १५×६=९० राग बने।

औड़ुव-सम्पूर्ण—आरोह में दो स्वर छोड़ने से पन्द्रह प्रकार बने और अवरोह तो इसका सम्पूर्ण है, अतः इस जाति से पन्द्रह राग पैदा हुए।

औड़ुव-षाडव—क्योंकि इसके आरोह में प्रतिबार कोई-से दो स्वर छोड़ने पड़े, तो पन्द्रह प्रकार बने और अवरोह में एक स्वर प्रतिबार छोड़ना पड़ा, तो छह प्रकार बने, इसलिए १५×६=९० राग इस जाति से उत्पन्न हुए।

औड़ुव-औड़ुव—इस जाति के सबसे अधिक अर्थात् दोसौ-पच्चीस राग हो सकते हैं, क्योंकि आरोह में प्रतिबार दो स्वर छोड़ने से पन्द्रह प्रकार बने और अवरोह में भी ऐसे ही दो स्वर छोड़ने से पन्द्रह प्रकार बने, तो १५×१५=२२५ राग तैयार हुए।

इस प्रकार एक ठाठ की नौ जातियों से चारसौ-चौरासी राग बने, जो निम्न-लिखित नक्शे द्वारा स्पष्ट किए जाते हैं:—

सं०	जाति	आरोह के स्वर	अवरोह के स्वर	राग तैयार हो सकते हैं।
१	सम्पूर्ण-सम्पूर्ण	७	७	१
२	सम्पूर्ण-षाडव	७	६	६
३	सम्पूर्ण-औड़ुव	७	५	१५
४	षाडव-सम्पूर्ण	६	७	६
५	षाडव-षाडव	६	६	३६

६	षाडव-औडुव	६	५	९०
७	औडुव-सम्पूर्ण	५	७	१५
८	औडुव-षाडव	५	६	९०
९	औडुव-औडुव	५	५	२२५

एक ठाठ की नौ जातियों से उत्पन्न रागों का कुल जोड़=४८४

जब एक ठाठ से चारसौ चौरासी राग तैयार हो सकते हैं, तो उत्तरी संगीत-पद्धति के दस ठाठों से ४८४×१०=४८४० राग बने और दक्षिणी संगीत-पद्धति के बहत्तर ठाठों से ४८४×७२=३४८४८ राग तैयार हो सकते हैं। इनके अतिरिक्त कुछ और भी राग केवल वादी स्वर को बदल देने से उत्पन्न हो सकते हैं। इस प्रकार यद्यपि रागों की संख्या और भी अधिक बढ़ सकती है, किन्तु प्रचार में दोसौ रागों से अधिक दिखाई नहीं देते; क्योंकि राग में रंजकता होनी आवश्यक है, इस बन्धन के कारण राग-संख्या मर्यादित-सी हो जाती है।

ग्राम

जब सप्तक में श्रुतियों का एक व्यवस्थित क्रम रखा जाता है, तो उसे 'ग्राम' कहते हैं। उदाहरण के लिए जब हम कहते हैं कि प्राचीन अथवा मध्यकालीन संगीत-विद्वानों के सप्तक में श्रुतियों का क्रम ४-३४-२-४-३-२ था, तो हमें समझना चाहिए कि यही एक ग्राम हुआ। ज्यों ही हमने इस क्रम में कोई परिवर्तन किया कि हमारा ग्राम बदल गया। उदाहरण के लिए यदि हम इसे ४-३-२-४-३-४-२ कर दें, तो अब यह हमारा ऊपर का ग्राम न रहकर कोई अन्य ग्राम बन गया। अतः सप्तक में श्रुतियों के व्यवस्थित क्रम को ही ग्राम कहते हैं।

अथ ग्रामास्त्रयः प्रोक्ताः स्वरसन्दोहरूपिणः।
षड्जमध्यमगान्धारसंज्ञाभिस्ते समन्विताः ॥९७॥

—संगीत-पारिजात

ग्राम के सम्बन्ध में अहोबल पंडित उक्त श्लोक में बताते हैं कि स्वरों का एक समूह ही 'ग्राम' कहलाता है। ग्राम तीन होते हैं, जिन्हें षड्ज, मध्यम तथा गान्धार, इन नामों से घोषित करते हैं।

दामोदर पंडित 'संगीत-दर्पण' में लिखते हैं:—

ग्रामः स्वरसमूहः स्यात्मूर्च्छनादेः समाश्रयः।
तौ द्वौ धरातले तत्र स्यात् षड्जग्राम आदिमः ॥७५॥
द्वितीयौ मध्यमग्रामस्तयोर्लक्षणमुच्यते ॥७६॥

अर्थात् 'ग्राम' स्वरों का समुदाय है। ग्राम का आधार मूर्च्छना है। इस लोक में ग्राम दो हैं। उनमें से पहला षड्ज-ग्राम और दूसरा मध्यम-ग्राम है।

इस प्रकार संस्कृत-ग्रन्थों में ग्रामों की परिभाषा देखने में आती है। श्री भातखंडे का कहना है कि प्राचीन ग्राम-रचना प्राचीन संगीत में उत्तम रूप से उपयुक्त थी, परन्तु इस समय हमारे संगीत में वैसी नहीं है। फिर भी संगीत के विद्यार्थियों को ग्राम के विषय में जानकारी तो रखनी ही चाहिए।

ऊपर दिए 'संगीत-पारिजात' के श्लोक के अनुसार ग्राम तीन प्रकार के हुए—१. षड्ज-ग्राम, २. मध्यम-ग्राम, ३. गान्धार-ग्राम।

गान्धार-ग्राम के बारे में यह बताया जाता है कि यह किसी प्रकार धरातल से हटकर देवलोक पहुँच गया। यह वास्तव में निषाद-ग्राम था, क्योंकि इसका आरम्भ निषाद स्वर से होता था। किन्तु गन्धर्वों द्वारा इसका प्रयोग होने के कारण इसका नाम गन्धर्व-ग्राम हुआ; फिर आगे चलकर इसका अपभ्रंश रूप गान्धार-ग्राम हो गया।

इस प्रकार सात स्वरों में जो श्रुतियाँ हैं, उनके समूह को 'ग्राम' कहते हैं। स्वरों पर श्रुतियों के बाँटने के सिद्धान्त (चतुश्चतुश्चतुश्चैव····) के अनुसार ४, ७, ९, १३, १७, २० एवं २२-वीं श्रुतियों पर क्रमशः 'सा, रे, ग, म, प, ध, नि' स्वरों को स्थापित करने पर जो ग्राम बनता है, उसे षड्ज-ग्राम कहेंगे। यदि इस श्रुत्यन्तर में तनिक भी फर्क पड़ेगा, तो वह षड्ज-ग्राम नहीं माना जाएगा। मध्यम-ग्राम बनाने के लिए पंचम स्वर को सत्रहवीं श्रुति से हटाकर सोलहवीं श्रुति पर लाया जाएगा। मध्यम-ग्राम के स्वरों की स्थिति इस प्रकार होगी :—

४ -	७ -	९ -	१३ -	१६ -	२० -	२२
सा	रे	ग	म	प	ध	नि

यह हो गया मध्यम-ग्राम। अब गान्धार-ग्राम बनाने के लिए ऋषभ स्वर को एक श्रुति नीचे उतारकर छठी श्रुति पर, गान्धार को एक श्रुति ऊपर चढ़ाकर दसवीं श्रुति पर, धैवत को एक श्रुति नीचे उतारकर उन्नीसवीं श्रुति पर और निषाद को एक श्रुति ऊपर चढ़ाकर पहली श्रुति पर स्थित करना होगा। गान्धार-ग्राम के स्वरों को स्थिति इस प्रकार होगी :—

४ -	६ -	१० -	१३ -	१६ -	१९ -	१
सा	रे	ग	म	प	ध	नि

जिस प्रकार भिन्न-भिन्न गाँवों में भिन्न-भिन्न प्रकार के मनुष्य रहते हैं, उसी प्रकार संगीत के भिन्न-भिन्न 'ग्रामों' में भिन्न-भिन्न प्रकार के अन्तर (फ़ासले) पर स्वर रहते हैं। अतः स्वरों को भिन्न-भिन्न प्रकार से श्रुतियों पर स्थित करने के लिए ही प्राचीन काल में 'ग्राम' की उत्पत्ति हुई। अगले पृष्ठ पर दो हुई तालिका में प्राचीन ग्रन्थ के आधार पर तीनों ग्रामों को बाईस श्रुतियों पर एकसाथ दिखाया गया है।

प्राचीन ग्रन्थों में बाईस श्रुतियों पर तीन ग्राम

श्रुति सं०	श्रुति-नाम	षड्ज-ग्राम	मध्यम-ग्राम	गान्धार-ग्राम
१	तीव्रा	....	....	....
२	कुमुद्वती	....	....	....
३	मन्दा	....	....	....
४	छन्दोवती	षड्ज	षड्ज	षड्ज
५	दयावती	....	....	....
६	रंजनी	....	....	ऋषभ
७	रक्तिका	ऋषभ	ऋषभ	...
८	रौद्री	....	....	....
९	क्रोधा	गान्धार	गान्धार	....
१०	वज्रिका	....	....	गान्धार
११	प्रसारिणी	....	....	....
१२	प्रीति	....	....	....
१३	मार्जनी	मध्यम	मध्यम	मध्यम
१४	क्षिति	....	....	....
१५	रक्ता	....	....	....
१६	सन्दीपनी	...	पंचम	पंचम
१७	आलापिनी	पंचम	....	....
१८	मदन्ती	....	....	....
१९	रोहिणी	....	....	धैवत
२०	रम्या	धैवत	धैवत	...
२१	उग्रा	....	....	....
२२	क्षोभिणी	निषाद	निषाद	....
१	तीव्रा			निषाद

यद्यपि प्राचीन ग्रन्थों में भिन्न-भिन्न प्रकार से श्रुतियों पर ग्राम दिखाए गए हैं, किन्तु बहुमत इसी पक्ष में है, जैसा कि उपर्यंकित कोष्ठक में दिखाया गया है। उक्त कोष्ठक को देखने पर विदित होगा कि मध्यम-ग्राम के स्वरान्तर अधिकांश रूप में षड्ज-ग्राम के ही अनुसार हैं, केवल पंचम को एक श्रुति नीचे माना गया है। गान्धार-ग्राम में ऋषभ तथा धैवत स्वर उपर्युक्त दोनों ग्रामों के ऋषभ-धैवत स्वरों से एक-एक श्रुति नीचे माने गए हैं और गान्धार-निषाद स्वर एक-एक श्रुति ऊँचे माने गए हैं।

ऐसा प्रतीत होता है कि हमारे प्राचीन ग्रन्थकार इस प्रकार ग्राम-योजना से अपने विकृत स्वर कायम करके भिन्न-भिन्न मेल बनाते होंगे। किन्तु ग्राम-रचना का यह ढंग आज की बारह स्वरों की प्रणाली पर लागू नहीं होता, इसलिए वर्तमान संगीतज्ञ उपर्युक्त प्राचीन ग्राम-योजना को आधुनिक संगीत के लिए निरर्थक ही समझते हैं।

संगीत के कुछ आधुनिक ग्रन्थों में तीन ग्रामों का कोष्ठक वर्तमान बारह स्वरों के हिसाब से इस प्रकार दिया है :—

आधुनिक ग्राम-चक्र

१	३	५	६	८	१०	१२				
सा	रे	ग	म	प	ध	नि	षड्ज-ग्राम			
		सा	रे	ग	म	प	ध	नि	गान्धार-ग्राम	
			सा	रे	ग	म	प	ध	नि	मध्यम-ग्राम

स्वरों के ऊपर जो नम्बर दिए हैं, वे हारमोनियम के परदों के नम्बर मान लिए जाएँ, तो इस ग्राम-चक्र से हमारे शुद्ध और विकृत बारह स्वर आसानी से निकल आते हैं; क्योंकि हारमोनियम बाजे की जिस चाभी या परदे पर षड्ज स्वर माना जाता है, उससे तीसरे पर शुद्ध 'रे' पाँचवें पर शुद्ध 'ग', छठे पर शुद्ध 'म', आठवें पर 'प', दसवें पर शुद्ध 'ध' और बारहवें पर शुद्ध 'नि' होते हैं। इस प्रकार इन सात शुद्ध स्वरों का 'षड्ज-ग्राम' हो गया। इसे हम अपना शुद्ध बिलावल ठाठ भी कह सकते हैं। इसके बाद हमने षड्ज-ग्राम के पाँच नम्बर के शुद्ध 'ग' को 'सा' मानकर स्वर खींचे, तो हमें भैरवी ठाठ के सभी कोमल स्वर मिल गए। क्योंकि गान्धार स्वर को 'सा' मानकर हमने स्वर खींचे थे, अतः यह 'गान्धार-ग्राम' हुआ। इसके पश्चात् हमने षड्ज-ग्राम के छह नम्बर के 'म' स्वर को 'सा' मानकर स्वर खींचे, तो इस सप्तक में हमें तीव्र मध्यम मिल गया; क्योंकि षड्ज-ग्राम के पंचम पर ऋषभ बोला, धैवत पर शुद्ध गान्धार और निषाद पर तीव्र मध्यम। इस प्रकार यह 'मध्यम-ग्राम' हुआ और इससे हमें कल्याण ठाठ के स्वर प्राप्त हो गए।

ग्रामों का यह विवेचन आधुनिक 'स्केल-चेंज' की दृष्टि से उपयोगी सिद्ध हो सकता है, किन्तु यदि बारीकी से देखा जाए और स्वरों के आन्दोलनों का हिसाब लगाकर स्वरान्तरों की जाँच की जाए, तो यह विवेचन गणित की कसौटी पर ठीक नहीं उतरेगा। फिर भी हारमोनियम पर उपर्युक्त नियम से तीन ग्रामों के द्वारा शुद्ध-विकृत बारह स्वर निकालने का यह ढंग सरल और सुबोध है।

मूर्च्छना

क्रमात्स्वराणां सप्तानामारोहश्चावरोहणम् ।
मूर्च्छनेत्युच्यते ग्रामत्रये ताः सप्तसप्त च ॥६२॥

अर्थात्—सात स्वरों का क्रम से आरोह तथा अवरोह करना 'मूर्च्छना' कहलाता है। तीन ग्राम हैं, जिनमें से प्रत्येक की सात-सात मूर्च्छनाएँ हैं।

तत्र मध्यस्थषड्जेन षड्जग्रामस्य मूर्च्छना ।
प्रथमारभ्यतेऽन्यास्तु निषादाद्यैरधस्तनैः ॥६४॥

—संगीत-दर्पण

अर्थात्—मध्य-स्थान के षड्ज स्वर से षड्ज-ग्राम की पहली मूर्च्छना आरम्भ होती है। शेष छः मूर्च्छनाएँ स्वर (षड्ज) के नीचे के निषादादि स्वरों से शुरू होती हैं।

इस प्रकार तीन ग्रामों से इक्कीस मूर्च्छनाएँ प्राचीन शास्त्रकार बताते हैं। नीचे उनके नाम और स्वर दिए जाते हैं:—

षड्ज-ग्राम की मूर्च्छनाएँ

सं०	मूर्च्छना-नाम	आरोह	अवरोह
१	उत्तरमन्द्रा	सा रे ग म प ध नि	नि ध प म ग रे सा
२	रजनी	नि़ सा रे ग म प ध	ध प म ग रे सा नि़
३	उत्तरायता	ध़ नि़ सा रे ग म प	प म ग रे सा नि़ ध़
४	शुद्धषड्जा	प़ ध़ नि़ सा रे ग म	म ग रे सा नि़ ध़ प़
५	मत्सरीकृता	म़ प़ ध़ नि़ सा रे ग	ग रे सा नि़ ध़ प़ म़
६	अश्वक्रान्ता	ग़ म़ प़ ध़ नि़ सा रे	रे सा नि़ ध़ प़ म़ ग़
७	अभिरुद्गता	रे़ ग़ म़ प़ ध़ नि़ सा	सा नि़ ध़ प़ म़ ग़ रे़

मध्यम-ग्राम की मूर्च्छनाएँ

१	सौवीरी	म	प	ध	नि	सां	रें	गं	गं	रें	सां	नि	ध	प	म
२	हारिणाश्वा	ग	म	प	ध	नि	सां	रें	रें	सां	नि	ध	प	म	ग
३	कलोपनता	रे	ग	म	प	ध	नि	सां	सां	नि	ध	प	म	ग	रे
४	शुद्धमध्या	सा	रे	ग	म	प	ध	नि	नि	ध	प	म	ग	रे	सा
५	मार्गी	नि़	सा	रे	ग	म	प	ध	ध	प	म	ग	रे	सा	नि़
६	पौरवी	ध़	नि़	सा	रे	ग	म	प	प	म	ग	रे	सा	नि़	ध़
७	हृष्यका	प़	ध़	नि़	सा	रे	ग	म	म	ग	रे	सा	नि़	ध़	प़

गान्धार-ग्राम की मूर्च्छनाएँ

ज्ञातव्य : प्राचीन शास्त्रों में गान्धार को ही निषाद-ग्राम भी कहा है, अतः इस ग्राम की पहली मूर्च्छना निषाद स्वर से ही आरम्भ होती है :—

१	नन्दा	नि	सां	रें	गं	मं	पं	धं	धं	पं	मं	गं	रें	सां	नि
२	विशाला	ध	नि	सां	रें	गं	मं	पं	पं	मं	गं	रें	सां	नि	ध
३	सुमुखी	प	ध	नि	सां	रें	गं	मं	मं	गं	रें	सां	नि	ध	प
४	विचित्रा	म	प	ध	नि	सां	रें	गं	गं	रें	सां	नि	ध	प	म
५	रोहिणी	ग	म	प	ध	नि	सां	रें	रें	सां	नि	ध	प	म	ग
६	सुखा	रे	ग	म	प	ध	नि	सां	सां	नि	ध	प	म	ग	रे
७	आलापा	सा	रे	ग	म	प	ध	नि	नि	ध	प	म	ग	रे	सा

गान्धार-ग्राम की इन सात मूर्च्छनाओं के बारे में दर्पणकार कहता है :—

ताश्च स्वर्गे प्रयोक्तव्या विशेषादत्र नोदिताः ॥६६॥

अर्थात्—इनका प्रयोग स्वर्गलोक में होता है, इसलिए विशेष वर्णन नहीं किया गया। इस प्रकार दर्पणकार ने केवल चौदह मूर्च्छनाओं का ही उल्लेख किया है, यद्यपि नाम इक्कीस मूर्च्छनाओं के दे दिए हैं।

संगीत के विद्यार्थियों को यहाँ पर यह बता देना उचित होगा कि हमारे प्राचीन शास्त्रकारों ने मूर्च्छनाओं के जो स्वर दिए हैं, उन्हें केवल आरोह-अवरोह नहीं समझ

लेना चाहिए। बल्कि इनके अन्दर जो रहस्य छिपा हुआ है, उस पर ध्यान देकर ही मूर्च्छनाओं की उपयोगिता जानी जा सकती है। वह रहस्य क्या है, यह नीचे के उदाहरणों से भली प्रकार जाना जा सकता है :—

जिस प्रकार अब हमारे यहाँ रागों की उत्पत्ति ठाठों से हुई है, उसी प्रकार प्राचीन ग्रन्थों में मूर्च्छनाओं के द्वारा विभिन्न रागों की उत्पत्ति बताई है। प्राचीन ग्रन्थकार अपने किसी राग का वर्णन करते समय यह नहीं कहते थे कि इसमें अमुक स्वर तीव्र या कोमल हैं, बल्कि वे कहते थे कि इस राग में अमुक मूर्च्छना है; उदाहरणार्थ :—

षड्ज-ग्राम की पहली मूर्च्छना 'उत्तरमन्द्रा' को लीजिए। इसमें 'सा, रे, ग, म, प, ध, नि', ये सात शुद्ध स्वर हैं।

जैसा कि हम पहले बता आए हैं कि षड्ज-ग्राम के स्वर आधुनिक काफी ठाठ-जैसे थे। अब जो गान-वादन काफी ठाठ-जैसे स्वरों पर किया जाएगा, उसे हम षड्ज-ग्राम की प्रथम मूर्च्छना के अन्तर्गत मानेंगे।

अब इसी षड्ज-ग्राम की दूसरी मूर्च्छना लीजिए, जिसका नाम 'रजना' है। रजनी मूर्च्छना में षड्ज-ग्राम का निषाद स्वर प्रारम्भिक स्वर बन जाता है, अतः इसे षड्ज-ग्राम में निषाद की मूर्च्छना भी कहते हैं। अब यदि आप षड्ज-ग्राम में निषाद को अपना षड्ज मानकर स्वर देखें, तो इस प्रकार होंगे :—

नि़ सा रे ग̱ म प ध नि̱ सां—पहली मूर्च्छना

सा रे ग म प ध नि सां—दूसरी मूर्च्छना

इसे हम यों भी कह सकते हैं कि पहले स्वर यदि हमारे काफी ठाठ-जैसे थे, तो बाद के बिलावल ठाठ-जैसे बन गए। दूसरे शब्दों में हम इसे इस प्रकार भी कह सकते हैं कि षड्ज-ग्राम में षड्ज की मूर्च्छना के स्वर हमारे काफी ठाठ-जैसे हैं और इसी ग्राम में निषाद की मूर्च्छना (जिसे 'रजनी' भी कहते हैं।) के स्वर हमारे बिलावल ठाठ-जैसे हैं।

इसी प्रकार तीसरी मूर्च्छना (उत्तरायता) में जोकि षड्ज-ग्राम में धैवत की है, हमारी दृष्टि से सब स्वरों की स्थिति ऐसी हो जाएगी :—

ध नि़̱ सा रे ग̱ म प ध नि̱—प्रथम मूर्च्छना

सा रे̱ ग̱ म म॑ ध̱ नि̱ सां—तीसरी मूर्च्छना

इस मूर्च्छना को हम अपने किसी ठाठ के अन्तर्गत नहीं रख सकते, क्योंकि इसमें हमारी दृष्टि से पंचम स्वर है ही नहीं। अस्तु—

इस प्रकार मूर्च्छनाओं से प्राचीन ग्रन्थकारों ने बहुत-से राग उत्पन्न किए। फिर उनके औडुव, षाडव, और सम्पूर्ण, ऐसे तीन रूप करके रागों की जातियाँ कायम कीं और बहुसंख्यक राग इन मूर्च्छनाओं के द्वारा उत्पन्न हो गए।

प्राचीन काल के बाद मध्यकालीन संगीत-पंडितों ने मूर्च्छना का रूप ही बदल दिया। इन्होंने मूर्च्छना को इस अर्थ में प्रयुक्त किया कि जब किसी राग के स्वर-विस्तार की तान किसी ग्रह स्वर से आरम्भ करके ली जाती है और वर्जित तथा विकृत स्वरों का ध्यान रखते हुए उसका आरोहावरोह किया जाता है, तो उसे 'मूर्च्छना' कहते हैं। उदाहरणार्थ—मालकौंस राग का ग्रह स्वर यदि मध्यम मान लिया जाए और 'रे, प' वर्जित करते हुए 'मगमधनिधमगसा' इस प्रकार स्वर खींचकर उसका आरोह-अवरोह किया जाए, तो उनकी भाषा में यह 'मालकौंस की मूर्च्छना हुई।

इसके पश्चात् आधुनिक काल में मूर्च्छना का अर्थ कुछ और ही हो गया; क्योंकि इस काल में ग्रह स्वर तो, सब रागों का षड्ज ही माना जाने लगा, अतः दक्षिण-भारतीय कर्नाटकी संगीतज्ञ किसी राग के आरोह-अवरोह को ही 'मूर्च्छना' कहने लगे; जैसे—'सा ग म ध नि सां। सां नि ध म ग सा' इसे वे 'हिंडोलम् राग की मूर्च्छना' कहेंगे। क्योंकि उत्तर-भारतीय संगीत-पद्धति में जो स्वर मालकोश के हैं, उन्हें दक्षिण-भारतीय संगीत-पद्धतिवाले हिन्दोलम् राग के स्वर कहते हैं। उत्तर-भारतीय संगीत में तो मूर्च्छना का व्यवहार ही बन्द हो गया। हाँ, कोई-कोई संगीतज्ञ किसी राग के स्वरों का कम्पन दिखाते समय कह देते हैं कि वह इस राग की मूर्च्छना है अथवा किसी एक स्वर पर घर्षण करने से दूसरा स्वर जिस क्रिया से दिखाया जाता है, उसे आधुनिक उत्तर-भारतीय संगीतज्ञ 'मूर्च्छना' कहते हैं। भातखंडेजी ने अपनी 'हिन्दुस्तानी संगीत-पद्धति' के प्रथम भाग में इसी अन्तिम रूप को मूर्च्छना स्वीकार किया है।

उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट हो गया कि मूर्च्छना किस रूप से किस रूप को पहुँच गई। अब हम संक्षेप में मूर्च्छना का तुलनात्मक विवेचन इस प्रकार कर सकते हैं :—

प्राचीन, मध्यकालीन और आधुनिक

मूर्च्छनाओं की तुलनात्मक परिभाषा

१. प्राचीन काल में मूर्च्छनाओं द्वारा भिन्न-भिन्न रागों का निर्माण उसी प्रकार होता था, जिस प्रकार आधुनिक संगीत में ठाठों के द्वारा होता है, अतः प्राचीन मूर्च्छना ठाठ अथवा मेल के समान थी।

२. मध्यकालीन मूर्च्छना एक निश्चित ग्रह स्वर से आरम्भ किया हुआ किसी राग-विशेष का आरोहावरोह था, जिससे उस राग का रूप व्यक्त होता था।

३. आधुनिक संगीत में मूर्च्छना उसे कहते हैं, जब किसी एक स्वर पर कम्पन या घर्षण देते हुए किसी दूसरे स्वर को दिखाने की क्रिया की जाती है।

राग के दस लक्षण

रंजयन्ति मनांसीति रागास्ते दशलक्षणाः ।
लक्षणानि दशोक्तानि लक्ष्यन्ते तावदादितः ॥

—चतुर्दंडिप्रकाशिका

रागों को पहचानने के लिए प्राचीन ग्रन्थकारों ने दस लक्षण बताए हैं—१. ग्रह २. अंश, ३. न्यास, ४. तार, ५. मन्द्र, ६. अपन्यास, ७. संन्यास, ८. विन्यास, ९. बहुत्व और १०. अल्पत्व । इनकी परिभाषा नीचे दी जा रही है :—

ग्रह—जिस स्वर से राग गाना-बजाना आरम्भ किया जाता है, उसे 'ग्रह स्वर' कहते हैं ।

अंश—जो स्वर अन्य स्वरों की अपेक्षा किसी राग में अधिक लगता है, उसे 'अंश स्वर' कहते हैं । इसे ही 'वादी' या 'जीव स्वर' भी कहते हैं ।

न्यास—जिस स्वर पर गान-वादन समाप्त होता है, उसे 'न्यास स्वर' कहते हैं ।

तार—तार-सप्तक में गाते-बजाते समय जिस स्वर तक राग का गाना-बजाना पहुँच सकता हो, उसे 'तार-स्वर' कहते हैं ।

मन्द्र—मन्द्र-सप्तक में गाते-बजाते समय जिस स्वर तक राग का गाना-बजाना पहुँच सकता हो, उसे 'मन्द्र स्वर' कहते हैं ।

अपन्यास—राग के एक भाग का अन्त जिस स्वर पर होता है, उसे 'अपन्यास स्वर' कहते हैं ।

संन्यास—जिस स्वर पर राग के प्रथम भाग का अन्त होता है, उसे 'संन्यास स्वर' कहते हैं ।

विन्यास—जिस स्वर पर राग के प्रथम भाग का अंश समाप्त हो, उसे 'विन्यास स्वर' कहते हैं ।

बहुत्व—स्वरों में दो प्रकार के बहुत्व होते हैं—१. अलंघन द्वारा, २. अभ्यास द्वारा । 'अलंघन' से बहुत्व तब होता है, जब किसी स्वर को थोड़ा-सा स्पर्श करके छोड़ दिया जाए । इस प्रकार यह स्वर दूसरे स्वरों को अपेक्षा कम महत्त्व का समझा जाता है । 'अभ्यास' से बहुत्व तब होता है, जब किसी स्वर का अन्य स्वरों के बीच में आकर बार-बार प्रयोग हो अथवा उसका एक ही स्थान पर पुनः पुनः उच्चारण किया जाए ।

अल्पत्व—इसके भी दो भेद हैं—(१) लंघन (२) अनभ्यास । 'लंघन' वह स्वर होता है, जिसे राग के आरोह-अवरोह में छोड़ दिया जाता है; और 'अनभ्यास' उस स्वर को कहते हैं, जिस का प्रयोग राग में बहुत कम होता है ।

राग-भेद

प्राचीन ग्रन्थों में रागों के तीन भेद बताए गए हैं—१. शुद्ध, २. छायालग और ३. संकीर्ण ।

शुद्ध—जिस राग में अन्य किसी राग के स्वर लगने पर भी उसकी छाया न पड़ने पाए, उसे 'शुद्ध राग' कहते हैं।

छायालग—दो रागों के मेल से अथवा किसी एक राग में अन्य किसी राग के स्वर आ जाने से दूसरे राग की जो छाया दिखाई दे जाती है, ऐसे राग को 'छायालग' राग कहते हैं। इसे 'सालंक' भी कहते हैं।

संकीर्ण—जिस राग में दो रागों से अधिक रागों का मिश्रण या मिलावट हो, उसे 'संकीर्ण राग' कहते हैं।

वादी, संवादी, अनुवादी और विवादी

राग के नियमों में वादी, संवादी आदि स्वरों का भी महत्त्वपूर्ण स्थान होता है, जो निम्नांकित श्लोक से प्रकट है :—

वादी स्वरस्तु राजा स्यान्मन्त्री संवादिसंज्ञितः ।
स्वरो विवादी वैरी स्यादनुवादी च भृत्यवत् ॥

अर्थात्—वादी स्वर को राजा के समान, संवादी स्वर को मन्त्री के समान, विवादी स्वर को वैरी (दुश्मन) के समान तथा अनुवादी स्वर को सेवक के समान समझना चाहिए।

वादी—राग में लगनेवाले स्वरों में जिस स्वर पर सबसे अधिक जोर रहता है, अथवा जिसका प्रयोग अधिक या बार-बार किया जाता है, उसे उस राग का 'वादी स्वर' कहते हैं।

संवादी—यह वादी स्वर का सहायक होता है, तभी इसे मन्त्री की पदवी शास्त्रों ने दी है। यह वादी स्वर से कम तथा अन्य स्वरों से अधिक प्रयुक्त होता है। वादी स्वर से चौथे या पाँचवें नम्बर पर 'संवादी स्वर' होता है।

अनुवादी—वादी और संवादी के अतिरिक्त जो नियमित स्वर राग में लगते हैं, वे सब 'अनुवादी स्वर' कहलाते हैं।

विवादी—'विवादी' का वास्तविक अर्थ तो 'बिगाड़ पैदा करनेवाला' ही होता है; अर्थात् ऐसा स्वर, जिससे राग का स्वरूप बिगड़ जाए। इसीलिए विवादी को शत्रु (वैरी) की पदवी शास्त्रों में दी गई है। इतना सब होते हुए भी कभी-कभी राग में विवादी स्वर का प्रयोग ऐसी कुशलता से कर दिया जाता है, जिससे कि राग में एक विचित्रता पैदा हो जाती है; जैसे यमन राग में दो शुद्ध गान्धारों के बीच में शुद्ध 'म' लगा दिया जाता है, तो उसका सौन्दर्य कुछ बढ़ ही जाता है। इस प्रकार विवादी स्वर का प्रयोग कुशल गायक करते हैं।

आश्रय-राग

उत्तर-भारतीय संगीत-पद्धति में प्रत्येक ठाठ का नाम उस ठाठ से उत्पन्न होने-वाले किसी राग-विशेष 'जन्य राग' के नाम पर ही देखा जाता है। जिस जन्य

(उत्पन्न होने वाले) राग का नाम ठाठ को दिया जाता है, उसी को 'आश्रय-राग' कहते हैं; जैसे 'सा रे॒ ग म प ध॒ नि' इस स्वर-समुदाय से विदित होता है कि यह भैरव ठाठ है। इसका नाम भैरव ठाठ इसलिए रखा गया। क्योंकि इन्हीं स्वरों से और इसी ठाठ से प्रसिद्ध राग 'भैरव' की उत्पत्ति हुई। इस प्रकार राग भैरव भैरव ठाठ का आश्रय-राग हुआ।

किसी भी ठाठ से उत्पन्न होनेवाले (जन्य) रागों में आश्रय-राग का थोड़ा-बहुत अंश अवश्य ही दिखाई देता है, किन्तु ऐसा नहीं समझना चाहिए कि आश्रय-राग सभी जन्य रागों का उत्पादक है। जन्य रागों का उत्पादक तो ठाठ ही माना जाएगा।

आश्रय-राग को ही 'ठाठ-वाचक राग' भी कहते हैं। उत्तर-भारतीय संगीत-पद्धति में कुल दस आश्रय-राग माने गए हैं, जो निम्नांकित तालिका में द्रष्टव्य हैं :—

ठाठ-नाम	ठाठ के स्वर	आश्रय-राग	राग के आरोह-अवरोह
१. बिलावल	सा रे ग म प ध नि सां	बिलावल	सा रे ग म प ध नि सां
			सां नि ध प म ग रे सा
२. कल्याण (यमन)	सा रे ग म॑ प ध नि सां	यमन	सा रे ग म॑ प ध नि सां
			सां नि ध प म॑ ग रे सा
३. खमाज	सा रे ग म प ध नि॒ सां	खमाज	सा ग म प ध नि सां
			सां नि॒ ध प म ग रे सा
४. भैरव	सा रे॒ ग म प ध॒ नि सां	भैरव	सा रे॒ ग म प ध॒ नि सां
			सां नि ध॒ प म ग रे॒ सा
५. पूर्वी	सा रे॒ ग म॑ प ध॒ नि सां	पूर्वी	सा रे॒ ग म॑ प ध॒ नि सां
			सां नि ध॒ प म॑ ग रे॒ सा
६. मारवा	सा रे॒ ग म॑ प ध नि सां	मारवा	सा रे॒ ग म॑ ध नि सां
			सां नि ध म॑ ग रे॒ सा
७. काफी	सा रे ग॒ म प ध नि॒ सां	काफी	सा रे ग॒ म प ध नि॒ सां
			सां नि॒ ध प म ग॒ रे सा
८. आसावरी	सा रे ग॒ म प ध॒ नि॒ सां	आसावरी	सा रे म प ध॒ सां
			सां नि॒ ध॒ प म ग॒ रे सा
९. भैरवी	सा रे॒ ग॒ म प ध॒ नि॒ सां	भैरवी	सा रे॒ ग॒ म प ध॒ नि॒ सां
			सां नि॒ ध॒ प म ग॒ रे॒ सा
१०. तोड़ी	सा रे॒ ग॒ म॑ प ध॒ नि सां	तोड़ी	सा रे॒ ग॒ म॑ प ध॒ नि सां
			सां नि ध॒ प म॑ ग॒ रे॒ सा

ध्यान रहे कि ठाठ में केवल आरोह ही होता है तथा सातों स्वर पूरे होते हैं, किन्तु राग में आरोह व अवरोह, दोनों का होना आवश्यक है, चाहे स्वर सात हों या कम।

रागों का समय-विभाजन

उत्तर-भारतीय संगीत-पद्धति में रागों का प्रयोग-काल (गान-वादन का समय) दिन और रात्रि के चौबीस घन्टों के दो भाग करके बाँटा गया है। पहला भाग बारह बजे दिन से बारह बजे रात्रि तक और दूसरा भाग बारह बजे रात्रि से बारह बजे दिन तक माना जाता है। इनमें पहले भाग को 'पूर्व भाग' और दूसरे भाग को 'उत्तर-भाग' कहते हैं।

पूर्व-राग—जो राग दिन के बारह बजे से रात्रि के बारह बजे तक (पूर्व-भाग) के समय में गाए-बजाए जाते हैं, उन्हें 'पूर्व-राग' कहते हैं।

उत्तर-राग—जो राग बारह बजे रात्रि से दिन के बारह बजे तक (उत्तर-भाग) के समय में गाए-बजाए जाते हैं, उन्हें 'उत्तर-राग' कहते हैं।

पूर्व-राग और उत्तर-राग को ही प्रचार में पूर्वांगवादी तथा उत्तरांगवादी राग भी कहते हैं। यहाँ पर यह बता देना भी आवश्यक है कि इनको पूर्वांगवादी या उत्तरांगवादी राग क्यों कहते हैं।

सप्तक के सात शुद्ध स्वरों में तार-सप्तक का 'सां' मिलाकर 'सा रे ग म, प ध नि सां' इस प्रकार स्वरों की संख्या आठ कर ली जाए और फिर इसके दो हिस्से कर दिए जाएँ, तो 'सा रे ग म', यह सप्तक का 'पूर्वांग' और 'प ध नि सां', यह सप्तक का 'उत्तरांग' कहा जाएगा।

पूर्वांगवादी राग

जिन रागों का वादी स्वर सप्तक के पूर्वांग अर्थात् 'सा रे ग म', इन स्वरों में से होता है, वे 'पूर्वांगवादी राग' कहे जाते हैं। ऐसे राग प्राय: दिन के पूर्व-भाग यानी बारह बजे दिन से बारह बजे रात्रि तक के समय में गाए जाते हैं।

उत्तरांगवादी राग

जिन रागों का वादी स्वर सप्तक के उत्तरांग अर्थात् 'प ध नि सां', इन स्वरों में से होता है, वे 'उत्तरांगवादी राग' कहे जाते हैं। ऐसे राग प्राय: दिन के उत्तर-भाग अर्थात् बारह बजे रात्रि से बारह बजे दिन तक ही गाए-बजाए जाते हैं।

उपर्युक्त वर्गीकरण से यह स्पष्ट हो जाता है कि राग के वादी स्वर को जान लेने पर उस राग के गान-वादन का समय ज्ञात हो जाता है; जैसे आसावरी का वादी स्वर धैवत है, अर्थात् सप्तक का उत्तरांग-स्वर है, तो इसके गान-वादन का समय भी प्रातः है। अर्थात् रात्रि के बारह बजे से दिन के बारह बजे तक का जो समय (उत्तर-भाग) है, उसी के अन्तर्गत प्रातःकाल आ जाता है। यमन का वादी स्वर गान्धार है, जोकि सप्तक के पूर्वांग में से लिया हुआ स्वर है, अतः यमन राग के गान-वादन का समय रात्रि का प्रथम प्रहर है, जोकि दिन के बारह बजे से रात्रि के बारह बजे तक

के क्षेत्र (पूर्व-भाग) में आता है। इसलिए यमन 'पूर्वांगवादी राग' कहा जाएगा और आसावरी को 'उत्तरांगवादी राग' कहेंगे।

उपर्युक्त विवेचन पर संगीत-विद्यार्थियों को यह शंका होना स्वाभाविक है कि भैरवी में मध्यम वादी स्वर है, जोकि सप्तक का पूर्वांग स्वर हुआ; फिर क्या कारण है कि भैरवी का गान-वादन-समय प्रातः बताया गया है। उपर्युक्त वर्णन के अनुसार तो भैरवी का गान-वादन-समय दिन का उत्तर-भाग अर्थात् बारह बजे दिन से बारह बजे रात्रि तक होना चाहिए। प्रातःकाल तो 'उत्तर-भाग' के अन्तर्गत आता है, फिर भैरवी का वादी स्वर सप्तक के पूर्वांग में से क्यों है? इसी प्रकार यह भी शंका हो सकती है कि कामोद में पंचम वादी है, जोकि सप्तक का उत्तरांग स्वर है, फिर क्यों इसे पूर्व-भाग (रात्रि के प्रथम प्रहर) में गाते-बजाते हैं?

उपर्युक्त शंकाओं का समाधान यह है कि उत्तर-भारतीय संगीत-पद्धति में यद्यपि 'सा रे ग म' को सप्तक का पूर्वांग और 'प ध नि सां' को उत्तरांग कहा गया है, किन्तु कुछ पूर्वांगवादी तथा उत्तरांगवादी स्वरों को उपर्युक्त वर्गीकरण में लाने के लिए पूर्वांग का क्षेत्र 'सा रे ग म प' और उत्तरांग का क्षेत्र 'म प ध नि सां', इस प्रकार बढ़ाकर माना गया है। इस प्रकार सप्तक के दो भाग करने से 'सा, म, प', ये तीनों स्वर सप्तक के उत्तरांग तथा पूर्वांग, दोनों भागों में आ जाते हैं। और जब किसी राग में इन तीनों स्वरों में से कोई स्वर वादी होता है, तो वह राग पूर्वांगवादी भी हो सकता है और उत्तरांगवादी भी हो सकता है। ऊपर वर्णित भैरवी और कामोद राग इसी श्रेणी में आ जाते हैं और कामोद में पचम वादी होते हुए भी उसे पूर्वांगवादी राग कह सकते हैं, क्योंकि ये दोनों ही राग सप्तक के बढ़ाए हुए क्षेत्र में आ जाते हैं। इस प्रकार अन्य कुछ राग भी इसी श्रेणी में आकर अपना क्षेत्र बना लेते हैं। अतः जब किसी राग में वादी स्वर 'सा, म, प,' इनमें से कोई स्वर हो और यह बताना हो कि यह राग पूर्वांगवादी है या उत्तरांगवादी, तो उस राग के गान-वादन का समय देखकर तथा सप्तक के उतरांग और पूर्वांग भागों के दोनों प्रकारों को ध्यान में रखकर आसानी से बताया जा सकता है कि अमुक राग पूर्वांगवादी है या उत्तरांगवादी।

स्वर और समय की दृष्टि से रागों के तीन वर्ग

उत्तर-भारतीय संगीत-पद्धति में रागों के गाने-बजाने के बारे में समय-सिद्धान्त (Time Theory) प्राचीन-काल से ही चला आ रहा है। यद्यपि प्राचीन रागों में एवं अर्वाचीन रागों में समय-सिद्धान्त पर कुछ मतभेद हैं, जिनका कारण रागों के स्वरों में उलट-फेर हो जाना है, तथापि यह तो स्वीकार करना ही पड़ेगा कि हमारे प्राचीन संगीत-पंडितों ने रागों को उनके ठीक समय पर गान-वादन का सिद्धान्त अपने ग्रन्थों में स्वीकार किया है। उसी को आज के संगीतज्ञ भी स्वीकार करके अपने रागों में समय-सिद्धान्त का पालन कर रहे हैं।

हिन्दुस्थानीयरागाणां त्रयो वर्गाः सुनिश्चिताः।
स्वरविकृत्यधीनास्ते लक्ष्यलक्षणकोविदैः॥

—मल्लक्ष्यसंगीतम्

स्वर और समय के अनुसार उत्तर-भारतीय रागों के तीन वर्ग मानकर कोमल-तीव्र (विकृत) स्वरों के हिसाब से उनका विभाजन किया गया है—१. सन्धिप्रकाश राग अर्थात् कोमल 'रे' और कोमल 'ध' वाले राग, २. शुद्ध 'रे' और शुद्ध 'ध' वाले राग तथा ३. कोमल 'ग' और कोमल 'नि' वाले राग।

सन्धिप्रकाश राग

ऊपर बताए हुए तीन वर्गों में से प्रथम वर्ग अर्थात् कोमल 'रे' और कोमल 'ध' वाले राग सन्धिप्रकाश रागों की श्रेणी में आ जाते हैं। ध्यान रहे, इस वर्ग में कोमल 'रे-ध' के साथ-साथ तीव्र 'ग' होना जरूरी है। यदि तीव्र 'ग' के स्थान पर कोमल 'ग' होगा, तो वह तीसरे वर्ग में आ जाएगा। दिन और रात्रि की सन्धि अर्थात् मेल होने के समय को सन्धि-काल कहते हैं। प्रातः सूर्योदय से कुछ पहले और शाम को सूर्यास्त से कुछ पहले का समय ऐसा होता है, जिसे न तो दिन ही कह सकते हैं, न रात ही। इसी समय को 'सन्धिप्रकाश की वेला' कहा गया है और इस वेला में जो राग गाए-बजाए जाते हैं, उन्हें ही 'सन्धिप्रकाश राग' कहते हैं; जैसे भैरव, कालिंगड़ा, भैरवी, पूर्वी, मारवा इत्यादि। सन्धिप्रकाश के भी दो भाग माने गए हैं—१. प्रातः-कालीन सन्धिप्रकाश राग और २. सायंकालीन सन्धिप्रकाश राग। जो राग सूर्योदय के समय गाए-बजाए जाएँगे, वे प्रातःकालीन सन्धिप्रकाश राग होंगे और जो सूर्यास्त के समय गाए-बजाए जाएँगे, उन्हें सायंकालीन सन्धिप्रकाश राग कहेंगे।

सन्धिप्रकाश रागों में मध्यम स्वर बड़े महत्त्व का है। प्रातःकालीन सन्धिप्रकाश रागों में अधिकतर मध्यम कोमल यानी शुद्ध होगा और सायंकालीन सन्धिप्रकाश रागों में अधिकतर तीव्र मध्यम मिलेगा; जैसे भैरव और कालिंगड़ा प्रातःकालीन सन्धिप्रकाश राग हैं, क्योंकि इनमें शुद्ध मध्यम है तथा पूर्वी और मारवा सायंकालीन सन्धिप्रकाश राग हैं, क्योंकि इनमें तीव्र मध्यम है।

सन्धिप्रकाश रागों की एक साधारण-सी पहचान यह भी है कि उनमें धैवत स्वर चाहे कोमल हो या तीव्र, किन्तु उनमें 'रे' कोमल और 'ग-नि' तीव्र ही अधिकतर मिलेंगे। यद्यपि कोई-कोई सन्धिप्रकाश राग इस नियम का अपवाद भी हो सकता है; जैसे भैरवी।

शुद्ध 'रे-ध' वाले राग

'रे-ध' शुद्ध (तीव्र) वाले रागों के गाने-बजाने का समय सन्धिप्रकाश-काल के बाद आता है; क्योंकि सन्धिप्रकाश-काल दिन में दो बार आता है, अतः इस वर्ग के रागों के गाने का समय भी चौबीस घंटों में दो बार आता है। इसमें कल्याण, बिलावल और खमाज ठाठ के राग गाए-बजाए जाते हैं।

प्रातःकालीन सन्धिप्रकाश रागों के बाद गाए-बजाए जानेवाले रागों में, दिन चढ़ने के साथ-ही-साथ शुद्ध 'रे' तथा शुद्ध 'ध' की प्रधानता बढ़ती जाती है। इस प्रकार प्रातः सात बजे से दस बजे तक और शाम को सात बजे से दस बजे तक दूसरे वर्ग अर्थात् 'रे-ध' शुद्ध वाले राग गाए-बजाए जाते हैं। इस वर्ग में 'ग' का शुद्ध होना

आवश्यक है। साथ-ही-साथ इस वर्ग के रागों में मध्यम स्वर का भी विशेष महत्त्व है। इस प्रकार सवेरे सात बजे से दस बजे तक गाए-बजाए जानेवाले रागों में शुद्ध अर्थात् कोमल मध्यम की प्रधानता रहती है, जैसे बिलावल, देशकार, तोड़ी इत्यादि; और शाम के सात बजे से दस बजे तक गाए-बजाए जानेवाले रागों में तीव्र मध्यम की प्रधानता रहती है, जैसे यमन, शुद्धकल्याण, भूपाली इत्यादि।

कोमल 'ग-नि' वाले राग

इस वर्ग के रागों को गाने का समय शुद्ध 'रे-ध' वाले रागों के बाद आता है, अर्थात् कोमल 'ग-नि' वाले राग दिन में दस बजे से चार बजे तक और रात्रि में दस बजे से चार बजे तक गाए-बजाए जाते हैं। इस वर्ग के रागों की खास पहचान यह है कि उनमें 'ग' कोमल जरूर होगा, चाहे रे-ध शुद्ध हों या कोमल। इस वर्ग के रागों में प्रातःकाल आसावरी, जौनपुरी, गान्धारी-तोड़ी इत्यादि राग गाए जाते हैं और रात्रि में यमन इत्यादि गाने के बाद जैसे-जैसे आधी रात्रि का समय आता जाता है, बागेश्री, जयजयवन्ती, मालकोंस इत्यादि राग गाए-बजाए जाते हैं।

यहाँ हम रागों के गाने-बजाने की एक तालिका दे रहे हैं, जोकि रात्रि के प्रथम प्रहर के प्रमुख राग यमन से आरम्भ होती है; क्योंकि गायक-वादक प्रायः यमन राग से ही अपना गान-वादन प्रारम्भ करते हैं। इस तालिका में भैरवीको इसलिए छोड़ दिया गया है कि महफिल की समाप्ति प्रायः भैरवी पर ही करने का रिवाज-सा हो गया है। अतः भैरवी का गान-काल यद्यपि प्रातः काल है, किन्तु रात्रि के एक-दो बजे जब भी महफिल समाप्ति पर हो, भैरवी सुनाई दे जाती है। इसी प्रकार दिन में भी एक-दो बजे कभी-कभी भैरवी सुनाई दे जाती है।

तीव्र मध्यमवाले राग

१. यमन
२. शुद्धकल्याण
३. मालश्री
४. हिंडोल : इस राग के विषय में दो मत प्रचलित हैं। रात्रिगेय हिंडोल में गान्धार वादी होता है, किन्तु प्रातःकाल गानेवाले धैवत वादी मानते हैं। कुछ विद्वानों का मत है कि वसन्त-ऋतु में यह राग चाहे जिस समय गाया जा सकता है।
५. भूपाली
६. जैतकल्याण

दोनों मध्यमवाले राग

७. हमीर
८. केदार
९. कामोद
१०. छायानट
११. बिहाग
१२. शंकरा (मध्यम का अभाव)

तीव्र 'ग' तथा कोमल 'नि' वाले राग

१३. खमाज
१४. देस
१५. तिलककामोद
१६. जयजयवन्ती (परमेलप्रवेशक राग) : कुछ विद्वान् जयजयवन्ती के पश्चात् ही मालकोंस गाने का समय बतलाते हैं।

कोमल 'ग' तथा कोमल 'नि' वाले राग

(१७) बागेश्री

(१८) दरबारी

(१९) अड़ाना

(२०) पूरिया (इस राग को 'रात्रि का 'पूरिया' भी कहा जाता है, क्योंकि पूरियाधनाश्री को प्रायः 'दिन का पूरिया' कहा जाता है।)

(२१) बहार

(२२) मालकोंस

यहाँ से तीव्र मध्यम का पुनः प्रयोग आरम्भ हुआ

(२३) वसन्त

(२४) परज

(२५) सोहनी

प्रातःकालीन सन्धिप्रकाश रागों से सायंकालीन सन्धिप्रकाश रागों तक का क्रम

(२६) कालिंगड़ा

(२७) जोगिया

(२८) ललित

(२९) रामकली

(३०) भैरव (सब प्रकार के भैरव)

(३१) विभास (भैरव का अन्तिम प्रकार)

(३२) विभास (मारवा ठाठ का विभास)

(३३) अल्हैयाबिलावल

(३४) बिलावल के सब प्रकार

(३५) देशकार

(३६) तोड़ी (सब प्रकार)

(३७) आसावरी

(३८) जौनपुरी

(३९) देसी

(४०) सूहा

(४१) सुघराई

(४२) सारंग

(४३) सारंग के सब प्रकार

(४४) गौड़सारंग

(४५) काफी (कुछ विद्वान् काफी का समय मध्य-रात्रि मानते हैं तथा कुछ के मतानुसार यह सार्वकालिक राग है।)

(४६) भीमपलासी

(४७) धनाश्री

(४८) धानी

(४९) मुलतानी

(५०) पूर्वी

(५१) पूरियाधनाश्री

(५२) श्री

(५३) जैतश्री

(५४) गौरी

(५५) मारवा

जैत गाने के बाद प्रायः यमन राग गाने का समय फिर आ जाता है। इस प्रकार रागों की यह तालिका हमें बताती है कि पूरे चौबीस घंटे का चक्कर लगाकर एक आवर्तन समाप्त करके फिर वही सिलसिला शुरू हो जाता है।

उक्त तालिका का यह अर्थ नहीं कि इसमें दिए हुए किसी राग के बाद अमुक राग गाना ही चाहिए। बहुत-से गायक अपनी इच्छानुसार इनके क्रम में परिवर्तन करके गाते हैं एवं अन्य रागों का समावेश भी इच्छानुसार कर सकते हैं। किन्तु राग के समय का ध्यान रखकर ही उन्हें ऐसा करना चाहिए, क्योंकि कुसमय में कोई राग गाने-बजाने से न तो श्रोताओं पर ही उसका अच्छा प्रभाव होता है और न राग से रसोत्पत्ति ही सम्भव है।

यहाँ पर राग-समय-चक्र का एक चित्र भी दे रहे हैं, जिससे संगीत के विद्यार्थियों को यह विदित हो जाएगा कि संगीत के दिन और रात किस प्रकार होते हैं :—

संगीत के दिन-रात

(राग-समय-चक्र)
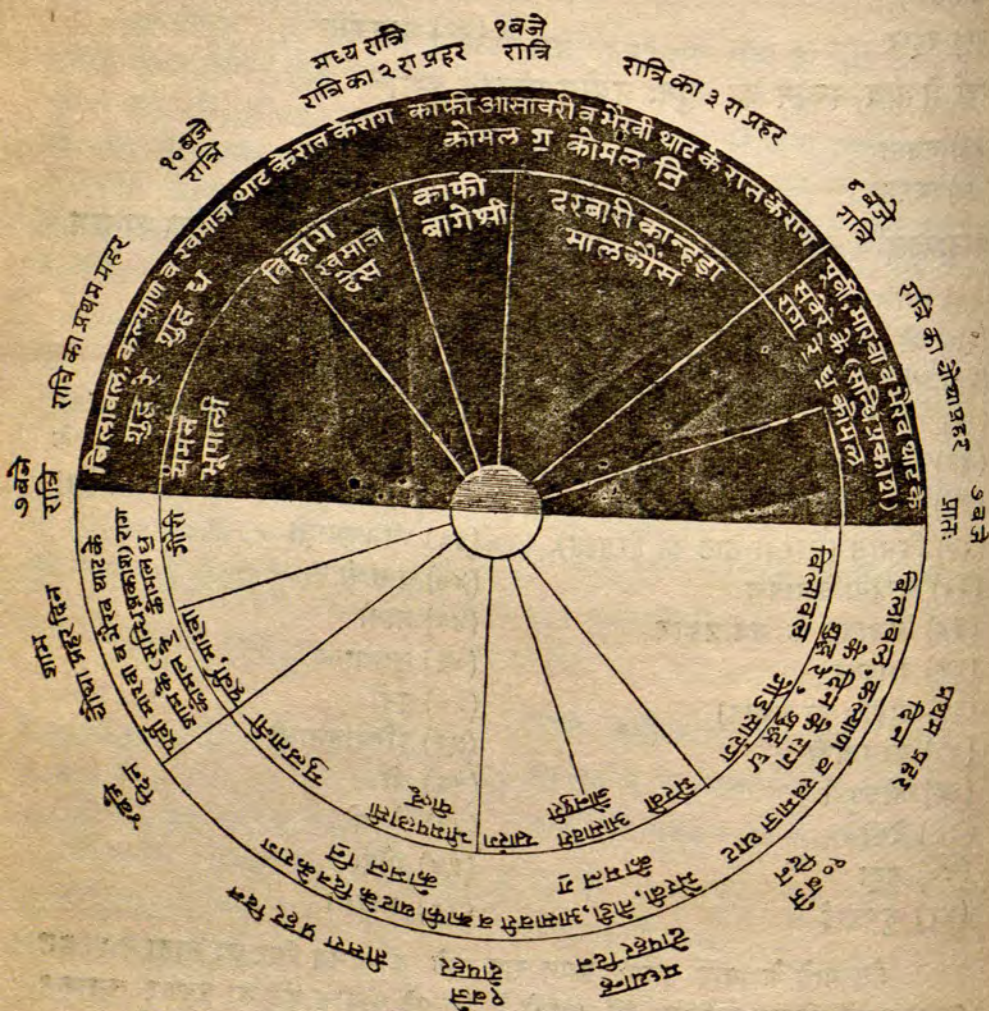
इस चित्र में काला भाग रात्रि का और सफेद भाग दिन का सूचक है।

अध्वदर्शक स्वर मध्यम का महत्त्व

उत्तर-भारतीय संगीत-पद्धति में रागों के गाने-बजाने के समय की दृष्टि से मध्यम स्वर विशेष महत्त्वपूर्ण है। यह स्वर रागों के समय-विभाजन में पथ-प्रदर्शक का कार्य करता है, इसीलिए इसे 'अध्वदर्शक स्वर' कहा जाता है। सुबह के समय में प्राय: कोमल (शुद्ध) मध्यम का राज्य रहता है। कोमल 'रे–ध' वाले सन्धिप्रकाश रागों में यदि शुद्ध मध्यम प्रबल होता है, तो वे 'प्रात:कालीन सन्धिप्रकाश राग' होते हैं, और शाम के रागों में यदि तीव्र मध्यम की प्रधानता रहती है तो वे सन्ध्याकालीन सन्धिप्रकाश राग कहे जाते हैं। इस प्रकार तीव्र मध्यम अधिकतर सायंकाल की सूचना देता है और कोमल मध्यम प्रात:काल की। यमन, हमीर, कामोद, केदार इत्यादि तीव्र मध्यमवाले राग सायंकाल में रात्रि के प्रथम प्रहर के अन्दर ही गा लिए जाते हैं। शाम को मुलतानी, पूर्वी तथा श्री इत्यादि रागों से तीव्र मध्यम का प्रयोग शुरू होता है और यह प्रयोग लगभग आधी रात तक लगातार चलता रहता है। इसके पश्चात् रात्रि के दूसरे प्रहर में जब विहाग गाने का समय आता है, तो धीरे-धीरे शुद्ध मध्यम का प्रयोग आरम्भ हो जाता है। वह सूचित करता है कि प्रभात का समय निकट आ रहा है और रात्रि काफी बीत चुकी है। इस प्रकार तीव्र मध्यम के बाद शुद्ध मध्यम की प्रधानता स्थापित हो जाती है। प्रात:कालीन सन्धिप्रकाश रागों में पहले शुद्ध मध्यमवाले राग भैरव, कालिंगड़ा इत्यादि गाकर फिर दोनों मध्यमवाले राग आ जाते हैं। किन्तु इनमें शुद्ध मध्यम का महत्त्व अधिक रहता है; जैसे रामकली और ललित इत्यादि। इसके पश्चात् जब 'रे–ध' शुद्ध वाले रागों को गाने का समय आता है, तब भी शुद्ध मध्यम की ही प्रबलता रहती है; जैसे बिलावल आदि। फिर कोमल गान्धारवाले रागों का समय आता है, तो दोनों मध्यमों का प्रयोग आरम्भ हो जाता है। इस प्रकार तीसरे प्रहर तक शुद्ध और तीव्र, दोनों प्रकार के मध्यमों का प्रयोग चलता है। किसी राग में कोमल मध्यम की प्रधानता रहती है, किसी में तीव्र मध्यम की।

सूर्यास्त के समय जब सन्ध्याकालीन सन्धिप्रकाश राग आते हैं, जैसे मारवा श्री इत्यादि, तो उनमें तीव्र मध्यम का महत्त्व रहता है। इसके पश्चात् 'रे–ग' शुद्ध वाले राग आते हैं, जैसे कल्याण, हमीर, केदार आदि तो उनमें तीव्र मध्यम का ही विशेष प्राधान्य रहता है। अन्त में जाकर जब कोमल 'ग' वाले रागों के गाने का समय आता है, तो शुद्ध मध्यम वाले रागों की फिर प्रधानता हो जाती है; जैसे बागेश्री, काफी, मालकोंस इत्यादि।

इसीलिए कहा जाता है कि हमारी पद्धति में मध्यम स्वर का अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान है। केवल मध्यम के परिवर्तन से गायन में अन्तर दीखने लगता है। भैरव प्रात:काल के प्रथम प्रहर में गाया जाता है, किन्तु इसके स्वरों में यदि कोमल मध्यम की जगह तीव्र मध्यम कर दिया जाए, तो सायंकाल में गाया जानेवाला पूर्वी राग हो जाएगा तथा प्रात:काल गाए जानेवाले बिलावल राग के स्वरों में से सिर्फ कोमल मध्यम हटाकर तीव्र मध्यम करने से रात्रि को गाया जानेवाला राग यमन हो जाता है। इस प्रकार केवल मध्यम का स्वरूप बदल देने से प्रात:काल के स्थान पर ये राग

रात्रिगेय हो गए। इसीलिए कहा है कि मध्यम के इशारे पर ही संगीतज्ञों के दिन और रात होते हैं। यद्यपि इस नियम के कुछ राग अपवाद भी हैं, किन्तु बहुमत इसी ओर है।

परमेलप्रवेशक राग

'परमेल' का अर्थ है, दूसरा कोई मेल और 'प्रवेशक' यानी प्रवेश करनेवाला। अर्थात् परमेलप्रवेशक राग वे कहे जाते हैं, जो किसी एक मेल (ठाठ) से किसी दूसरे मेल (ठाठ) में प्रवेश करते हैं; उदाहरणार्थ—सन्ध्या-काल में गाए जानेवाले सन्धिप्रकाश रागों को गाकर जब गायक समयानुसार दूसरे किसी मेल के राग गाना चाहता है; जैसे भीमपलासी, धनाश्री और धानी गाकर जब कोई गायक मुलतानी गाने लगता है, तो उससे यह संकेत होता है कि अब गायक किसी दूसरे ठाठ (यमन इत्यादि) में प्रवेश करनेवाला है। इस प्रकार मुलतानी 'परमेलप्रवेशक' राग माना गया है। एक उदाहरण से यह और स्पष्ट किया जाता है :—

रात्रि को जब 'रे-ध शुद्ध वाले वर्ग के रागों का समय समाप्त हो जाता है और 'ग-नि' कोमल वाले वर्ग के रागों को गाने का समय आनेवाला होता है, उस समय जयजयवन्ती 'परमेलप्रवेशक राग' माना जाएगा; क्योंकि जयजयवन्ती राग में 'रे-ध' शुद्ध वाले वर्ग तथा 'ग–नि' कोमल वाले वर्ग, दोनों की ही कुछ-कुछ विशेषताएँ मौजूद हैं। जयजयवन्ती में दोनों गान्धार, दोनों निषाद और शुद्ध 'रे–ध' लगते ही हैं, अतः यह राग दूसरा मेल आरम्भ होने की सूचना देकर 'परमेलप्रवेशक' राग कहलाता है।

हिन्दुस्तानी संगीत-पद्धति के चालीस सिद्धान्त

कर्नाटक-(दक्षिण-भारतीय) संगीत-पद्धति की तुलना में हिन्दुस्तानी (उत्तर-भारतीय) संगीत-पद्धति अपनी कुछ विशेषताएँ रखती है। यही कारण है कि आज मैसूर, मद्रास और कर्नाटक को छोड़कर शेष समस्त भारत में हिन्दुस्तानी संगीत-पद्धति ही प्रचलित है। यह पद्धति कुछ विशेष सिद्धान्तों पर अवलम्बित है। संगीत-विद्यार्थियों को इन सिद्धान्तों का भली प्रकार मनन कर लेना चाहिए। श्री भातखंडे ने 'क्रमिक पुस्तक-मालिका' के पाँचवें भाग में इनका विस्तृत उल्लेख किया है। उसी आधार पर निम्नलिखित सिद्धान्त दिए जा रहे हैं :—

१. हिन्दुस्तानी (उत्तर-भारतीय) संगीत-पद्धति को नीवँ 'बिलावल ठाठ' को शुद्ध ठाठ मानकर रखी गई है, अर्थात् बिलावल ठाठ के स्वर ही शुद्ध स्वर-सप्तक का निर्माण करते हैं।

२. समस्त रागों का वर्गीकरण तीन भागों में किया गया है—१. औडुव (पाँच स्वरों के राग), २. षाडव (छह स्वरों के राग) और ३. सम्पूर्ण (सात स्वरों के राग)।

३. पाँच स्वरों से कम का और सात स्वरों से अधिक का (कोमल-तीव्र मिलाकर बारह स्वर) राग नहीं होता।

४. औडुव, षाडव और सम्पूर्ण, इनके आरोह-अवरोह में उलट-पलट होने से नौ प्रकार के भेद माने जाते हैं, जिनका विवेचन इस पुस्तक में औडुव-षाडव-भेद के अन्तर्गत किया गया है।

५. प्रत्येक राग में ठाठ, आरोह-अवरोह, वादी-संवादी, समय और रंजकता, ये बातें अवश्य होती हैं।

६. वादी-संवादी स्वरों में प्रायः चार स्वरों का अन्तर होता है। वादी स्वर पूर्वांग में होगा तो संवादी स्वर उतरांग में होगा और वादी स्वर उत्तरांग में होगा तो संवादी स्वर पूर्वांग में होगा।

७. वादी स्वर बदलकर शाम को गाए-बजाए जानेवाले राग को सुबह गाया-बजाया जानेवाला राग बनाया जा सकता है।

८. राग में सुन्दरता लाने के लिए विवादी या वर्जित स्वर को भी किंचित् प्रयोग किया जा सकता है।

९. हरएक राग में एक वादी स्वर होता है, जिसका राग में विशेष जोर रहता है। वादी स्वर के आधार पर ही पूर्व-राग और उत्तर-राग पहचाने जा सकते हैं।

१०. इस पद्धति के राग सामान्यतः तीन वर्गों में विभाजित किए जा सकते हैं—१. कोमल 'रे-ध' वाले राग, २. शुद्ध 'रे-ध' वाले राग और ३. कोमल 'ग-नि' वाले राग। जो सन्धिप्रकाश राग सूर्यास्त और सूर्योदय के समय गाए-बजाए जाते हैं, वे अधिकांशतः प्रथम वर्ग में पाए जाते हैं। प्रातःकालीन सन्धिप्रकाश रागों में प्रायः 'रे-ध' वर्जित नहीं होते तथा सायंकालीन सन्धिप्रकाश रागों में प्रायः 'ग-नि' र्जित नहीं होते।

११. इस पद्धति में मध्यम स्वर महत्त्वपूर्ण माना जाता है। 'इसे अध्वदर्शक स्वर' कहा जाता है; क्योंकि इससे दिन-रात के रागों को गाने-बजाने का समय निर्धारित होता है।

१२. जिन रागों में 'ग–नि' कोमल लगते हैं, वे दोपहर या आधी रात को ही अधिकतर गाए-बजाए जाते हैं।

१३. सन्धिप्रकाश रागों के बाद प्राय: 'रे–ग–ध–नि' शुद्ध लगनेवाले राग गाए-बजाए जाते हैं।

१४. षड्ज, मध्यम और पंचम, ये तीन स्वर प्राय: दिन और रात्रि के तीसरे प्रहर के रागों में अपना महत्त्व विशेष रूप से रखते हैं।

१५. तीव्र मध्यम अधिकतर रात्रि के रागों में ही पाया जाता है; दिन के रागों में यह स्वर कम दिखाई देता है।

१६. 'सा–म–प,' ये स्वर पूर्वांग और उत्तरांग, दोनों भागों में ही होते हैं; अत: जो राग प्रत्येक समय (सर्वकालिक) गाए-बजाए जानेवाले होते हैं, उनमें इन तीन स्वरों में से कोई एक वादी होता है।

१७. मध्यम और पंचम, ये दोनों स्वर एकसाथ किसी भी राग में वर्जित नहीं होते। 'प' वर्जित होगा तो 'म' मौजूद होगा और 'म' वर्जित होगा तो 'प' मौजूद होगा।

१८. किसी भी राग में षड्ज स्वर वर्जित नहीं होता।

१९. रागों में प्राय: एक ही स्वर के दो रूप (कोमल-तीव्र) पास-पास नहीं आने चाहिए, किन्तु ललित इत्यादि कुछ राग इस नियम के अपवाद हैं।

२०. अपने नियत समय पर गाने-बजाने से ही राग सुन्दर लगता है, किन्तु राज-दरबार तथा रंगमंच (स्टेज) पर यह नियम शिथिल भी हो जाता है।

२१. तीव्र 'म' के साथ कोमल 'नि' बहुत कम रागों में आता है।

२२. दोनों मध्यम लगनेवाले रागों में कुछ-कुछ एकरूपता पाई जाती है। इनकी भिन्नता प्राय: आरोह में ही दिखाई देती है। ऐसे रागों का अन्तरा बहुत-कुछ मिलता-जुलता होता है।

२३. रात्रि के प्रथम प्रहर में जो दोनों मध्यमवाले राग गाए-बजाए जाते हैं, उनका एक साधारण-सा नियम यह है कि शुद्ध मध्यम तो आरोह-अवरोह, दोनों में लगता है, किन्तु तीव्र मध्यम केवल आरोह में ही दिखाई देता है तथा शुद्ध मध्यम की अपेक्षा ठाठ का उपयोग दोनों मध्यमवाले रागों में कम पाया जाता है।

२४. रात्रि के प्रथम प्रहरवाले रागों में एक नियम यह भी दिखाई देता है कि उनके आरोह में निषाद वक्र और अवरोह में गान्धार वक्र रूप से लगता है। ऐसे रागों के अवरोह में प्राय: निषाद दुर्बल दिखाई देता है।

२५. हिन्दुस्तानी संगीत-पद्धति में ताल की अपेक्षा राग को अधिक महत्त्व दिया गया है। इसके विरुद्ध कर्नाटक-संगीत पद्धति में राग की अपेक्षा ताल का महत्त्व अधिक माना गया है।

२६. पूर्व-रागों की विशेषता आरोह में और उत्तर-रागों का चमत्कार अवरोह में दिखाई देता है।

२७. प्राय: प्रत्येक ठाठ से पूर्व-राग एवं उत्तर-राग उत्पन्न हो सकते हैं।

२८. गम्भीर प्रकृति के रागों में षड्ज, मध्यम या पंचम का विशेष महत्त्व होता है तथा मन्द्र-सप्तक में उनका अधिक महत्त्व माना गया है; किन्तु क्षुद्र प्रकृति के रागों में यह बात नहीं पाई जाती।

२९. सन्धिप्रकाश रागों के द्वारा करुण व शान्त रस 'रे–ग–ध' तीव्र वाले रागों से शृंगार व हास्य-रस और कोमल 'ग-नि' वाले रागों द्वारा वीर, रौद्र व भयानक रसों का परिपोषण होता है।

३०. एक ठाठ के रागों से दूसरे ठाठों के रागों में प्रवेश करते समय परमेल-प्रवेशक राग गाए-बजाए जाते हैं।

३१. सन्धिप्रकाश राग सूर्योदय और सूर्यास्त के समय गाए-बजाए जाते हैं और इनके बाद तीव्र 'रे–ग–ध' वाले राग गाए-बजाए जाते हैं या कोमल 'ग–नि' वाले राग गाए-बजाए जाते हैं।

३२. जिन रागों में कोमल 'नि' लगता है, जैसे काफी और खमाज ठाठ के राग, उनके आरोह में बहुधा तीव्र 'नि' का प्रयोग भी कर दिया जाता है।

३३. किसी राग में जब स्वर लगाए जाते हैं, तो वे अपने कम, अधिक या बराबर के परिमाण में लगकर दुर्बल, प्रबल या सम माने जाते हैं। 'दुर्बल' का अर्थ 'वर्जित' नहीं है।

३४. दो, तीन या चार स्वरों के समुदाय को 'तान' कहते हैं, 'राग' नहीं कह सकते।

३५. दोपहर बारह बजे के बाद तथा रात्रि को बारह बजे के बाद जो राग गाए-बजाए जाते हैं, उनमें क्रमशः 'सा–म–प' का प्राबल्य होता चला जाता है।

३६. दोपहर को गाए-बजाए जानेवाले रागों के आरोह में 'रे–ध' या तो लगते ही नहीं अथवा दुर्बल होते हैं। ठीक दोपहर के समय गाए-बजाए जानेवाले रागों में ऋषभ और निषाद स्वर खूब चमकते हैं।

३७. जिन रागों में 'सा–म–प' स्वर वादी होते हैं, वे प्राय: गम्भीर प्रकृति के राग होते हैं।

३८. प्रात:काल के रागों में कोमल 'रे–ध' की प्रबलता रहती है और सायंकाल के रागों में तीव्र 'ग–नि' अधिक दिखाई देते हैं।

३९. 'ऩिसारे॒ग,' यह स्वर-समुदाय शीघ्रतापूर्वक सन्धिप्रकाशत्व सूचित करता है।

४०. पूर्व-रागों का स्वरूप आरोह में तथा उत्तर-रागों का स्वरूप अवरोह में विशेष रूप से खुलकर दिखाई देता है।

राग में वादी स्वर का महत्त्व

प्रयोगे बहुलः स्वर वादी राजऽत्र गीयते ।

शास्त्रों की उक्त व्याख्या के अनुसार वादी स्वर की स्थिति राग-रूपी राज्य में राजा के समान मानी गई है। वादी स्वर का प्रयोग राग में अन्य स्वरों की अपेक्षा अधिक होता है। वादी स्वर पर ही प्रत्येक राग की विशेषता निर्भर रहती है। इसी कारण वादी स्वर को 'जीव' या 'अंश' स्वर भी कहते हैं। वादी स्वर का प्रयोग राग में कुशल गायक भिन्न-भिन्न प्रकारों से करते हैं। राग में वादी स्वर को बार-बार दिखाना, वादी स्वर से ही राग का आरम्भ करना, वादी स्वर पर ही राग समाप्त करना, राग के प्रमुख भागों में वादी स्वर को बार-बार भिन्न-भिन्न स्वरों के साथ दिखाना तथा कभी-कभी वादी स्वर को बड़ी देर तक लम्बा करके गाना इत्यादि विविध ढंगों से वादी स्वर का प्रदर्शन रागों में किया जाता है। उदाहरणार्थ बिहाग में गान्धार वादी स्वर है, तो उसका प्रयोग इस प्रकार देखने में आएगा :—

ग, रेसा, ऩिसाग, मग, प, गमग, निप, गमग, ऩिसागमध पगमग, सा' इत्यादि।

इसी प्रकार मारवा में वादी स्वर कोमल ऋषभ का प्रयोग देखिए :—

ऩिऱेऽऽसा, ऩिऱेऽऽ, गऱेऽऽ, गमंगऱे, मंगऱेऽऽसा' इत्यादि। यहाँ पर कोमल ऋषभ को लम्बा खींचकर उसका वादित्व कितनी सुन्दरता से प्रकट किया गया है।

वादी स्वर के प्रयोग से रागों के गान-वादन का समय भी जानने में सुविधा मिलती है। जब किसी राग में सप्तक के पूर्वांग में से कोई स्वर वादी होता है, तो उसे पूर्वांगवादी राग कहते हैं और उसके गाने का समय प्राय: दिन-रात के पूर्वांग-समय अर्थात् दिन के बारह बजे से रात्रि के बारह बजे तक के बीच होता है; जैसे भीमपलासी, पीलू, पूर्वी, मारवा, यमन, भूपाली, बागेश्री इत्यादि रागों में पूर्वांगवादी स्वर होने के कारण ये राग उपर्युक्त समय (पूर्वांग-समय) में ही गाए-बजाए जाते हैं।

इसी प्रकार किसी राग में जब कोई वादी स्वर सप्तक के उत्तरांग में से होता है, तो वह दिन-रात के उत्तरांग भाग अर्थात् रात्रि के बारह बजे से दिन के बारह बजे तक के समय में से किसी समय का राग होता है; भैरव, भैरवी, बिलावल, कालिंगड़ा, सोहनी, आसावरी इत्यादि। वादी स्वर की एक विशेषता यह भी है कि किसी राग में केवल वादी स्वर बदल देने से ही राग भी बदल जाता है, चाहे उन रागों में लगनेवाले स्वर लगभग एकसे ही हों; जैसे भीमपलासी और धनाश्री, ये दोनों राग काफी ठाठ से उत्पन्न हुए हैं और दोनों में ही 'ग-नि' कोमल प्रयुक्त होते हैं, किन्तु इन रागों में केवल वादी स्वर के उलट-फेर से ही राग परिवर्तित हो जाता है। जब भीमपलासी गाया जाएगा तो उसमें मध्यम स्वर अधिक दिखाया जाएगा, क्योंकि भीमपलासी में मध्यम वादी है; और जब धनाश्री गाया जाएगा, तो पंचम स्वर अधिक दिखाया जाएगा, क्योंकि धनाश्री में पंचम वादी है। इससे स्पष्ट हो जाता है कि केवल वादी स्वर को बदल देने से ही राग भीमपलासी से धनाश्री हो गया।

किसी राग का कोई स्वर-समुदाय देखकर उसमें वादी स्वर पहचानने से उस राग का नाम भी ध्यान में आ जाता है; जैसे 'सा, गमध, निध सांनिधप, गमध, प, धप, गमरे, सा।' इसमें धैवत स्वर विशेष रूप से चमककर अपना वादित्व प्रकट कर रहा है, अतः यह हमीर राग है, क्योंकि हमीर में वादी धैवत माना जाता है।

वादी स्वर की सहायता से राग का विस्तार तथा राग की बढ़त भी दिखाई जाती है; जैसे मालकोंस में मध्यम स्वर वादी है, तो देखिए, उसके स्वर-विस्तार में 'म' किस तरह समाया हुआ है :—

'सा, नि़सा, म, मग॒, मध॒, नि॒ध॒, मग॒, ग॒मग॒, सा। साम, सामग॒म, ध॒पग॒म, नि॒ध॒मग॒, म' इत्यादि।

राग में वादी स्वर का महत्त्व बताते हुए ऊपर जो वर्णन किया गया है, उसके अनुसार निम्नलिखित सात बातें विद्यार्थियों को याद रखनी चाहिए :—

१. वादी स्वर राग का प्रधान स्वर होता है और राग-रूपी राज्य में उसका स्थान राजा के बराबर है।

२. वादी स्वर को ही संगीत-शास्त्रों में 'जीव स्वर भी कहा है, अर्थात् इसी स्वर में राग के प्राण होते हैं।

३. वादी स्वर से राग के गान-वादन का समय जाना जा सकता है।

४. केवल वादी स्वर को बदल देने से कोई-कोई राग भी बदल जाता है, चाहे अन्य स्वर दोनों रागों में एकसे ही हों।

५. वादी स्वर पर राग का सौन्दर्य निर्भर है।

६. किसी स्वर-समुदाय में वादी स्वर को पहचानकर यह बताया जा सकता है कि यह अमुक राग है।

७. राग में लगनेवाले अन्य सब स्वरों की अपेक्षा वादी स्वर अधिक प्रयोग में में आता है।

राग में विवादी स्वर का प्रयोग

शास्त्र-नियम के अनुसार रागों में विवादी स्वरों का प्रयोग वर्जित है, किन्तु उनका अल्पत्व रखते हुए थोड़ा-सा प्रयोग तान इत्यादि में करने की आज्ञा भी शास्त्रों में पाई जाती है, जैसाकि 'राग-मंजरी' में कहा है :—

विवादी तु सदा त्याज्यः क्वचित्तानक्रियात्मकः।

इस प्रकार विवादी स्वर के विषय में प्राचीन ग्रन्थकारों की धारणा विचित्र रूप से पाई जाती है। इसी का उल्लेख करते हुए 'लक्ष्य-संगीत' में कहा गया है :—

विवादीस्वरव्याख्याने रत्नाकरप्रपंचितम्।
रहस्यं किंचिदप्यासीत् भिन्नं मर्मविदाम्मते॥

इससे सिद्ध होता है कि विवादी स्वर की व्याख्या 'रत्नाकर' आदि ग्रन्थों में रहस्यपूर्ण ढंग से भिन्न-भिन्न रूपों में पाई जाती है। कई ग्रन्थों में विवादी स्वर को राग का दुश्मन भी 'शत्रुतुल्याः विवादिनः' कहकर बताया गया है।

इतना सब होते हुए भी भातखंडेजी का मत विवादी स्वर के बारे में यह था कि यदि कुशलतापूर्वक कण के रूप में विवादी स्वर का प्रयोग कर दिया जाए और उससे राग की रंजकता बढ़ती हो, तो 'मनाक् स्पर्श' के नाते यह कृत्य क्षम्य समझा जाएगा। उन्होंने 'अभिनव राग-मंजरी' में लिखा है :—

सुप्रमाणयुतो रागे विवादी रक्तिवर्धकः।
यथेषत्कृष्णवर्णेन शुभ्रस्यातिविचित्रता॥

'संगीत-समय-सार' ग्रन्थ में विवादी स्वर की व्याख्या 'प्रच्छादनीयो लोप्यो वा' इस प्रकार की गई है। प्रच्छादन का अर्थ है 'मनाक् स्पर्श', अर्थात् किंचित् विवादी स्वर का प्रयोग। इस प्रकार आजकल हम देखते भी हैं कि कुशल गायक अपने राग में विवादी स्वर का किंचित् प्रयोग करके श्रोताओं से प्रशंसा प्राप्त कर लेते हैं और राग का स्वरूप भी नहीं बिगड़ने पाता, बल्कि उसमें कुछ और विचित्रता हो पैदा हो जाती है। किन्तु यह कार्य अत्यन्त सावधानी से ही करना चाहिए। इसके विरुद्ध यदि गायक चतुर न हुआ और बेढंगे तरीके से विवादी स्वर का प्रयोग कर बैठा, तो राग-हानि तो होगी ही, साथ ही वह श्रोताओं से निन्दा भी प्राप्त करेगा।

इसलिए विवादी स्वर का जब-कभी प्रयोग किया जाए, तो क्षणिक कण के रूप में या जलद तानों में ही करना शोभा देगा। इस मत का समर्थन 'राग-विबोध' में इस प्रकार मिलता है—'वर्ज्यस्वरोऽवरोहे द्रुतगीतो न रक्तिहरः' अर्थात् वर्जित स्वर द्रुत गीतों में सौन्दर्य को नष्ट नहीं करता।

वर्तमान समय में अनेक रागों में विवादी स्वरों का प्रयोग होने लगा है; जैसे हमीर, कामोद और गौड़सारंग राग में कोमल निषाद विवादी स्वर के नाते जब कण-स्पर्श या द्रुत लय की मीड़ के साथ प्रयुक्त किया जाता है, तो उस समय बड़ा अच्छा लगता है। इसी प्रकार केदार, छायानट रागों में तो विवादी स्वर (कोमल निषाद) का प्रचार इतना बढ़ गया है कि कभी-कभी श्रोतागण आश्चर्य-चकित हो जाते हैं। और, भैरवी की तो कुछ पूछिए ही मत; इसमें तो विवादी स्वर का प्रयोग आजकल इतना बढ़ गया है कि यह राग सात स्वरों की जगह बारह स्वरों का हो गया है। अर्थात् कोमल स्वरों के अतिरिक्त 'रे-ग-मं-ध-नि', इन तीव्र स्वरों का भी प्रयोग इसमें खूब खुलकर लोग करने लगे हैं। किन्तु विवादी स्वरों का अधिकता के साथ प्रयोग करना रागों के साथ अन्याय करना है।

विवादी स्वर आखिर विवादी ही है, अतः उसका प्रयोग सीमित रूप में और कुशलता के साथ करना उचित है।

राग-रागिनी-पद्धति

संगीत के कुछ प्राचीन ग्रन्थकारों ने रागों का वर्गीकरण राग, रागिनी, राग-पुत्र, राग-पुत्रवधू, इस प्रकार किया है। इसमें चार मतों का उल्लेख मिलता है—१. शिव-मत या सोमेश्वर-मत, २. भरत-मत, ३. कल्लिनाथ-मत और ४. हनुमत्-मत।

इन मतों के माननेवाले विद्वानों में मुख्य छह रागों के बारे में भी मतभेद था, अर्थात् कुछ विद्वान् अपने छह राग किसी एक प्रकार से मानते थे, तो कुछ विद्वान् अपने छह राग किसी भिन्न प्रकार से मानते थे।

शिव-मत (सोमेश्वर-मत) के छह राग और छत्तीस रागिनियाँ

राग	प्रत्येक राग की छह रागिनियाँ
१. श्री	१. मालवी, २.त्रिवेणी, ३.गौरी, ४.केदारी, ५.मधुमाधवी, ६. पहाड़िका
२. वसन्त	१. देशी, २. देवगिरी, ३. वराटी, ४. तोड़ी, ५. ललिता, ६. हिन्दोली
३. पंचम	१.विभाषा, २.भूपाली, ३.कर्णाटी, ४.बड़हंसिका, ५.मालवी,६. पटमंजरी
४. मेघ	१.मल्लारी, २. सोरठी, ३.सावेरी, ४.कौशिकी, ५.गान्धारी६.हरश्रृंगारा
५. भैरव	१. भैरवी, २.गुर्जरी, ३.रामकिरी, ४.गुणकिरी, ५. बंगाली, ६. सैन्धवी
६. नटनारायण	१.कामोदी, २.आभीरी, ३.नाटिका,४.कल्याणी,५.सारंगी, ६. नट्टहम्बीरा

शिव-मत को माननेवाले के लिए दामोदर पंडित कृत 'संगीत-दर्पण' ग्रन्थ महत्त्वपूर्ण माना जाता है। शिव-मत व कल्लिनाथ-मत में राग-संख्या छह मानकर प्रत्येक की छह-छह रागिनियाँ मानी हैं, किन्तु अन्य मतों में छह राग मानकर उनकी पाँच-पाँच रागिनियाँ मानी हैं। अर्थात् शिव-मत व कल्लिनाथ-मत छह राग, छत्तीस रागनियों के सिद्धान्त को मानते हैं और भरत-मत तथा हनुमन्मत में छह राग, तीस रागिनियों का सिद्धान्त स्वीकार किया गया है।

भरत-मत के छह राग और तीस रागिनियाँ

राग	प्रत्येक राग की पाँच रागिनियाँ
१. भैरव	१. मधुमाधवी, २. ललिता, ३. बरारी, ४. भैरवी, ५. बहुली।
२. मालकौंस	१. गुजरी, २. विद्यावती, ३. तोड़ी, ४. खम्बावती, ५. ककुभ।

३. हिंडोल	१. रामकली, २. मालवी, ३. ग्रास वरी, ४. देवारी, ५. केको।
४. दीपक	१. केदारी, २. गौरा, ३. रुद्रावती, ४. कामोद, ५. गुजरी।
५. श्री	१. सैन्धवी, २. काफी, ३. ठुमरी, ४. विचित्रा, ५. सोहनी।
६. मेघ	१. मल्लारी, २. सारंगा, ३. देशी, ४. रतिवल्लभा, ५. कानरा।

कल्लिनाथ-मत के छह राग और छत्तीस रागिनियाँ

राग	प्रत्येक राग की छह रागनियाँ
१. श्री	१. गौरी, २.कोलाहल, ३.धवला, ४. वरोराजी, ५.मालकोंस ६.गान्धार
२. पंचम	१.त्रिवेणी, २ हस्तन्तरेतहा, ३.ग्रहीरी, ४.कोकभ,५.वेरारी, ६.ग्रासावरी
३. भैरवी	१. भैरवी, २. गुजरी, ३. बिलावली, ४. बिहाग, ५. कर्नाट, ६. कानड़ा
४. मेघ	१. बंगाली, २.मधुरा, ३. कामोद, ४.धनाश्री, ५. देवतीर्थी, ६.दिवाली
५. नटनारायण	१. त्रिबंकी, २.तिलंगी, ३.पूर्वी, ४. गान्धारी, ५.रामा, ६.सिन्धमल्लारी
६. वसन्त	१. ग्रन्धाली, २.गुणकली, ३.पटमंजरी, ४.गौंडगिरी, ५.धाँकी ६.देवसाग

हनुमत्-मत के छह राग और तीस रागिनियाँ

राग	प्रत्येक राग की पाँच रागिनियाँ
१. भैरव	१. बंगाली, २. सैन्धवी, ३. भैरवी, ४. बरारी, ५. मदमादी।
२. मालकोंस	१. तोड़ी, २. गुणकरी, ३. गौरी, ४. खम्बावती, ५. ककुभ।
३. हिंडोल	१. रामकली, २. देशाख, ३. ललिता, ४. बिलावली, ५. पटमंजरी।
४ दीपक	१. देशी, २. कामोदी ३. केदारी, ४. कानड़ा, ५. नटिका।
५. श्री	१. मालश्री, २. ग्रासावरी, ३. धनाश्री, ४. वसन्ती, ५. मारवा।
६. मेघ	१. तनक २. मल्लारी, ३. गुजरी, ४. भोपाली, ५. देशकार।

इनके ग्रतिरिक्त प्राचीन ग्रन्थकारों ने प्रत्येक रागिनी के पुत्र और पुत्रवधू मानकर परिवार विस्तृत किया है।

जिस समय उक्त मत प्रचलित थे, उस समय राग-रागिनियों का जो स्वरूप था, वह ग्राधुनिक प्रचलित रागों से नहीं मिलता, ग्रतः उनको ग्राधुनिक ठाठ-पद्धति के

रागों में लागू नहीं किया जा सकता है। फिर भी संगीत के विद्यार्थियों को अपनी प्राचीन राग-रागिनी-पद्धति के बारे में जानकारी रखना आवश्यक है।

प्राचीन राग-रागिनी-पद्धति का खंडन करते हुए सर्वप्रथम (१८१३ ई० में) पटना के मुहम्मदरजा ने अपने ग्रन्थ 'नगमाते-आसफी' में लिखा कि प्राचीन राग-रागिनी-पुत्र-पुत्रवधू की कल्पना गलत और अवैज्ञानिक है, क्योंकि राग और उनकी रागिनियों के स्वरों में समता नहीं पाई जाती। अतः मुहम्मदरजा ने बिलावल ठाठ को शुद्ध ठाठ मानकर सर्वप्रथम अपना एक नवीन मत प्रचलित किया। उनका कथन है कि राग और उनकी रागिनियों के स्वरों में कुछ सामंजस्य अवश्य होना चाहिए; अतः इन्होंने छह राग और तीस रागिनियों का अपना नवीन मत तत्कालीन संगीतज्ञों के सम्मुख रखा। उन्होंने हनुमत्-मत से मिलते-जुलते राग-रागिनियों के नामों पर नवीन स्वरों का निर्माण किया। रजा साहब की यह पद्धति भी बहुत समय तक प्रचलित रही, किन्तु बाद में आधुनिक ग्रन्थकारों द्वारा यह पद्धति तथा प्राचीन राग-रागिनियों की सभी पद्धतियाँ छोड़कर ठाठ-राग-पद्धति चालू होगई।

प्राचीन ग्रन्थकारों ने संगीत की उत्पत्ति देवी-देवताओं से है, अतः इन राग-रागिनियों को भी उन्होंने पुरुष राग और स्त्री रागिनी के रूप में देव-देवी-स्वरूप ही मानकर वर्गीकरण किया। उनके स्वरूप भी वर्णन किए गए, जिनके आधार पर राग-रागिनियों के चित्र भी बन गए, जो आज तक पाए जाते हैं।

जिस युग में जैसे रागों का प्रचार होता है, उसी के आधार पर उस युग के विद्वान् संगीत-शास्त्र की रचना करते हैं, किन्तु संगीत परिवर्तनशील रहा है। प्राचीन ग्रन्थों में रागों के वर्णित स्वरूप या स्वर आज के प्रचलित राग-स्वरों से मेल नहीं खाते। उदाहरण के लिए राग मालकोंस को लीजिए। प्राचीन शास्त्रों में यह मालव-कौशिक, मालकोश, मालकोंस आदि नामों से मिलता है। संगीतदर्पणकार ने मालव-कौशिक के स्वर 'सा रे ग म प ध नि सां' दिए हैं। 'हृदयप्रकाश' में 'सा रे ग ध नि सां, सां नि ध म ग रे सा' इस प्रकार बताया है। किन्तु आजकल जो मालकोंस राग प्रचलित है, वह 'रे–प' वर्जित होकर 'सा <u>ग</u> म <u>ध</u> <u>नि</u> सां, सां <u>नि</u> <u>ध</u> म <u>ग</u> सा', इस प्रकार है। ऐसे ही अन्य बहुत-से रागों के नाम तो आजकल मिलते हैं, किन्तु उनकी स्वरावली बिलकुल दूसरे ही रूप में है। इन्हीं सब कारणों से प्राचीन राग-रागिनी-पद्धति धीरे-धीरे पीछे छूटती रही और ठाठ-पद्धति से रागों की उत्पत्ति की गई। आजकल ठाठ-राग-पद्धति ही भारत में प्रचलित तथा मान्य है।

गायकों के गुण-अवगुण

संगीतं मोहिनीरूपमित्याहुः सत्यमेव तत् ।
योग्यरसभावभाषारागप्रभृतिसाधनैः ॥
गायकः श्रोतृमनसि नियतं जनयेत् फलम् ।

—लक्ष्य-संगीत

योग्य रस, भाव तथा भाषांग की उचित रूप से साधना करते हुए जो गायक गाता है, उसका संगीत मोहनी-रूप होकर श्रोताओं के मन को जीतने में अवश्य ही सफल होता है । इसीलिए हमारे प्राचीन ग्रन्थकारों ने गायकों के गुणावगुणों का वर्णन बड़े सुन्दर ढंग से किया है । उन नियमों पर ध्यान देकर जो संगीतज्ञ अपनी कला का प्रदर्शन करता है, उसके गाने का रंग महफिल में शीघ्र ही जम जाता है । इसके विरुद्ध कुछ गायक ऐसे देखे जाते हैं, जिन्होंने या तो 'गायकों के गुणावगुणों' का शास्त्रों में मनन ही नहीं किया है अथवा वे उन्हें जानते हुए भी अपनी आदत से मजबूर होकर उनपर ध्यान नहीं देते । इसका परिणाम यह होता है कि उनकी भद्दी हरकतें (मुद्राएँ) महफिल में रंग जमाने के बजाए हास्य का वातावरण पैदा कर देती हैं। श्रोताओं में सभी तरह के व्यक्ति होते हैं। कोई श्रोता गीत की कविता पर ध्यान देता है, कोई गायक के सुरीलेपन और लयकारी को देखता है और कोई गायक-गायिका के रूप रंग तथा उसके हाव-भाव प्रदर्शित करने के ढंग में ही आनन्द लेता है। इस प्रकार संगीत-कला के सभी अंगों से भिन्न-भिन्न प्रकार के श्रोता अपनी-अपनी रुचि के अनुकूल रसास्वादन करते हैं। ऐसी हालत में यह निश्चय ही है कि गायक के गुण-अवगुण महफिल में रंग बनाने या बिगाड़ने में कितने सहायक होते हैं। अतः प्रत्येक संगीत-विद्यार्थी को आरम्भ से ही ध्यान देकर गायकों के गुण अपनाने चाहिए और अवगुणों से बचना चाहिए। आरम्भ में जैसी आदत पड़ जाती है, वह आसानी से नहीं छूटती। यदि शुरू में ही हाथ-पैर फेंक-फेंककर या टेड़ा मुँह करके भद्दे ढंग से दाँत दिखाकर गाने की आदत पड़ गई, तो उससे पीछा छुड़ाना मुश्किल हो जाएगा और इसका परिणाम यह होगा कि संगीत-समाज में उसे सम्मान और सफलता कदापि नहीं मिलेगी। गायकों की स्थिति बताते हुए लक्ष्यसंगीतकार ने ठीक ही लिखा है :—

भाषाऽव्यक्ता हावभावाः प्रतीयन्ते विसंगताः ।
व्यस्ताश्चेष्टास्तथाऽऽक्रोशाः केवलम् कर्कशा मताः ॥
एतादृग्गायनान्नस्यात् परिणामो ह्यभीप्सितः ।
ततो हास्यरसस्यैव केवलम् स्यात् समुद्भवः ॥७३॥

—लक्ष्य-संगीत

उपर्युक्त श्लोक का भावार्थ यही है कि भद्दे ढंग से चिल्लाकर और ऊटपटांग हाव-भाव दिखाने से महफिल में केवल हास्य-रस का ही वातावरण पैदा होता है।

'संगीत-रत्नाकर' में गायक के गुणों के बारे में इस प्रकार लिखा है :—

गायक के गुण

हृद्यशब्दः सुशारीरो ग्रहमोक्षविचक्षणः ।
रागरागांगभाषांगक्रियांगोपांगकोविदः ॥
प्रबन्धगाननिष्णातो विविधालप्तितत्त्ववित् ।
सर्वस्थानोच्चगमकेष्वनायासलसद्गतिः ॥
आयत्तकंठस्तालज्ञः सावधानो जितश्रमः ।
शुद्धच्छायालागाभिज्ञः सर्वकाकुविशेषवित् ॥
अपारस्थायसंचारः सर्वदोषविवर्जितः ।
क्रियापरोऽजस्रलयः सुघटो धारणान्वितः ॥
स्फूर्जन्निर्जवनो हारिरहः कृद्भजनोद्धुरः ।
सुसम्प्रदायो गीतज्ञैर्गीयते गायनाग्रणीः ॥

भवार्थ इस प्रकार है —

१. हृद्यशब्द—जिसका शब्द अर्थात् आवाज मधुर व सुरीली हो।

२. सुशारीर—जिसकी वाणी में अभ्यास के बिना राग-स्वरूप व्यक्त करने का धर्म (तासीर) हो।

३. ग्रहमोक्षविचक्षण—जो ग्रह और न्यास के नियमों को जाननेवाला हो (ग्रह, की विवेचना इसी पुस्तक में अन्यत्र दी गई है)।

४. रागरागांगकोविद—जो भाषांगक्रियांगोपांग राग-रागांग इत्यादि का जानकार हो (देशी संगीत में रागांग, भाषांग, क्रियांग और उपांग, ये चार भेद कहे गए हैं। उनका विवेचन इस पुस्तक में अन्यत्र दिया गया है)।

५. प्रबन्धगाननिष्णात—जो प्रबन्ध-गान में प्रवीण हो (प्रबन्ध एक प्रकार की प्राचीन गान-शैली है, जो वर्तमान समय में प्रचलित नहीं है)।

६. विविधालप्तितत्त्ववित्—जो भिन्न-भिन्न आलप्तियों के तत्त्व का ज्ञाता हो, अर्थात् आलाप करने की गूढ़ बातें (राग का आविर्भाव, तिरोभाव दिखाने की कला) जानता हो।

७. सर्वस्थानोच्चगमकेष्वनायासलसद्गति—जो सब स्थानों को गमक सहज में ही ले सकता हो, अर्थात् मन्द्र, मध्य और तार, इन तीनों स्थानों में गमकों का प्रयोग कर सके।

८. आयत्तकंठ—जिसका कंठ (गला) स्वाधीन हो, अर्थात् खुली हुई आवाज हो।

९. **तालज्ञ**—जो ताल का ज्ञान रखनेवाला हो।

१०. **सावधान**—जो एकाग्रचित्त होकर सावधानीपूर्वक गाए।

११. **जितश्रम**—जो श्रम को जीतनेवाला हो, अर्थात् गाते समय यह अनुभव न हो कि गाने में बड़ा परिश्रम करना पड़ रहा है।

१२. **शुद्धच्छायालगाभिज्ञ**—जो शुद्ध, छायालग और संकीर्ण; इन राग-भेदों को जाननेवाला हो (इन राग-भेदों की परिभाषा इस पुस्तक में अन्यत्र दी गई है)।

१३. **सर्वकाकुविशेषवित्**—जो संगीत-शास्त्रों में वर्णित षड्विध यानी छह प्रकार के काकुओं का प्रयोग करने की जानकारी रखता हो।*

१४. **अपारस्थायसंचार**—जो गाते समय असंख्य स्थाय अर्थात् रागों के भाग या हिस्से तैयार करके सुनाने का ज्ञान रखता हो।

१५. **सर्वदोषविवर्जित**—जो सब प्रकार के दोषों से रहित हो, अर्थात् जिसमें कोई दोष न हो।

१६. **क्रियापर**—जो अभ्यास में दक्ष हो, अर्थात् रियाजी हो।

१७. **अजस्रलय**—जो अत्यन्त लयदार हो।

१८. **सुघट**—जो सुघड़ (सुन्दर) हो, अर्थात् जिसे देखकर श्रोता घृणा न करें।

१९. **धारणान्वित**—जो धारणावान् हो।

२०. **स्फूर्जन्निर्जवन**—जो 'निर्जवन' (स्थाय का एक विशेष भाग) को गाते समय मेघ-गर्जना के समान गम्भीर आवाज निकालनेवाला हो।

२१. **हारिरहः कृद्भजनोद्धुर**—जो अपने गायन से श्रोताओं के मन को मोहित करनेवाला हो।

२२. **सुसम्प्रदाय**—जिसकी गुरु-परम्परा उच्च श्रेणी की हो, अर्थात् जो ऊँचे सम्प्रदाय का हो।

गायक के अवगुण

सन्दष्टोद्घृष्टसूत्कारिभीतशंकितकम्पिताः ।
कराली विकलः काकी वितालकरभोद्भडाः ॥
झोंबकस्तुम्बकी वक्री प्रसारी विनिमीलकः ।
विरसापस्वराव्यक्तस्थानभ्रष्टाव्यवस्थिताः ॥
मिश्रकोऽनवधानश्च तथाऽन्यः सानुनासिकः ।
पंचविंशतिरित्येते गायना निन्दिता मताः ॥

संगीत-रत्नाकर

---

* 'संगीत-रत्नाकर' में छह प्रकार के काकुओं के नाम इस प्रकार दिए हैं—१. स्वर-काकु, २. राग-काकु, ३. देश-काकु, ४. क्षेत्र-काकु, ५. अन्यराग-काकु, और ६. यन्त्र-काकु।

भावार्थ इस प्रकार है :—

१. सन्दष्ट—दाँत पीसकर गानेवाला हो।

२. उद्घृष्ट—जो नीरस, जोर से चिल्लाकर गानेवाला हो।

३. सूत्कारी—जो गाते समय सूत्कार करनेवाला हो।

४. भीत—जो भयभीत होकर गानेवाला हो, अर्थात् जो डरते-डरते गाए।

५. शंकित—जो आत्मविश्वास-रहित होकर गाए, अर्थात् जो घबराकर जल्दबाजी से गानेवाला हो।

६. कम्पित—जो काँपती हुई आवाज से गानेवाला हो।

७. कराली—जो भयंकर मुँह फाड़कर गानेवाला हो।

८. विकल—जिसके गाने में श्रुतियाँ कम या अधिक लग जाती हों, अर्थात् जिसके स्वर अपने उचित स्थान पर न लगते हों।

९. काकी—जो कौए के समान कर्कश आवाजवाला हो।

१०. विताल—जो बेताला गानेवाला हो।

११. करभ—मुंडी ऊँची करके गानेवाला हो।

१२. उद्भड—जो भेड़ की तरह मुँह फाड़कर गानेवाला हो।

१३. झोंबक—जो गले और मुँह की नसें फुलाकर गानेवाला हो।

१४. तुम्बकी—जो तूँबे के समान मुँह फुलाकर गानेवाला हो।

१५. वक्री—जो मुंडी टेढ़ी करके गानेवाला हो।

१६. प्रसारी—जो हाथ-पैर फेंक-फेंककर या हाथ-पैर पटककर गानेवाला हो।

१७. विनिमीलक—जो आँखें बन्द करके या आँखें मीचकर गानेवाला हो।

१८. विरस—जिसके गाने में रस न हो, अर्थात् नीरस गानेवाला हो।

१९. अपस्वर—जिसके गाने में वर्जित स्वर भी लग जाए।

२०. अव्यक्त—गाते समय जिसका शब्दोच्चारण ठीक न हो।

२१. स्थान-भ्रष्ट—जिसकी आवाज योग्य स्थान पर न पहुँचती हो।

२२. अव्यवस्थित—जो बेढंगे तरीके से अर्थात् अव्यवस्थित रीति से गानेवाला हो।

२३. मिश्रक—जो राग मिश्र करके (रागों को मिलाकर) गानेवाला हो।

२४. अनवधान—जो लापरवाही से गानेवाला हो।

२५. सानुनासिक—जो नाक के स्वर से गानेवाला हो, अर्थात् जो गाते समय नाक से आवाज निकाले।

इन समस्त दोषों से अच्छे गायक को बचना चाहिए, ऐसा शास्त्र-विधान है। यहाँ पर यह प्रश्न उठ सकता है कि इन पच्चीस दोषों में कुछ दोष ऐसे भी तो हैं, जो अनेक अच्छे गायकों में पाए जाते हैं; जैसे उन्नीस और तेईस संख्यावाले दोष। अर्थात् बहुत-से अच्छे गायक अपने गायन में वर्जित स्वर प्रयोग करते देखे जाते हैं और रागों को मिश्र करके यानी मिलाकर भी गाते हैं।

इसका उत्तर यही दिया जा सकता है कि कुशल गायक जब-कभी वर्जित स्वर का प्रयोग राग में करते हैं तो वे विवादी स्वर के नाते ऐसी कुशलता से उसे लगाते हैं कि राग का सौन्दर्य बिगड़ने के बजाए और खिल उठता है; अतः उपर्युक्त नियम का अपवाद समझते हुए उनका यह कृत्य 'गायक-अवगुण'-श्रेणी में नहीं आता। 'समरथ को नहिं दोष गुसाईं' की उक्ति के अनुसार वे दोषी नहीं ठहराए जा सकते, क्योंकि उनको यह सामर्थ्य प्राप्त है कि वे राग में विकृत स्वर लगाकर भी उसके द्वारा एक विशेषता दिखा दें। इसके विरुद्ध साधारण गायक यदि ऐसे कृत्य करने लगेगा, तो वह राग-रूप को ही बिगाड़ बैठेगा। इसी प्रकार रागों में मिश्रण करने के लिए भी कुशल और समर्थ संगीतज्ञ दोष-मुक्त किए जा सकते हैं, क्योंकि वे जब किसी एक राग में दूसरे राग के स्वर दिखाते हैं या मिलाते हैं, तो उस मुख्य राग का रूप नहीं बिगड़ने देते, प्रत्युत वहाँ पर अन्य राग की थोड़ी-सी छाया लाकर 'तिरोभाव' दिखाते हुए मुख्य राग को कुछ देर के लिए छिपाकर फिर आविर्भाव दारा उसे प्रकट करके अपना कौशल दिखाते हैं। इसी कार्य को एक साधारण गायक करने लगे, तो वह कठिनाई में पड़ जाएगा और मुख्य राग का रूप भी नष्ट कर बैठेगा। इसीलिए शास्त्रकारों ने इसे भी दोष माना है। अतः शास्त्रों में वर्णित उपर्युक्त गुण-अवगुणों पर संगीत-विद्यार्थियों को पूरा ध्यान देना चाहिए।

नायक-गायक आदि के भेद

नायक—जो प्राचीन तथा नवीन, दोनों प्रकार के संगीत का पूर्ण ज्ञाता है और गुरु-परम्परा से मिली हुई शिक्षा के अनुसार ताल और स्वर में बँधी हुई चीजें शुद्ध रूप से गाता-बजाता है, उसे 'नायक' कहते हैं एवं उसके द्वारा प्रदर्शित की हुई कला को 'नायकी' कहते हैं।

गायक—जो गुरु-परम्परा से बँधी हुई चीजों को या नायक द्वारा प्रदर्शित संगीत में अपनी बुद्धि से अलंकार एवं तानों का प्रयोग करके उसमें सौन्दर्य एवं विचित्रता पैदा करके गाता है, उसे 'गायक' कहते हैं और उसके द्वारा जो कला प्रदर्शित होती है, उसे 'गायकी' कहते हैं।

कलावन्त—कलावन्त का मुख्य गुण है 'क्रिया-सिद्धि'। जिसके नित्य-प्रति के अभ्यास में गला और हाथ खूब तैयार हों, जो ध्रुवपद-धमार का पूर्ण ज्ञाता हो और कुशलतापूर्वक गाकर श्रोताओं का मनोरंजन कर सके, उसे 'कलावन्त' कहते हैं।

गन्धर्व—जो मार्ग-संगीत को गा-बजा सकता हो तथा राग-रागिनियों की भी पूर्ण जानकारी रखता हो, उसे 'गन्धर्व' कहते हैं।

पंडित—जिसे गान-शास्त्र का तो पूर्ण ज्ञान हो, किन्तु गान-कला अर्थात् क्रियात्मक संगीत का साधारण ज्ञान हो, उसे संगीत-कला का 'पंडित' कहते हैं।

संगीत-शास्त्रकार—जिसे संगीत की प्राचीन और नवीन पद्धति की जानकारी हो; संगीत का पूर्व-इतिहास, प्राचीन और अर्वाचीन शुद्ध सप्तकों का ज्ञान हो; प्राचीन और आज की गान-पद्धति का अन्तर प्रकट करने की क्षमता रखता हो; गीत, प्रबन्ध, वाद्यों के प्रकार, ताल, नृत्य का इतिहास अपनी लेखनी द्वारा प्रकट कर सके एवं संगीत का वर्तमान स्वरूप तथा भविष्य में उसकी उन्नति पर अपने योग्य विचार प्रकट करके संगीत-कला का आदर्श उपस्थित कर सके और प्राचीन तथा आधुनिक संगीत-पद्धति पर नवीन ग्रन्थों का निर्माण कर सके, उसे 'संगीत-शास्त्रकार' कहते हैं।

संगीत-शिक्षक—जो शान्त वृत्ति से विद्यार्थी को संगीत-शिक्षा दे सके और उसकी कठिनाइयों को जानकर, उसकी आवाज का धर्म, ग्रहण-शक्ति तथा रुचि पर ध्यान देकर सहज और सरल मार्ग से समझाने-पढ़ाने की क्षमता रखता हो, उसे 'संगीत-शिक्षक' कहते हैं। संगीत-शिक्षक भले ही गायकों की महफिल में बैठकर अपना रंग न जमा सके, किन्तु उसमें अच्छे संगीत-विद्यार्थी तैयार करने का गुण अवश्य होना चाहिए।

कव्वाल—जो गायक गजल, दादरा, कव्वाली इत्यादि गाता है, उसे 'कव्वाल' कहा जाता है।

अताई गायक—जो व्यक्ति किसी एक उस्ताद को अपना उस्ताद या गुरु न मानकर शुद्ध रूप से नियमित संगीत-शिक्षा नहीं लेते, बल्कि इधर-उधर जहाँ से भी प्राप्त

हुआ, देख-सुनकर गाने-बजाने लगते है और शास्त्र का ज्ञान नहीं रखते, उन्हें 'अताई गायक' कहा जाता है।

ढाढ़ी गायक—जो विशुद्ध गायन के साथ-साथ शास्त्र का भी अच्छा ज्ञान रखते हैं, वे 'ढाढ़ी गायक' कहलाते हैं।

कथक—नृत्य-संगीत की शिक्षा देनेवाले वे व्यवसायी व्यक्ति, जिनके यहाँ कई पीढ़ियों से यही कार्य होता आया है, 'कथक' या 'ढाढ़ी' कहलाते हैं।

उत्तम वाग्गेयकार

'वाक्' और 'गेय' से मिलकर 'वाग्गेय' शब्द बना है। 'वाक्' का अर्थ है पद्य-रचना और 'गेय' का अर्थ है स्वर-रचना; इन्हीं को 'मातु' और 'धातु' भी कहते हैं। अर्थात् जो स्वर-रचना और पद्य-रचना का ज्ञाता हो, ऐसे संगीत-विद्वान् को प्राचीन काल में वाग्गेयकार की संज्ञा दी जाती थी। पाश्चात्य विद्वान् उसे 'कम्पोजर' (रचयिता) कहते हैं। वाग्गेयकार को साहित्य और संगीत, दोनों का उतम ज्ञान होना अति आवश्यक है, तभी वह पद्य-रचना और स्वर-रचना कर सकता है। 'संगीत-रत्नाकर' में वाग्गेयकार के गुणों का विस्तृत वर्णन इस प्रकार किया गया है :—

वामान्तुरुच्यते गेय धातुरित्यभिधीयते ।
वाचं गेयं च कुरुते यः स वाग्गेयकारकः ॥१॥
शब्दानुशासनज्ञानमभिधानप्रवीणता ।
छन्दः प्रभेदवेदित्वमलंकारेषु कौशलम् ॥२॥
रसभावपरिज्ञानं देशस्थितिषु चातुरी ।
अशेषभाषाविज्ञानं कलाशास्त्रेषु कौशलम् ॥३॥
तूर्यत्रितयचातुर्यं हृद्यशारीरशालिता ।
लयतालकलाज्ञानं विवेकोऽनेककाकुषु ॥४॥
प्रभूतप्रतिभोद्भेदभाक्त्वं सुभगगेयता ।
देशीरागेष्वभिज्ञत्वं वाक्पटुत्वं सभाजये ॥५॥
रागद्वेषपरित्यागः सार्द्रत्वमुचितज्ञता ।
अनुच्छिष्टोक्तिनिर्बन्धो नूत्नधातुविनिर्मितिः ॥६॥
परचित्तपरिज्ञानं प्रबन्धेषु प्रगल्भता ।
द्रुतगीतविनिर्माणं पदान्तरविदग्धता ॥७॥
त्रिस्थानगमकप्रौढिर्विविधालप्तिनैपुणम् ।
अवधानं गुणैरेभिर्वरो वाग्गेयकारकः ॥८॥

पीछे के आठ श्लोकों का भावार्थ क्रमशः नीचे दिया जाता है:—

१. जो 'वाक्' यानी 'मातु' और 'गेय' यानी 'धातु' का कर्त्ता है, अर्थात् जो पद्य-रचना और स्वर-रचना का ज्ञाता है, वह वाग्गेयकार है।

२. जो व्याकरण-शास्त्र का ज्ञाता, शब्द-ज्ञाता, छन्द-ज्ञाता तथा साहित्य-शास्त्र में बताए हुए उपमादिक अलंकारों का ज्ञाता है।

३. जिसे शृंगार आदि रसों और विभावादिक भावों का उत्तम ज्ञान है और जो भिन्न-भिन्न देशों के रीति-रिवाजों तथा उनकी भाषाओं की जानकारी रखते हुए संगीतादि शास्त्रों में प्रवीण है।

४. जो गीत, वाद्य और नृत्य, इन तीनों में चतुर है; जिसे 'हृद्य' अर्थात् सुन्दर 'शारीर' प्राप्त हुआ है ('शारीर' एक पारिभाषिक शब्द है। जो व्यक्ति बिना कठोर परिश्रम के अथवा अभ्यास न करते हुए भी रागों की अभिव्यक्ति अर्थात् राग-प्रदर्शन में समर्थ होता है, उसके लिए कहा जाता है कि उसे 'हृद्य (मनोहर) शारीर' प्राप्त है), जो लय, ताल और कलाओं का ज्ञानी है और जिसे भिन्न-भिन्न स्वर-काकुओं अर्थात् स्वर-भेदों का ज्ञान है। ('काकु' भी एक पारिभाषिक शब्द है। इसका विशेष विवरण इस पुस्तक में आगे दिया गया है।)

५. जो प्रतिभावान् है (जिसे नई-नई कल्पनाएँ सूझती हैं), जिसे सुखदायक गायन करने की शक्ति प्राप्त है, देशी रागों का जिसे ज्ञान है और जो सभा में अपनी वाक्-पटुता (व्याख्यान-चातुरी) के बल से विजय प्राप्त कर सकता है।

६. जिसने राग-द्वेष का परित्याग करके सरसता धारण की है; उचित-अनुचित का जिसे ज्ञान है, अर्थात् किस स्थान पर कौनसी चीज उचित है जो यह जानता है; जिसमें स्वतन्त्र रचना करने की शक्ति है और जो नई-नई स्वर-रचना करने का ज्ञान रखता है।

७. जो दूसरों के मन का भाव जानने की शक्ति रखता है, जिसे प्रबन्धों का उच्च ज्ञान प्राप्त है, जो शीघ्रता से कविता रचने की सामर्थ्य रखता है और जिसमें भिन्न-भिन्न गीतों की छायाओं का अनुकरण करने की शक्ति है।

८. जो तीनों स्थानों (मन्द्र, मध्य, तार) में गमक लेने की शक्ति रखता है, जो रागालप्ति तथा रूपकालप्ति में निपुण है और जिसमें चित्त को एकाग्रता का गुण है।

उपर्युक्त सभी गुण जिस व्यक्ति में विद्यमान हैं, वही उत्तम वाग्गेयकार बताया गया है।

मध्यम और अधम वाग्गेयकार

मध्यम और अधम वाग्गेयकार के लिए शास्त्रों में इस प्रकार लिखा है:—

विद्धानोऽधिकं धातुं मातुमन्दस्तु मध्यमः ।
धातुमातुविद्प्रौढः प्रबन्धेष्वपि मध्यमः ॥
रम्यमातुविनिर्माताऽप्यधमो मन्दधातुकृत ।

भावार्थ—जो स्वर-रचना अर्थात् धातु में प्रवीण है और मातु (पद्य-रचना) में मन्दबुद्धि है, वह मध्यम श्रेणी का वाग्गेयकार है और जो स्वर-रचना अर्थात् स्वर-लिपि करने का ज्ञान रखता हो और पद्य-रचना (मातु) का भी अच्छा ज्ञाता हो, किन्तु भिन्न-भिन्न प्रकार के प्रबन्ध-गायन में कुशल न हो, वह भी मध्यम श्रेणी में हो आता है । **अधम वाग्गेयकार** वह है, जिसे केवल शब्द-ज्ञान तो हो, किन्तु पद्य-रचना (कविता) तथा स्वर-रचना (स्वरलिपि) का ज्ञान नहीं है ।

गीत, गान्धर्व, गान तथा मार्ग व देशी संगीत

रंजकः स्वरसन्दर्भो गीतमित्यभिधीयते ।
गान्धर्वगानमित्यस्य भेदद्वयमुदीरितम् ॥

—संगीत-रत्नाकर

गीत—स्वरों का वह समुदाय, जिससे मन का रंजन हो, 'गीत' कहलाता है। गीत के दो भेद हैं—१. गान्धर्व और २. गान।

गान्धर्व—जो संगीत स्वर्गलोक में गन्धर्वों द्वारा गाया जाता था और जिसका उद्देश्य मोक्ष-प्राप्ति है, उस वेदों के समान अपौरुषेय और अनादि संगीत को ही 'गान्धर्व' कहा गया है।

गान—जो संगीत वाग्गेयकारों ने अर्थात् संगीत के पंडितों ने अपने बुद्धि-कौशल से उत्पन्न किया तथा उसे लक्षणबद्ध करके देशी रागों में उसका उपयोग कर लोक-रंजन के निमित्त प्रचलित किया, वह 'गान' है।

'संगीत-रत्नाकर' के टीकाकार कल्लिनाथ के मतानुसार 'गान्धर्व' और 'गान' को ही क्रमश: 'मार्ग' और 'देशी' माना जाए, तो कोई हानि नहीं।

मार्ग-संगीत

मार्ग-संगीत वर्तमान काल में बिलकुल प्रचलित नहीं है।

मार्गो देशीतितद्द्वेधा तत्र मार्गः स उच्यते ।
यो मार्गितो विरिंच्याद्यै प्रयुक्तो भरतादिभिः ॥

इस श्लोक के अनुसार 'मार्ग-संगीत' वह है, जिसका प्रयोग महादेव के बाद भरत ने किया। यह अत्यन्त प्राचीन तथा कठोर सांस्कृतिक व धार्मिक नियमों से जकड़ा हुआ था, अत: आगे इसका प्रचार ही समाप्त हो गया।

देशी-संगीत

देश के विभिन्न भागों में छोटे-बड़े सभी लोग जिसे प्रेमपूर्वक गा-बजाकर अपना मन प्रसन्न करते हैं, वह 'देशी संगीत' है। शार्ङ्गदेव के समय में भी सभी जगह देशी संगीत ही प्रचलित था, किन्तु वर्तमान हिन्दुस्तानी संगीत से वह बिलकुल भिन्न था। इसका कारण यही है कि देशी संगीत सर्वदा परिवर्तनशील रहा है, लोक-रुचि के अनुसार उसका स्वरूप भी बदलता रहता है। देशी संगीत में नियमों का विशेष बन्धन नहीं, इसलिए यह सुलभ और सरल है तथा लोक-रुचि पर अवलम्बित रहता है।

देशे-देशे जनानां यद्रुच्या हृदयरंजकम् ।
गानं च वादनं नृत्यं तद्देशीत्यभिधीयते ॥

—संगीत-रत्नाकर

अर्थात्—भिन्न-भिन्न देशों के जन (मनुष्य) अपनी-अपनी रुचि के अनुसार जिसे गा-बजाकर और नाचकर प्रसन्नता प्राप्त करते हैं अथवा हृदय का रंजन करते हैं, वह 'देशी संगीत' है।

तत्तद्देशस्थया रीत्या यत्सात् लोकानुरंजनम्।
देशे देशे तु संगीतं तद्देशीत्यभिधीयते॥
—संगीत-दर्पण

भावार्थ—जो संगीत देश के भिन्न-भिन्न भागों में वहाँ के रीति-रिवाजों के अनुसार जनता का मनोरंजन करता है, वह 'देशी संगीत' कहलाता है।

उपर्युक्त विवेचन से यह निष्कर्ष निकलता है कि वर्तमान समय में जसा संगीत प्रचलित है, वह सब देशी संगीत ही है। अतः ग्वालियर का ध्रुवपद-गायन, मथुरा का होरी-गायन, मिर्जापुर का कजरी-गायन, बनारस और लखनऊ का ठुमरी-गायन, मणिपुर का मणिपुरी नृत्य, लखनऊ का कथक नृत्य, ब्रज का गोपी-नृत्य, गुजरात का गरबा नृत्य इत्यादि सब देशी संगीत के अन्तर्गत ही आते हैं।

ग्रह, अंश और न्यास

गीतादौ स्थापितो यस्तु स ग्रहस्वर उच्यते।
न्यासस्वरस्तु विज्ञेयो यस्तु गीतसमापकः॥
बहुलत्वं प्रयोगेप सचांशस्वर उच्यते॥१६३॥

अर्थात्—गीत के आरम्भ में ही जो स्वर स्थापित किया जाता है, उसे 'ग्रह स्वर' कहते हैं। गीत की समाप्ति जिस स्वर पर होती है, उसे 'न्यास स्वर' कहते हैं और प्रयोग में जो स्वर बहुलत्व दिखाता है, अर्थात् बार-बार आता है, उसे 'अंश स्वर' कहते हैं। इस प्रकार प्राचीन ग्रन्थों में तीन स्वर-भेद मिलते हैं। प्राचीन काल में ग्रह, अंश, स्वरों का ध्यान रखते हुए प्रत्येक राग एक नियमित स्वर से आरम्भ किया जाता था और एक नियमित स्वर पर उसकी समाप्ति होती थी। इसी प्रकार बार-बार या अधिक प्रयोग होनेवाले स्वर को महत्त्व देकर उसे अंश स्वर मानते थे, जिस प्रकार कि हम आजकल वादी स्वर मानते हैं।

सम्भव है, प्राचीन समय में उपर्युक्त स्वर-नियमों का पालन उत्तम रीति से किया जाता हो। किन्तु संगीत परिवर्तनशील है, अतः आगे चलकर गायक-वादकों ने ग्रह तथा न्यास स्वरों का नियम नहीं माना, अर्थात् अमुक राग अमुक स्वर से ही आरम्भ होना चाहिए या अमुक स्वर पर ही उसे समाप्त करना चाहिए, इस बन्धन को तोड़कर वे चाहे जिस राग या गीत को भिन्न-भिन्न स्वरों से आरम्भ करके गाने लगे और भिन्न-भिन्न स्वरों पर समाप्त करने लगे। उन्होंने केवल अंश स्वर का सिद्धान्त 'वादी स्वर' के रूप में माना, जो आज तक प्रचलित है। क्योंकि वादी स्वर से राग की पहचान हो जाती है कि यह पूर्वांगवादी है या उत्तरांगवादी। वादी स्वर के द्वारा राग गाने का समय पहचानने में भी सहायता मिलती है। अतः प्राचीन समय के स्वर-नियमों में से ग्रह और न्यास छोड़कर अंश स्वर के नियम का पालन करना आवश्यक है।

गायन-शैलियाँ

ध्रुवपद

कहा जाता है कि ध्रुवपद-गायन का आविष्कार सबसे पहले पन्द्रहवीं शताब्दी में ग्वालियर के राजा मानसिंह तोमर द्वारा हुआ था। उन्होंने स्वयं भी कुछ ध्रुवपदों की रचना की थी। प्राचीन काल में ध्रुवपद में संस्कृत-श्लोकों को गाकर हमारे ऋषि-मुनि भगवान् की आराधना करते थे।

वर्तमान समय में भी ध्रुवपद एक गम्भीर और जोरदार गाना माना जाता है। ध्रुवपद के गीत प्राय: हिन्दी, उर्दू एवं ब्रजभाषा में मिलते हैं। यह मर्दानी आवाज का गायन है। इसमें वीर, शृंगार और शांत रस प्रधान हैं। 'अनूप संगीतरत्नाकर' में ध्रुवपद की व्याख्या इस प्रकार की है :—

> गीर्वाणमध्यदेशीयभाषासाहित्यराजितम् ।
> द्विचतुर्वाक्यसम्पन्नं नरनारीकथाश्रयम् ॥
> शृंगाररसभावाद्यं रागालापदात्मकम् ।
> पादांतानुप्रासयुक्तं पादानयुगकं च वा ॥
> प्रतिपादं यत्र बद्धमेवं पादचतुष्टयम् ।
> उद्ग्राहध्रुवकाभोगांतरं ध्रुवपदं स्मृतम् ॥
>
> —अनूपसंगीतरत्नाकर

ध्रुवपद में स्थायी, अन्तरा, संचारी और आभोग, ये चार भाग होते हैं। ध्रुवपद अधिकतर चौताल, सूलफाक, झंपा, तीव्रा, ब्रह्मताल, रुद्रताल इत्यादि तालों में गाए जाते हैं।

ध्रुवपद में तानों का प्रयोग नहीं होता, किन्तु उसमें दुगुन, चौगुन, बोलतान, इत्यादि का प्रयोग करने की छूट है।

ध्रुवपद की चार वाणियाँ

प्राचीन काल में ध्रुवपद-गायकों को कलावन्त कहते थे। धीरे-धीरे ध्रुवपद-गायकों के भेद उनकी चार वाणियों के अनुसार किए जाने लगे। उन चार वाणियों के नाम इस प्रकार हैं—१. गोबरहार वाणी अथवा शुद्ध वाणी, २. खण्डहार वाणी, ३. डागुरवाणी और ४. नोहार वाणी।

'मआदनुल मूसीकी' नामक ग्रन्थ के प्रणेता हकीम मुहम्मद करम इमाम ने उक्त चारों वाणियों के सम्बन्ध में अपने विचार इस प्रकार प्रकट किए हैं:—

"अकबर बादशाह के दरबार में उस समय चार महागुणी रहते थे—१. तानसेन, २. ब्रजचन्द ब्राह्मण (डागुर गाँव के निवासी), ३. राजा समोखनसिंह वीणाकार (खंडहार नामक स्थान के निवासी), ४. श्रीचन्द राजपूत (नोहार के निवासी)। अकबर के समय में इन चारों के द्वारा चार वाणियाँ प्रसिद्ध थीं। तानसेन गौड़ ब्राह्मण होने से उनकी वाणी का नाम गौड़ीय अथवा गोबरहारी पड़ गया। प्रसिद्ध वीणाकार समोखनसिंह की शादी तानसेन की कन्या के साथ होने के कारण उनका नाम नौबाद खाँ निश्चित हुआ। नौबाद खाँ का निवास-स्थान खंडहार था, इसलिए इनकी वाणी का नाम खंडहार-वाणी हुआ। ब्रजचन्द के निवास-स्थान के नामानुसार उनकी वाणी का नाम हुआ डागुर-वाणी। राजपूत श्रीचन्द नोहार के निवासी थे, इसीलिए उनकी वाणी का नाम नोहार-वाणी प्रसिद्ध हुआ।"

चार वाणियों के प्रधान लक्षण

१. **गोबरहार-वाणी** :—इसका प्रधान लक्षण प्रसाद गुण है, यह शान्त-रसोद्दीपक है और इसकी गति धीर है।

२. **खंडहार-वाणी** :—वैचित्र्य और ऐश्वर्य-प्रकाश खंडहार-वाणी की विशेषताएँ हैं। यह तीव्र रसोद्दीपक है। गोबरहार-वाणी की अपेक्षा इसमें वेग और तरंग अधिक होते हैं, किन्तु इसकी गति अति विलम्बित नहीं होती।

३. **डागुर-वाणी** :—इसका प्रधान गुण है सरलता और लालित्य। इसकी गति सहज व सरल है। इसमें स्वरों का टेढ़ा और विचित्र काम दिखाया जाता है।

४. **नोहार-वाणी** :—'नोहार' रीति से सिंह की गति का बोध होता है। एक स्वर से दो-तीन स्वरों का लंघन करके परवर्ती स्वर में पहुँचना इसका लक्षण है। नोहार-वाणी विशेष रूप से रस की सृष्टि नहीं करती, अपितु यह आश्चर्य-रसोद्दीपक है।

हम जिसे केवल वाणी या शुद्ध वाणी कहते हैं, वह गोबरहार और डागुर-वाणी का ही नाम-रूपान्तर है। शुद्ध वाणी ही संगीत की आत्मा है और इसी से संगीत की प्रतिष्ठा भी है। संगीत के प्राणस्वरूप जो रस वस्तु है, उसका अविकल झरना शुद्ध वाणी में ही मिलेगा। इसके आनन्द का अनुभव वही कर सकता है, जिसने शुद्ध वाणी की रसधारा का रसास्वादन किया है, इसलिए सेनी लोग (तानसेन-वंश के गायक-वादक) सर्वदा शुद्ध वाणी के संगीत पर विशेष जोर देते हैं।

संगीत की उक्त चार वाणियों में गोबरहार (गौड़ीय) वाणी को गुणी जनों ने राजा का पद दिया है। डागुर-वाणी को मन्त्री का पद, खंडहार को सेनापति का स्थान और नोहार को सेवक का स्थान दिया है। अपने-अपने स्थान पर प्रत्येक वाणी की एक विशिष्ट महत्ता है। गोबरहार-वाणी का प्रत्येक स्वर अपने सुनिर्दिष्ट रूप में प्रकट होता है। स्पष्टता इस वाणी का प्रधान लक्षण है। डागुर-वाणी में एक स्वर दूसरे स्वर के साथ जिस विचित्रता से मिलता है, उस कारण उसमें एक विचित्र और रहस्यमय भाव उत्पन्न हो जाता है। स्वर को स्पष्ट रूप में व्यक्त न करके श्रोता की कल्पना के अनुसार उसे प्रकट करना पड़ता है। लालित्य और गम्भीरता इन दोनों वाणियों में पर्याप्त

मिलते हैं। खंडहार-वाणी को संस्कृत में 'भिन्ना गीति' कहा गया है।* इस वाणी में स्वर के भिन्न-भिन्न टुकड़े करके गाते हैं। सम्भवतः इसीलिए संस्कृत में इसको 'भिन्ना' कहा जाता है। स्वर के खंड-खंड होने के कारण हिन्दी में इसको 'खंडहार-वाणी' कहा गया है। दोनों शब्दों का मूल तात्पर्य एक ही है। स्वर को सरल भाव से प्रकट न करके कुटिल भाव में खंड-खंड करके प्रकट करना ही खंडहार-वाणी की विशेषता है। इस कृत्य में स्वर की मधुरता का नाश नहीं होता, अपितु सूक्ष्म गमक की सहायता से स्वर को आन्दोलित करने पर उसमें मधुरता की ओर भी वृद्धि होती है, इसलिए उत्तम गुणी गमक की सहायता से खंडहार-वाणी गाते थे। यन्त्र-संगीत में वीणा द्वारा खंडहार-वाणी का सेनी लोग विविध प्रकार से मध्य लय, गमक व जोड़ में उपयोग करते हैं। शुद्ध वाणी की प्रधानता रबाब द्वारा दिखाई जाती थी, क्योंकि रबाब का स्वर सरल होता है। इसमें विलम्बित, मध्य और द्रुत, ये त्रिविध आलाप बखूबी दिखाए जा सकते हैं।

वाणी का रहस्य जाननेवाले गायक आजकल शायद ही कोई हों। ध्रुवपद-गायन को प्रचलित हुए पाँचसौ वर्षों से अधिक हो गए, किन्तु इधर लगभग ड़ेढ़सौ वर्षों से ध्रुवपद-गायकी का प्रचार कम हो गया है और खयाल-गायन का प्रचार अधिक हो गया है। इतना होते हुए भी संगीतकला-मर्मज्ञों में ध्रुवपद-गायकी को अब भी श्रद्धा की दृष्टि से देखा जाता है।

खयाल

फारसी भाषा में 'खयाल' का अर्थ है, विचार या कल्पना। राग के नियमों का पालन करते हुए अपनी इच्छा या कल्पना से विविध आलाप-तानों का विस्तार करते हुए, एकताल, त्रिताल, झूमरा, आड़ा चौताल इत्यादि तालों में गाते हैं। खयालों के गीतों में शृंगार-रस का प्रयोग अधिक पाया जाता है। खयाल की गायकी में जलद-तान, गिटकरी इत्यादि का प्रयोग शोभा देता है और स्वर-वैचित्र्य तथा चमत्कार पैदा करने के लिए खयालों में तरह-तरह की तानें ली जाती हैं। खयाल-गायन में ध्रुवपद-जैसी गम्भीरता और भक्ति-रस की शुद्धता नहीं पाई जाती।

खयाल दो प्रकार के होते हैं—१. जो विलम्बित लय में गाए जाते हैं, उन्हें बहुधा 'बड़े खयाल' कहते हैं और २. जो द्रुत लय में गाए जाते हैं, उन्हें 'छोटे खयाल'

---

* गीतयः पंचशुद्धाद्या भिन्ना गौड़ी च वेसरा।
साधारणीति शुद्धा स्यादवक्रललितैः स्वरैः॥
भिन्ना सूक्ष्मैः स्वरैर्वक्रैर्मधुरैर्गमकैर्युता।
गाढैस्त्रिस्थानगमकैरुहाटीललितैः स्वरैः॥
अखंडितस्थितिः स्थानत्रये गौडी मता सताम्।
उहाटी कम्पितैर्मन्द्रैर्द्रुततरैः स्वरैः॥
हकारोकारयोगेन हृन्यस्ते चिबुके भवेत्।
वेगवद्भिः स्वरैर्वर्णचतुष्केऽप्यतिरक्तितः॥
वेगस्वरा रागगीतिर्वेसरा चोच्यते बुधैः।

—संगीत-रत्नाकर

कहते हैं। गायक जब खयाल गाना आरम्भ करता है, तो पहले विलम्बित लय में बड़ा खयाल गाता है, जिसे प्राय: विलम्बित एकताल, तीनताल, झूमरा, आड़ा चौताल इत्यादि में गाया जाता है। फिर इसके बाद ही छोटा खयाल मध्य या द्रुत लय में आरम्भ कर देता है, जिसे प्राय: त्रिताल अथवा द्रुत एकताल में गाया जाता है। छोटे-बड़े खयाल जब गायक एक स्थान पर एक समय में गाता है, तो ये दोनों ही प्राय: किसी एक ही राग में होते हैं, किन्तु बोल या कविता दोनों खयालों की अलग-अलग होती है। बड़े खयालों का प्रचार पन्द्रहवीं शताब्दी में जौनपुर के सुलतानहुसैन शर्की द्वारा हुआ। मुगल-बादशाह मुहम्मदशाह रँगीले (सन् १७१९) के दरबार के प्रसिद्ध गायक सदारंग (न्यामतखाँ) और अदारंग ने हजारों खयाल रचकर अपने शिष्यों को सिखाए, किन्तु आश्चर्य की बात यहहैं कि उन्होंने अपने वंशजों को एक भी खयाल नहीं सिखाया और न गाने ही दिया। रामपुर के वजीर खाँ सदारंग के ही वंशज और मुहम्मदअली खाँ तानसेन के वंशज थे। ये दोनों ही ध्रुवपद-गायक थे, खयाल-गायक नहीं।

टप्पा

खयाल-गायकी के बाद टप्पा-गायकी का प्रचार हुआ। यह हिन्दी का शब्द है। शब्दकोश में तो 'टप्पा' के बहुत-से अर्थ मिलेंगे; जैसे उछाल, कूद, फलाँग, अन्तर, फर्क, एक प्रकार का चलता गाना जो पंजाब में चला है। इनमें से संगीत-विद्यार्थियों के लिए अन्तिम अर्थ ही लेना उचित होगा। कहा जाता है कि लखनऊ के नवाब आसिफउद्दौला के दरबार में एक पंजाबी रहते थे, जिनका नाम शोरी मियाँ था। इन्होंने ही टप्पे की गायकी का आविष्कार किया।

टप्पा अधिकतर काफी, झिंझोटी, बरवा, भैरवी, खमाज इत्यादि रागों में गाया जाता है। इसमें स्थायी और अन्तरा, ये दो भाग होते हैं। टप्पा क्षुद्र प्रकृति की गायकी है। इसमें श्रृंगार-रस की प्रधानता होती है और पंजाबी भाषा के शब्द ही इसमें अधिकतर पाए जाते हैं। इसकी तानें दानेदार बहुत तैयार लय में गाई जाती हैं। टप्पा की गति बहुत चपल होती है। कुछ विद्वानों का ऐसा भी मत है कि प्राचीन 'वेसरा गीति' से इस गायकी की उत्पत्ति हुई है।

ठुमरी

जिन रागों में टप्पा गाया जाता है, प्राय: उनमें ही ठुमरी गाई जाती है। इस में शब्द तो कम होते हैं, किन्तु शब्दों को हाव-भाव द्वारा बताकर गीत का अर्थ प्रकट करना ठुमरी-गायन की विशेषता मानी जाती है। ठुमरी का जन्म लखनऊ के नवाबों के दरबार में हुआ। कहा जाता है कि इसके आविष्कारक गुलामनबी, शोरी के घराने के लोग ही थे। ठुमरी अधिकतर पंजाबी त्रिताल में ही गाई जाती है। उसकी गति अति द्रुत नहीं होती।

लखनऊ और बनारस ठुमरी के लिए प्रसिद्ध हैं। बनारसी ठुमरी में सुन्दरता और मधुरता अधिक पाई जाती है। ठुमरी में प्राय: राग की शुद्धता की ओर ध्यान नहीं दिया जाता। अनेक गायक ठुमरी गाते समय भिन्न-भिन्न रागों के स्वरों का

मिश्रण करके उसे सुन्दर बनाने का प्रयत्न करते हैं। महाराष्ट्र में ठुमरी को विशेष आदर या प्रेम की दृष्टि से नहीं देखा जाता, क्योंकि महाराष्ट्र में राग-नियमों का पालन कुछ सख्ती से किया जाता है। सम्भवत: इसीलिए वहाँ ठुमरी का महत्त्व नहीं है। फिर भी ठुमरी का गायन किसी प्रकार उपेक्षित नहीं है और इसे उत्तर-प्रदेश में विशेष सम्मान प्राप्त है।

तराना

यह भी खयाल के प्रकार की एक गायकी है। इसमें गीत के बोल ऐसे होते हैं, जिनका कोई अर्थ नहीं होता; जैसे ता ना दा रे, तदारे, ओदानी दीम, तनोम इत्यादि। तराने में भी स्थायी और अन्तरा, ये दो भाग होते हैं। तानों का प्रयोग भी इसमें होता है।

कहा जाता है कि अमीर खुसरो जब हिन्दुस्तान आए, तो यहाँ की संस्कृत भाषा को देखकर वे घबराए, क्योंकि वह अरबी भाषा विद्वान् थे। अत: उन्होंने निरर्थक शब्द गढ़कर तरह तरह-तरह के हिन्दुस्तानी राग गाए। वे निरर्थक शब्द ही 'तराना' नाम से प्रसिद्ध हुए। तराना में राग, ताल और लय का ही आनन्द है, शब्दों की ओर कोई ध्यान भी नहीं देता। तरानों का गायन हमारे देश में मनोरंजक माना जाता है। बहादुरहुसैन खाँ तानरस खाँ, नत्थू खाँ इत्यादि के तराने विशेष प्रसिद्ध हैं।

तिरवट

यह भी तराने की तरह गाया जाता है, किन्तु तराने से तिरवट की गायकी कुछ कठिन है। तिरवट में मृदंग के बोल अधिक होते हैं। इसे सभी रागों में गाया जा सकता है। वर्तमान समय में तिरवट-गायकी का प्रचार कम हो गया है।

होरी-धमार

जब 'होरी' नाम के गीत को धमार ताल में गाते हैं, तो उसे 'धमार' कहा जाता है। धमार-गायन में प्राय: ब्रज की होली का वर्णन रहता है। धमार में दुगुन, चौगुन बोलतान, गमक इत्यादि का प्रयोग होता है, अत: यह कठिन गायकी है। धमार से गायकों को स्वर, ताल और राग का अच्छा ज्ञान होना चाहिए। प्राय: देखा जाता है कि धमार में खयाल के समान तानें नहीं ली जातीं।

गजल

गजल अधिकतर उर्दू या फारसी भाषा में होती है। इसके अधिकांश गीतों में आशिक-माशूक का वर्णन पाया जाता है, इसीलिए यह शृंगाररस-प्रधान गायकी है। गजल रूपक, पश्तो, दीपचन्दी, दादरा, कहरवा तालों में गाई जाती है। वे ही गायक गजल गाने में सफल होते हैं, जिन्हें उर्दू-हिन्दी का अच्छा ज्ञान है और जिनका शब्दोच्चारण ठीक है। गजल की अनेक तर्जें हैं। वर्तमान समय में सवाक् चित्रपटों द्वारा गजल और गीत का प्रचार बहुत हुआ है।

कव्वाली

कव्वाली मुसलिम-समाज की विशेष गायकी है। इसमें अधिकतर फारसी व उर्दू भाषा का प्रयोग होता है। स्थायी, अन्तरा के अतिरिक्त इसके बीच-बीच में 'शेर' भी होते हैं। हिन्दुओं में भी कव्वाली का प्रचार पाया जाता है। इसके गानेवाले 'कव्वाल' कहलाते हैं। किसी विशेष अवसर पर रात-रात-भर कव्वालियाँ होती हैं। कव्वाली के साथ ढोलक बजती हुई अधिक देखी जाती है, साथ-साथ हाथों से तालियाँ भी बजती हैं। रूपक, पश्तो तथा कव्वाली तालों का इसमें विशेष प्रयोग होता है।

दादरा

दादरा एक ताल का भी नाम है, किन्तु एक विशेष गायकी को भी 'दादरा' कहते हैं। इसकी चाल गजल से कुछ मिलती-जुलती होतो है। मध्य तथा द्रुत लय में दादरा अच्छा मालूम पड़ता है। इसमें प्राय: श्रृंगार-रस के गीत होते हैं।

सादरा

इस गाने की लय भी दादरा से बहुत मिलती-जुलती होती है। सादरा को अधिकतर कथक गायक एवं वेश्याएँ गाती हैं। इसमें कहरवा, रूपक, झपताल तथा दादरा, इन तालों का प्रयोग होता है। ठुमरी-गायक 'सादरा' भली प्रकार गा लेते हैं। इसके गीतों में श्रृंगार-रस ही अधिक मिलता है।

खमसा

खमसा गाने का प्रचार मुसलमानों में अधिक पाया जाता है। इसके गीत में उर्दू भाषा का प्रयोग ही मिलेगा। खमसा की गायकी कव्वाली से मिलती-जुलती होती है।

लावनी

'चंग' (एक प्रकार का ताल-वाद्य) बजा-बजाकर कई आदमी मिलकर (या अकेला व्यक्ति) 'लावनी' गाते हैं। इसमें श्रृंगार तथा भक्ति-रस के गीत होते हैं और कहरवा ताल का प्रयोग होता है।

चतुरंग

१. खयाल, २. तराना, ३. सरगम, ४. त्रिवट, ऐसे चार अंग जिस गीत में सम्मिलित होते हैं, उसे 'चतुरंग' कहते हैं। पहले भाग में गीत के शब्द, दूसरे में तराने के बोल, तीसरे में किसी राग की सरगम और चौथे भाग में मृदंग के बोलों की एक छोटी-सी परन रहती है। चतुरंग को खयाल की तरह गाते हैं, किन्तु इसमें तानों का प्रयोग खयाल की अपेक्षा कम होता है।

सरगम

राग-बद्ध एवं ताल-बद्ध स्वर-रचना-विशेष को 'सरगम'-गीत कहते हैं। इसमें किसी प्रकार की कविता नहीं होती; केवल स्वर ही होते हैं। सरगम-गीत भिन्न-भिन्न रागों व तालों में निबद्ध होते हैं। इसको गाने से विद्यार्थियों को स्वर-ज्ञान एवं राग-ज्ञान में बहुत सहायता मिलती है।

रागमाला

जब एक ही गीत में कई रागों का वर्णन आता है और उस गीत की एक-एक पंक्ति में एक-एक राग के स्वर लग जाते हैं तथा उस राग का नाम भी आ जाता है, तो ऐसी रचना को 'रागमाला' कहते हैं।

लक्षण-गीत

कोई गीत जब किसी राग में गाया गया हो और उस गीत के शब्दों में उस राग के वादी-संवादी या वर्जित स्वरों का वर्णन किया गया हो, तो उसे 'लक्षण-गीत' कहते हैं। लक्षण-गीत से राग-सम्बन्धी अनेक बातें सरलतापूर्वक याद हो जाती हैं।

भजन-गीत

जिस प्रकार उर्दू भाषा के शब्दों से गजलें तैयार होती हैं, उसी प्रकार हिन्दी-शब्दावली से भजन और गीतों की रचना होती है। ईश्वर-स्तुति या भगवान् की लीला का वर्णन भजनों में किया जाता है। भजन को किसी एक राग में बाँधकर भी गाते हैं और ऐसे भी भजन, हैं, जो किसी विशेष राग में,न होकर मिश्रित राग-स्वरों द्वारा तैयार हुए हैं। भजन अधिकतर कहरवा, दादरा, धुमाली, रूपक एवं तीनताल में गाए जाते हैं।

कीर्तन

भगवान् राम, कृष्ण के गुणानुवाद झाँझ, करताल व मृदंग-तबला इत्यादि के साथ उच्च स्वरों में मिलकर जब गाते हैं, तो उसे 'कीर्तन' कहते हैं।

गीत

ईश्वर-प्रार्थना या भगवान् की लीला-सम्बन्धी पदों को छोड़कर जो साहित्यिक रचनाएँ ऐसी होती हैं कि किसी ताल में बाँधकर गाई जा सकें, उन्हें 'गीत' कहते हैं। इनमें भाव की प्रधानता रहती है। गीतों में शृंगार और करुण रस अधिक पाया जाता है। गीतों में किसी प्रकार का स्वर-विस्तार या तानों का प्रयोग नहीं होता। आकाशवाणी तथा फिल्मों द्वारा गीत एवं भजनों का यथेष्ट प्रचार हुआ है।

कजली (कजरी)

'कजली' गीतों में वर्षा ऋतु का वर्णन, विरह-वर्णन, राधाकृष्ण की लीलाओं का वर्णन अधिकतर मिलता है। कजली की प्रकृति क्षुद्र है। शृंगार-रस इसमें प्रधान है। मिर्जापुर और बनारस में कजली गाने का प्रचार अधिक पाया जाता है।

चैती

होली के बाद जब चैत का महीना आरम्भ होता है, तब 'चैती' गाई जाती है। इसके गीतों में भगवान् रामचन्द्र की लीलाओं का वर्णन रहता है। पूर्व-बिहार की ओर इसका प्रचार अधिक है। इसमें अधिकतर पूर्वी भाषा का प्रयोग होता है। ठुमरी-गायक 'चैती' भली प्रकार गा सकते हैं।

लोक-गीत

लोक-गीत उन्हें कहते हैं, जो विशेषत: घर-गृहस्थी के मंगलिक अवसरों पर एवं विशेष त्योहारों या उत्सवों पर महिलाओं द्वारा नगरों तथा गाँवों में अपनी-अपनी प्रान्तीय या ग्रामीण भाषाओं में गाए जाते हैं। पुरुष गायकों द्वारा गाए हुए लोक-गीत भी होते हैं। लोक-गीतों में हमें भारतीय प्राचीन संस्कृति मिलती है। यही कारण है कि हमारी राष्ट्रीय सरकार इधर कुछ समय से लोक-गीतों के प्रति आकर्षित होकर आकाशवाणी आदि के द्वारा इनके प्रचार को विकसित करने का प्रयत्न कर रही है। यहाँ पर हम लोक-गीतों के कुछ प्रकार पाठकों की जानकारी के लिए दे रहे हैं :—

१. घोड़ी, बन्ना, ज्यौनार, जनेऊ, भात, माँडवा, गारी आदि लोक-गीत उत्तर-प्रदेश में ब्रज-भूमि की ओर विशेष रूप से प्रचलित हैं, जिन्हें महिलाएँ विवाहादि के अवसरों पर मिलकर गाती हैं।

२. **बिरहा**—यह गीत यादव (ग्वाल-वंश) में प्रचलित है। विवाह के अवसर पर कन्या-पक्ष के व्यक्ति वर-पक्ष के यहाँ जाकर नगाड़े के साथ विभिन्न पैंतरेबाजी दिखाते हुए रात-भर 'बिरहा' गाते हैं।

३. **निर्वही**—सावन में खेत निराते समय ये गीत गाए जाते हैं।

४. **चन्दैनी**—यह ग्वालों (यादवों) का गीत है। प्राय: देहातों में ग्वाले लोग इसे गाते हैं।

५. **सोहर**—यह गीत प्राचीन समय से ही महिलाओं में प्रचलित है, जो बच्चा पैदा होने के अवसर पर गाया जाता है। पहले तो 'सोहर' केवल ढोलक के साथ ही गाए जाते थे, किन्तु आजकल शहरों में हारमोनियम और ढोलक के साथ भी महिलाएँ 'सोहर' गाने लगी हैं।

६. **झूमर**—यह गीत कई प्रकार का होता है, जैसे बिरहा का झूमर, जिसे यादव, निषाद या खटीक गाते हैं। दूसरा कजली का झूमर, जिसे वर्षा-ऋतु में गाया जाता है और तीसरे प्रकार का झूमर शीतला देवी की पूजा के समय गाया जाता है।

७. **नऊआ मक्कड़**—यह नाइनों का गीत है। विवाह-शादी के अवसरों पर कई व्यक्ति मिलकर इसे गाते हैं; साथ-साथ झाँझ-खंजरी भी बजाते रहते हैं।

८. आल्हा—'आल्हा-ऊदल' की ऐतिहासिक लड़ाई का वर्णन एक विशेष प्रकार की तर्ज में बाँधकर जब गाया जाता है, तो उसे 'आल्हा' कहते हैं। इसे सुनकर ग्रामीणों में जोश भर जाता है।

९. बारहमासी—विरह-प्रेम तथा भगवान् राम और कृष्ण की लीलाओं का वर्णन करते हुए बारहों महीनों के नाम जिस गीत में आ जाते हैं, उसे 'बारहमासी' कहते हैं। इसे स्त्रियाँ तथा पुरुष, सभी गाते हैं। 'बारहमासी' ढोलक के साथ भी गाई जाती है और बिना ताल के भी इसे गाते हैं।

१०. सावनी—वर्षा-ऋतु में जब सावन का महीना आता है, तो उसमें झूले के गीत, हिंडोले के गीत, मल्हार, निहालदे इत्यादि गाए जाते हैं। वे 'सावनी' गीत कहलाते हैं।

११. माँड—राजपूताना, मारवाड़ की ओर के देशी गीत हैं। इन्हें अब इधर के लोग भी गाते देखे गए हैं।

इनके अतिरिक्त विभिन्न प्रान्तों में वहाँ की ग्रामीण भाषाओं के अनुसार अन्य प्रकार के बहुत-से और भी लोक-गीत गाए जाते हैं। भारत के सभी लोक-गीतों का उल्लेख किया जाए, तो एक विशाल ग्रन्थ ही तैयार हो जाएगा।

संगीतात्मक रचनाओं के नियम

स्वस्थान

प्राचीन समय में आलाप करने के एक विशेष नियम को 'स्वस्थान' कहते थे। 'संगीत-रत्नाकर' ग्रन्थ में स्वस्थानों का उल्लेख इस प्रकार मिलता है :—

यत्रोपवेश्यते रागः स्वरे स्थायी स कथ्यते।
ततश्चतुर्थो द्व्यर्धः स्यात् स्वरे तस्मादधस्तने॥
चालानं मुखचालः स्यात् स्वस्थानं प्रथमं च तत्।
द्व्यर्धस्वरे चालयित्वा न्यसनं तद्द्वितीयकम्॥
स्थायिस्वरादष्टतस्तु द्विगुणः परिकीर्तितः।
द्व्यर्धद्विगुणयोर्मध्ये स्थिता अर्धस्थितस्वराः॥
अर्धस्थिते चालयित्वा न्यसनं तु तृतीयकम्।
द्विगुणे चालयित्वा तु स्थायिन्यासाच्चतुर्थकम्।
एभिश्चतुर्भिः स्वस्थानैः रागालप्तिर्मता सताम्॥

उक्त श्लोकों का भावार्थ यह है कि अंश स्वर पर ही समस्त राग निर्भर रहता है। उसे ही स्थायी स्वर कहते हैं। स्थायी स्वर से चौथा स्वर द्व्यर्ध कहलाता है, आठवाँ द्विगुण कहा जाता है तथा द्विगुण और द्व्यर्ध स्वरों के बीच में जो स्वर हैं, वे अर्धस्थित स्वर माने जाएँगे। प्रथम स्वस्थान में गायक को अपना आलाप द्व्यर्ध स्वर के नीचे रखना आवश्यक होता था। इससे वह मन्द्र-सप्तक में इच्छानुसार विस्तार कर सकता था। परन्तु न्यास स्थायी स्वर पर ही किया जाता था।

आलाप के दूसरे स्वस्थान-नियम में द्व्यर्ध स्वर भी सम्मिलित कर लिया जाता था और आलाप का अन्त पुन: स्थायी स्वर पर किया जाता था।

आलाप के तीसरे स्वस्थान नियम में आलाप का क्रम अर्धस्थित स्वरों में होता था। परन्तु आलाप की समाप्ति सदैव स्थायी स्वर पर ही की जाती थी। आलाप के चौथे स्वस्थान-नियम में द्विगुण स्वर तथा उससे ऊपर के स्वर भी सम्मिलित कर लिए जाते थे। परन्तु न्यास पुन: स्थायी स्वर पर ही होता था। इस प्रकार आलाप के चार स्वस्थान-नियम माने जाते थे। प्रत्येक गायक को उपर्युक्त विधि से ही आलाप-गायन में स्वस्थान-क्रमों के नियमों का पालन करना पड़ता था। मनमाने ढंग से चाहे जिस स्थान से आलाप प्रारम्भ करके चाहे जहाँ न्यास करने की आज्ञा उस समय नहीं थी।

रूपकालाप

प्राचीन आलाप-पद्धति का यह एक दूसरा प्रकार माना जाता था, जिसे 'रूपकालाप' कहते थे। यह आलाप का ही एक और विशेष भेद है, जिसके लिए कहा कहा गया है :—

रूपकं तु तद्वदेव पृथग्भूतविदारिकम् ।

रूपकालाप में प्रबन्ध के धातु के समान, आलाप के भिन्न-भिन्न भाग करके गायक को दिखाने पड़ते थे। इन भागों में जो अन्तिम स्वर आते थे, उन्हें 'अन्पयास' स्वर कहा जाता था।

रागालाप करते समय श्रोताओं के सम्मुख आलाप की व्याख्या करते हुए गायक यह भी बताते थे कि हम अमुक राग गा रहे हैं, किन्तु रूपकालाप में कुछ बताने-कहने की आवश्यकता नहीं थी। वह तो श्रोताओं को स्वतः ही प्रत्यक्ष प्रबन्ध के समान दिखाई देता था। रूपकालाप शब्दहीन होता था, अर्थात् उसमें बोल या ताल इत्यादि नहीं होते थे। इस प्रकार रागालाप की अपेक्षा रूपकालाप को विशेष महत्त्व प्राप्त था और इसे रागालाप की अगली सीढ़ी माना जाता था।

आलप्ति-गान

रागलाप और रूपकालाप से आगे बढ़ने पर 'आलप्ति' की बारी आती थी। आविर्भाव और तिरोभाव करते हुए राग को पूर्ण रूप से प्रदर्शित करना ही आलप्ति-गान कहलाता है।

आविर्भाव-तिरोभाव

किसी राग का विस्तार करते समय उसके बीच में अन्य समप्राकृतिक रागों के छोटे-छोटे टुकड़े दिखाकर, थोड़ी देर के लिए मुख्य राग को छिपाने का उपक्रम जब किया जाता है, तो उसे 'तिरोभाव' कहते हैं। और फिर मुख्य राग के स्वरों को कुशलतापूर्वक दिखाकर राग-रूप स्पष्ट करने को 'आविर्भाव' कहते हैं। इसे एक उदाहरण से इस प्रकार समझना चाहिए, जैसे गायक वसंत राग गा रहा है और गाते-गाते उसमें निषाद पर न्यास करके परज राग की छाया दिखाने लगे, तो उसे तिरोभाव कहेंगे। फिर वसंत के स्वरों की मुख्य पकड़ लगाकर वसंत को स्पष्ट कर दिया जाए, तो 'आविर्भाव' कहा जाएगा। ये भाव अत्यन्त मनोरंजक होते हैं, जिन्हें राग-गायन के बीच में या अन्तिम समय आने पर भी प्रायः कुशल गायक दिखाते हैं।

स्थाय

छोटे-छोटे स्वर-समुदायों को 'स्थाय' कहते हैं। जैसे—सा ऩि ध़ ऩि सा, म, ग॒ म ग॒ रे सा स्वर-समुदाय को आप बागेश्री की पकड़ कह सकते हैं। परन्तु अब कुछ ऐसे छोटे-छोटे स्वर-समुदाय देखिए कि जो बागेश्री की पकड़ नहीं हैं, परन्तु फिर भी इस राग को स्पष्ट करते हैं। जैसे-ग॒, म ध या म ध ऩि ध, म अथवा सां ऩि ध ऩि ध, या

मप ध ग़, म ग़ रे सा ऩि ध़ आदि स्वर-समुदाय पकड़ नहीं हैं, वरन् राग के रूप को स्पष्ट करते हैं। अतः इन सब छोटे-छोटे स्वर-समुदायों को 'स्थाय' कहा जाएगा।

मुखचालन

रागोचित विविध गमक-अलंकारों का प्रयोग करते हुए गायन-वादन करने को 'मुखचालन' कहते हैं।

आक्षिप्तिका

स्वर, शब्द और ताल की सहायता से जो रचना तैयार होती है, उसके प्रयोग को प्राचीन पंडित 'आक्षिप्तिका' कहते थे; जैसे खयाल, ध्रुवपद, धमार इत्यादि आक्षिप्तिका निबद्ध गान की ही श्रेणी में आते हैं।

निबद्ध-अनिबद्ध गान

जो रचनाएँ नियमानुसार ताल में बँधी हुई होती हैं, वे सब 'निबद्ध गान' के अन्तर्गत आती हैं। इसमें तीन प्रकार हैं—१. प्रबन्ध, २. वस्तु, ३. रूपक। इनके विभिन्न भागों को 'धातु' कहा जाता है। धातु के भी पाँच नाम हैं—१. उद्‌ग्राह, २. ध्रुव, ३. मेलापक, ४. अन्तरा, ५. आभोग। 'अनिबद्ध गान' उसे कहते हैं, जब कोई रचना स्वरों में बँधी हुई हो, किन्तु ताल में न हो। अनिबद्ध गान के अन्तर्गत रागालाप, रूपकालाप, आलप्तिगान तथा स्वस्थान-नियमों का आलाप-गायन, ये सब आते हैं, क्योंकि इनमें ताल का प्रयोग नहीं होता।

विदारी

गीत तथा आलापों में विभिन्न छोटे-छोटे भागों को ही विदारी कहते हैं। निबद्ध गान के अन्तर्गत जो उद्‌ग्राह, ध्रुव, मेलापक, अन्तरा और आभोग ऊपर बताए जा चुके हैं, वे सब विदारी की श्रेणी में ही आ जाते हैं। विदारी में जब अन्तिम स्वर आते हैं, तो वे ही न्यास, अपन्यास कहलाते हैं।

अल्पत्व

अल्पत्वं च द्विधा प्रोक्तमनभ्यासाच्च लंघनात्।
अनभ्यासस्त्वनंशेषु प्रायो लोप्येष्वपीष्यते ॥

रागों में अल्पत्व और बहुत्व का एक महत्त्वपूर्ण स्थान है। 'अल्पत्व' का अर्थ है 'कमी के साथ' और बहुत्व माने 'ज्यादा तादाद में'। जब किसी राग में किसी स्वर का महत्त्व कम दिखाकर राग-विस्तार में उसका उपयोग कमी के साथ किया जाता है, तो उसे 'अल्पत्व' कहते हैं। इसका प्रयोग दो प्रकार से किया जाता है—१. लंघन से, २. अनभ्यास से। लंघन द्वारा जब अल्पत्व दिखाया जाएगा, तो आरोह या अवरोह में वह स्वर छोड़ दिया जाएगा; जैसे शुद्धकल्याण में निषाद का अल्पत्व है, तो उसे आरोह में छोड़ देते हैं या लाँघ जाते हैं। यह प्रयोग लंघन से हुआ और इस प्रकार

आरोह में उसका अल्पत्व माना जाएगा। अनभ्यास द्वारा अल्पत्व इस प्रकार होता है कि किसी राग में कोई स्वर कम प्रमाण में प्रयोग किया जाए और उसपर बार-बार अभ्यास न किया जाए और न उस स्वर पर अधिक देर तक ठहरा ही जाए; जैसे भीमपलासी में 'ध' और 'रे' का अनभ्यास-अल्पत्व है। प्राय: इस श्रेणी में वर्जित या विवादी स्वर आते हैं और उनका अल्प उपयोग कुशलतापूर्वक अनभ्यास-अल्पत्व के द्वारा ही विवादी स्वर के नाते किया जाता है।

बहुत्व

यह भी दो प्रकार से दिखाया जाता है—अलंघन और अभ्यास से। अलंघन द्वारा बहुत्व इस प्रकार माना जाएगा कि किसी राग के आरोह या अवरोह में उस स्वर को छोड़ा न जाए अर्थात् उसे लाँघा न जाए और उसपर अधिक रुका भी न जाए; जैसे कालिंगड़ा में मध्यम स्वर छोड़ा नहीं जाता, किन्तु उसपर अधिक देर तक रुकते भी नहीं, अर्थात् केवल अलंघन द्वारा ही उसका बहुत्व दिखाते हैं। अभ्यास द्वारा बहुत्व दिखाना उसे कहते हैं, जब किसी स्वर को बार-बार और देर तक दिखाया जाता है; जैसे हमीर में धैवत का प्रयोग अभ्यास-मूलक बहुत्व माना जाएगा। प्राय: राग के वादी या संवादी स्वर का ही अभ्यासमूलक बहुत्व दिखाया जाता है, किन्तु किसी-किसी राग में अन्य स्वर का भी बहुत्व देखने में आता है। 'संगीत-रत्नाकर' का भी यही आशय प्रतीत होता है :—

अलंघनात्तथाऽभ्यासाद्बहुत्वं द्विविधं मतम्।
पर्यायांशे स्थितं तच्च वादिसंवादिनोरपि ॥

—संगीत-रत्नाकर

भावार्थ—स्वरों को अलंघन और अभ्यास, दो प्रकार से बहुत्व दिया जाता है। यह बहुत्व प्राय: वादी-संवादी स्वरों को तो मिलता ही है, किन्तु कभी-कभी राग के किसी दूसरे 'पर्याय-अंश' स्वर को भी यह बहुत्व दिया जाता है।

पकड़

स्वरों का एक ऐसा समूह, जिससे राग का स्वरूप व्यक्त होता है, अर्थात् जिन स्वरों के समूह से राग पहचाना जा सकता है, उसे 'पकड़' कहते हैं। प्रत्येक राग को पहचानने के लिए अलग-अलग पकड़ होती है; उदाहरणार्थ राग यमन की पकड़ यह है—नि़ रे ग रे, सा, पमंग, रे, सा। केवल इतने स्वर-समुदाय से ही तुरन्त मालूम हो जाएगा कि यह राग यमन का स्वरूप है। इसी प्रकार अच्छे गायक आरोहावरोह के पश्चात् राग की पकड़ दिखाकर राग-रूप स्पष्टतया व्यक्त कर देते हैं।

मीड़

किसी एक स्वर से आगे के या पीछे के दो, तीन या अधिक स्वरों पर, ध्वनि को बिना खंडित किए गाने या बजाने को 'मीड़' कहते हैं; जैसे प ध नि सां, यहाँ पर 'पंचम' से लेकर तार षड्ज तक की मीड़ दिखाई गई है, तो इसे गाने में 'प' से 'सां' तक

कोमलता से इस प्रकार जाना चाहिए कि बीच के दोनों स्वर 'ध–नि' बोल भी जाएँ और आवाज टूटने भी न पाए।

सूत

'सूत' और 'मीड़' में केवल इतना ही अन्तर है कि मीड़ का प्रयोग गाने में या सितार इत्यादि मिजराबवाले साजों में होता है और सूत का प्रयोग गज से बजने-वाले साजों में; जैसे सारंगी, दिलरुबा, वायलिन इत्यादि में होता है। तरीका वही है, जो मीड़ का है।

आन्दोलन

स्वरों के हिलने या कम्पन को 'आन्दोलन' कहते हैं। स्वरों के हिलने या उनके कम्पन से ही आन्दोलन-संख्या नापी जाती है।

गमक

आन्दोलन के द्वारा जब स्वरों में कम्पन पैदा होता है, तो उसे ही गम्भीरता-पूर्वक उच्चारण करने को 'गमक' कहते हैं; जैसे—स अ अ अ रे ए ए ए ग अ अ अ इत्यादि।

कण

किसी स्वर का उच्चारण करते समय उसके आगे या पीछे के किसी स्वर को तनिक छूने या स्पर्श करने को 'कण' कहते हैं; जैसे ^{नि}सां; यहाँ पर निषाद का जरा-सा स्पर्श करके 'सां' पर आना है, तो इसे 'सां' पर निषाद का कण कहेंगे।

तान

स्वर का वह समूह, जिसके द्वारा राग-विस्तार किया जाता है, 'तान' कहलाता है; जैसे—सा रे ग म, ग रे सा अथवा सां नि ध प म ग रे सा इत्यादि। स्वरों को तानने या फैलाने से ही 'तान' शब्द की उत्पत्ति हुई है। तानों के कई प्रकार हैं, जो आगे बताए जा रहे हैं।

आंदोलन

शुद्ध तान

जिस तान में स्वरों का क्रम एकसा हो और आरोह-अवरोह सीधा-सीधा हो, उसे 'शुद्ध तान' कहते हैं; जैसे—सा रे ग म प ध नि सां, सां नि ध प म ग रे सा। इसे ही 'सपाट तान' भी कहते हैं।

कूटतान

जिस तान में स्वरों का क्रम या सिलसिला स्पष्ट प्रतीत न हो, उसे 'कूटतान' कहेंगे। यह हमेशा टेढ़ी-मेढ़ी चलती है; जैसे—सारे गरे धप मप रेग मप धसां धप इत्यादि।

मिश्र तान

'शुद्धतान' और 'कूटतान', इन दोनों का जिसमें मिलाप या मिश्रण हो, उसे 'मिश्र तान' कहेंगे; जैसे—प ध नि सां ग म प ध ध प म प ग म रे सा। इसमें 'कूटतान' और 'शुद्ध तान' दोनों मिली हुई हैं।

खटके की तान

स्वरों पर धक्का लगाते हुए तान ली जाए, तो उसे 'खटके की तान' कहेंगे।

झटके की तान

जब तान दूनी चाल में जा रही हो और यकायक बीच में चौगुन की चाल में जाने लगे, तो उसे 'झटके की तान' कहेंगे; जैसे—सा रे ग म प ध नि सां नि ध प म, सारे गम पधनिसां निधपम गरेसानि़।

वक्र तान

यह कूटतान के ही समान होती है। वक्र का अर्थ है टेढ़ा, अर्थात् जिसकी चाल सीधी न हो, जिसमें स्वरों का कोई क्रम न हो।

अचरक तान

जिस तान में प्रत्येक दो स्वर एकसे बोले जाएँ जैसे—सासा रेरे गग मम पप धध। इसे 'अचरक की तान' कहेंगे।

सरोक तान

जिस तान में चार-चार स्वर एकसाथ सिलसिलेवार कहे जाएँ जैसे—सारेगम रेगमप गमपध मपधनि। इसे 'सरोक तान' कहेंगे।

लड़न्त तान

जिस तान में सीधी-आड़ी कई प्रकार की लय मिली हुई हों, उसे 'लड़न्त तान' कहते हैं; जैसे–नि़सा नि़सा रे रे रे रे निध़ निध़ सा सा सा सा इत्यादि। इन तानों में गायक और वादक की लड़न्त बड़ी मजेदार होती है।

सपाट तान

जिस तान में क्रमानुसार स्वर तेजी के साथ जाते हों, उसे 'सपाट तान' कहते हैं; उदाहरणार्थ—म़प़ध़नि सारेगम पधनिसां रेंगंमंपं।

गिटकरी तान

दो स्वरों को एकसाथ, शीघ्रता से एक के पीछे दूसरा लगाते हुए यह तान ली जाती है; जैसे—नि़सा नि़सा सारे सारे रेग रेग गम गम मप मप पध पध निसां निसां……इत्यादि।

जबड़े की तान

कंठ के अन्तस्तल से आवाज निकालकर जबड़े की सहायता से जब तान ली जाती हैं, तो उन्हें 'जबड़े की तानें' कहते हैं। ये मुश्किल होती हैं और सुलझे हुए गायक ही ऐसी तानें लेने में समर्थ होते हैं।

हलक-तान

जीभ को क्रमानुसार भीतर-बाहर चलाते हुए 'हलक-तान' ली जाती है।

पलट-तान

किसी तान को लेते हुए अवरोह करके लौट आने को 'पलट-तान' या 'पल्टा-तान' कहते हैं; यथा—सांनिधप मगरेसा।

बोल-तान

जिन तानों में तान के साथ-साथ गीत के बोल भी मिलाकर विलम्बित, मध्य और द्रुत आवश्यकतानुसार ऐसी तीनों लयों में गाए जाते हैं, वे 'बोल-तानें' कहलाती हैं; जैसे—गम रेसा मध मप

गुनि जन गाऽ वत

आलाप

गायक जब अपना गाना आरम्भ करता है, तो राग के अनुसार उसके स्वरों को विलम्बित लय में फैलाकर यह दिखाता है कि मैं कौन-सा राग गा रहा हूँ। आलाप को ही स्वर-विस्तार भी कहते हैं; जैसे बिलावल का स्वर-विस्तार इस प्रकार शुरू करेंगे:—ग ऽ, रे ऽ, सा ऽ सा रे सा ऽ ग ऽ म ग प ऽ म ग, म रे, सा ऽ ऽ ऽ इत्यादि।

बढ़त

जब कोई गायक, गाना गाते समय एक-एक या दो-दो स्वरों को लेते हुए एवं छोटे-छोटे स्वर-समुदायों से बढ़ते हुए बड़े-बड़े स्वर-समुदायों पर आकर लय को धीरे-धीरे बढ़ाता है और फिर बोल-तान, गमक इत्यादि का प्रयोग करता है, तब उसे 'बढ़त' कहते हैं।

आधुनिक आलाप-गान

आधुनिक संगीत में प्राचीन निबद्ध-अनिबद्ध गान के अन्तर्गत अनिबद्ध गान का केवल एक प्रकार प्रचार में है और वह है 'आलाप'। आलाप-गान करनेवाले बहुधा ध्रुवपदिए होते थे, जिनका स्वर-ज्ञान तथा राग-ज्ञान उच्च कोटि का होता था। इसी कारण उनका आलाप-गान सुन्दर और आकर्षक होता था। किन्तु अब तो खयाल-गायक भी सुन्दर आलाप करते देखे जाते हैं।

आलाप करने के वर्तमान समय में दो ढंग हैं :—

१. 'नोमतोम' द्वारा, २. 'अकार' द्वारा। 'नोमतोम' का आलाप त, ना, न, री, नों, नारे, नेनेरी, तनाना, नेतोम, नना इत्यादि शब्दों के साथ किया जाता है और 'अकार' का आलाप आऽऽऽऽ के उच्चारण द्वारा। अकार से आलाप करने की अपेक्षा 'नोम-तोम' द्वारा आलाप प्रभावशाली और उत्तम होता है, क्योंकि इसमें बीच में किसी स्थान पर सम दिखाने की अच्छी सुविधा रहती है। अकार द्वारा आलाप में यह सुविधा उतनी अच्छी दिखाई नहीं देती तथा नोम-तोम के आलाप में अनेक स्वर-वैचित्र्य दिखाने का कार्य सरलतापूर्वक होता है और द्रुत लय का आलाप भी इसमें भली प्रकार किया जा सकता है, क्योंकि द्रुत लय के आलाप में त, ना, न, री, नो इत्यादि अक्षर या शब्द गायक को बहुत सहायता पहुँचाते रहते हैं। किन्तु अकार के आलाप में द्रुत लय में काम दिखाते समय कठिनाई रहती है और अकार के आलाप से श्रोता भी ऊब जाते हैं, जबकि 'नोम-तोम' का आलाप उन्हें बराबर स्फूर्ति और चेतना प्रदान करता रहता है।

वास्तव में 'नोम-तोम' का आलाप प्राचीन काल की ईश्वरोपासना का बिगड़ा हुआ स्वरूप है। कहा जाता है कि प्राचीन गायक आलाप द्वारा ईश्वर-वन्दना 'ओं अनन्त नारायण' या 'तू ही अनन्त हरी' इत्यादि प्रार्थना-गान किया करते थे। बाद में केवल स्वरों का ही चमत्कार रह गया और निरर्थक शब्द प्रयुक्त किए जाने लगे। इसका एक कारण यह भी हो सकता है कि संगीत के पूर्व-पंडित संस्कृत-भाषा के विद्वान् होते थे, अतः उनका शब्दोच्चारण का ज्ञान भी उच्च कोटि का था। बाद में मुसलमान गायक उन शब्दों का उच्चारण करने में तो असमर्थ रहते थे, किन्तु वे उन स्वरों और रागों पर मोहित थे। इस प्रकार उन्होंने 'नोम-तोम' की युक्ति द्वारा राग और स्वर तो पकड़ लिए, किन्तु शब्द छोड़ दिए। यही हाल 'तराना' की गायकी का भी हुआ।

गायक प्रायः पूरे आलाप को चार भागों में बाँटते हैं—१. स्थायी, २. अन्तरा, ३. संचारी तथा ४. आभोग। पहले स्थायी का भाग लेकर आलाप आरम्भ करते हैं।

स्थायी

स्थायी में पहले षड्ज लगाकर वादी स्वर का महत्त्व दिखाते हुए पूर्वांग में आलाप चलता है। शुरू में कुछ मुख्य स्वर-समुदायों को लेकर फिर एक-एक नया स्वर अपने स्वर-समुदायों में जोड़-जोड़कर वे मध्य-स्थान के पंचम, धैवत और

निषाद तक जाते हैं, फिर तार-षड्ज को छूकर नीचे मध्य-षड्ज पर आकर स्थायी समाप्त करते हैं। स्थायी-भाग का आलाप अधिकतर मन्द्र और मध्य-सप्तकों में ही चलता है।

अन्तरा

इसके बाद मध्य-सप्तक के गान्धार या पंचम स्वर से अन्तरा का भाग शुरू करते हैं और तार-सप्तक के षड्ज पर पहुँचकर अनेक प्रकार के काम दिखाते हैं, अर्थात् इस स्थान पर विभिन्न तानें विभिन्न प्रकार से वहीं समाप्त करते हैं। फिर धीरे-धीरे उतरते हुए मध्य-षड्ज पर आकर मिल जाते हैं। इसमें मीड़ और कम्पन का काम भी खूब दिखाते हैं।

संचारी

तीसरा भाग संचारी का आता है । इसे प्राय: सा, म, प, इनमें से किसी भी स्वर से आरम्भ करके मध्य-पंचम या मध्य-षड्ज पर ही आकर समाप्त किया जाता है। क्योंकि संचारी में प्राय: तार-सप्तक के काम नहीं दिखाए जाते। संचारी में गमकों का प्रयोग अधिक दिखाई देता है; क्योंकि संचारी में स्थायी-भाग की पुनरावृत्ति भी संशोधित रूप में हो जाती है। संचारी के बाद फिर स्थायी का आलाप नहीं करते, बल्कि एकदम आभोग आरम्भ कर देते हैं।

आभोग

आभोग का विस्तार प्राय: अन्तरा के विस्तार के समान ही करते हैं, अत: इसे अन्तरा की पुनरावृत्ति का ही संशोधित रूप समझा जाए तो अनुचित नहीं। इसमें तीनों सप्तकों का प्रयोग किया जा सकता है और तार-सप्तक में गायक अपने गले के धर्मानुसार जितना ऊँचा चाहे, जा सकता है। इसमें अति द्रुत लय हो जाती है।

आलाप में लय की गति

लय की दृष्टि से उपर्युक्त चारों भागों के आलाप में इस प्रकार चला जाता है—१. स्थायी में विलम्बित लय के साथ आलाप चलता है; २. अन्तरा में आलाप करने का समय आता है, तो मध्य लय कर दी जाती है और तानों का प्रयोग आरम्भ कर दिया जाता है। बीच-बीच में छोटी-छोटी तानों की सहायता से आलाप के काम में सुन्दरता पैदा की जाती है और तीनों सप्तकों में आलाप का काम दिखाकर स्थायी और अन्तरा, दोनों के काम इस भाग में दुबारा दिखाए जा सकते हैं; ३. संचारी भाग में लय द्रुत हो जाती है और तीनों सप्तकों में गमक तथा लयकारी का प्रदर्शन करते हुए आलाप चलता है; ४. आभोग में लय को और भी द्रुत करके अन्तरा के भाग को विविध प्रकार से दुहराते हुए गमक का प्रयोग जारी रखा जाता है और गायक जितनी तेजी से गा सकता है, अपना सम्पूर्ण कौशल दिखाते हुए तबला या पखावजवाले के साथ एक प्रकार की प्रतियोगिता उपस्थित कर देता है। इस भाग के नोम-तोम के शब्द अति द्रुत लय के कारण तराने का रूप धारण कर लेते हैं।

गमक-प्रकार

स्वरस्य कम्पो गमकः श्रोतृचित्तसुखावहः ।
तस्य भेदास्तुतिरिपः स्फुरितः कम्पितस्तथा ॥
लीन आन्दोलितवलितत्रिभिन्नकुरुलाहताः ।
उल्लासितः प्लावितश्च हुम्फितोमुद्रितस्तथा ॥
नामितो मिश्रितः पंचदशेति परिकीर्तिता ।
—संगीत-रत्नाकर

अर्थात्—स्वरों का ऐसा कम्पन, जो सुननेवालों के चित्त को सुखदायी हो, 'गमक' कहलाता है ।

गमक के पन्द्रह भेद हैं—१. तिरप, २. स्फुरित, ३. कम्पित, ४. लीन, ५. आन्दोलित, ६. वलित, ७. त्रिभिन्न, ८. कुरुला, ९. आहत, १०. उल्लासित, ११. प्लावित, १२. हुम्फित, १३. मुद्रित, १४. नामित और १५. मिश्रित ।

दक्षिणी संगीत के ग्रन्थों में गमकों के निम्नलिखित दस प्रकार मिलते हैं:—

१. आरोह, २. अवरोह, ३. ढालु, ४. स्फुरित, ५. कम्पित, ६. आहत, ७. प्रत्याहत ८. त्रिपुच्छ, ९. आन्दोलित और १०. मूर्च्छना ।

प्राचीन समय में स्वरों में एक विशेष प्रकार के कम्पन को 'गमक' कहते थे । उस कम्पन को प्रकट करने के लिए जो विभिन्न ढंग उस समय प्रचार में थे, उन्हीं का उल्लेख ऊपर के श्लोकों में किया गया है ।

वर्तमान समय में यद्यपि गमकों का प्रयोग प्राचीन ढंग से नहीं होता, तथापि किसी-न-किसी रूप में गमक का प्रयोग हमारे वाद्य-संगीत और कंठ-संगीत में होता अवश्य है । खटका, मुर्की, जमजमा, मीड़, सूत, कम्पन, गिटकरी इत्यादि शब्द गमक की ही श्रेणी में आते हैं ।

आधुनिक संगीतज्ञ 'गमक' की व्याख्या इस प्रकार करते हैं—जब हृदय से जोर लगाकर गम्भीरतापूर्वक कुछ कम्पन के साथ स्वरों का प्रयोग किया जाता है, तो उसे गमक कहते हैं । गमक का प्रयोग अधिकतर ध्रुवपद-गायन में होता है; किन्तु कोई-कोई गायक खयाल-गायन में भी गमक की तानें लेते हैं । नोम्-तनोम् के आलाप में भी जब अन्तिम भाग द्रुत लय का आता है, तो गमकयुक्त तानें ली जाती हैं ।

———

रागों का दस विभागों में वर्गीकरण करने का प्राचीन सिद्धान्त

प्राचीन संगीत-पंडितों ने अपने रागों का दस विभागों में वर्गीकरण इस प्रकार किया है :—

१. ग्राम-राग, २. उपराग, ३. राग, ४. भाषा, ५. विभाषा, ६. अन्तर्भाषा, ७. रागांग, ८. भाषांग ९. क्रियांग, १० उपांग ।

ग्राम-राग

'संगीत-रत्नाकर' ग्रन्थ में शुद्धा, भिन्ना, गौड्या, वेसरा और साधारण, इन पाँच गीतियों के अन्तर्गत तीस ग्राम-राग माने हैं, जो इस प्रकार हैं :—

१. शुद्धा—१. षड्ज-ग्राम, २. मध्यम-ग्राम, ३. शुद्धकैशिक, ४. शुद्धपंचम, ५. शुद्धकैशिक मध्यम, ६. शुद्धसाधारित, ७. शुद्धषाडव ।

२. भिन्ना—१. भिन्नषड्ज, २. भिन्नपंचम, ३. भिन्नकैशिक, ४. भिन्नतान, ५. भिन्नकैशिक मध्यम ।

३. गौड्या—१. गौडकैशिक, २. गौडपंचम, ३. गौडकैशिक मध्यम ।

४. वेसरा—१. सौवीर, २. टंक, ३. बोट्ट, ४. मालवकैशिक, ५. टंककैशिक, ६. हिन्दोल, ७. मालवपंचम, ८. वेसरषाडव ।

५. साधारण—१. रूपसार, २. शक:, ३. भंभाणपंचम, ४. नर्त, ५. गांधारपंचम, ६. षडज-कैशिक, ७. ककुभ ।

उपर्युक्त ३० ग्राम-रागों के अतिरिक्त ८ उपराग, २०राग, ८ पूर्व-प्रसिद्ध रागांग, ११ भाषांग, १२ क्रियांग, ३ उपांग, ९६ भाषा राग, २० विभाषा राग, ४ अन्तर्भाषा-राग, १३ शार्ङ्गदेव के समय में प्रचलित राग, ९ भाषांग, ३ क्रियांग और २७ उपांग राग बताए गए हैं। इस प्रकार 'रत्नाकर' ग्रन्थ में २६४ राग बताए गए हैं।

'संगीतसमय-सार' ग्रन्थ में पार्श्वदेव ने देशी संगीत के अन्तर्गत १०१ राग मानकर उनका वर्गीकरण इस प्रकार किया है :—

रागांग राग	भाषांग राग	उपांग राग	क्रियांग राग
१२ सम्पूर्ण	२१ सम्पूर्ण	१८ सम्पूर्ण	——
४ षाडव	११ षाडव	७ षाडव	३
४ औडुव	१५ औडुव	६ औडुव	
२०	४७	३१	

ग्राम-राग—प्राचीन संगीत के कुछ ग्रन्थों में ग्रामों से जातियों और जातियों से ग्राम-रागों की उत्पत्ति मानी गई है। प्राचीन काल में राग-गायन के स्थान पर जाति-गायन ही प्रचलित था, अतः रागों के प्रकार या वर्ग को ही 'ग्राम-राग' कहा जाता था।

उपराग—ग्राम-रागों में ही विभिन्न स्वरों के हेर-फेर से उपरागों की उत्पत्ति हुई

राग—ये भी ग्राम-रागों के माध्यम से ही उत्पन्न हुए।

भाषा—गाने की एक विधि या शैली को कहा जाता था। उस शैली का गायन जितने रागों में व्यवहृत होता था, उन्हें 'भाषा राग' कहते थे। मतंग ने भाषा के अन्तर्गत सोलह राग बताए हैं।

विभाषा—गाने की एक अन्य विधि या प्रकार को कहा जाता था। इसके अन्तर्गत मतंग ने बारह राग अपने ग्रन्थ में लिखे हैं।

अन्तर्भाषा—गाने की एक तीसरी विधि थी, जिसका प्रयोग विशिष्ट रागों में किया जाता था।

रागांग, भषांग, क्रियांग और उपांग के विवरण भातखंडेजी ने अपनी पुस्तक में इस प्रकार दिए हैं, जो उन्हें दक्षिण के एक पंडित ने बताए थे :—

रागांग—ऐसे शास्त्रीय रागों को कहा जाता था, जिनमें राग के सभी शास्त्रीय नियमों का पालन किया जाता हो।

भाषांग—ऐसे रागों को कहा जाता था, जो शास्त्रीय राग-नियमों पर आश्रित न रहकर भिन्न-भिन्न देशों की विभिन्न शैलियों या भाषाओं द्वारा निर्मित होकर व्यवहार में लाए जाते थे। उन्हीं शास्त्रीय रागों के 'भाषांग राग' कहलाते थे,जिनसे वे बहुत-कुछ मिलते-जुलते थे।

क्रियांग—जिन रागों में शास्त्रीय राग-नियमों का पालन करते हुए कुछ गायक अपनी क्रिया से किसी विवादी स्वर का प्रयोग करके उनमें विशेषता पैदा करते थे, वे 'क्रियांग राग' कहलाते थे।

उपांग—क्रियांग रागों की तरह अन्य रागों में हेर-फेर करके 'उपांग राग' उत्पन्न किए जाते थे। इनमें मूल राग के किसी स्वर को हटाकर नया स्वर ले लिया जाता था।

'संगीत-दर्पण' के लेखक दामोदर पंडित ने इनकी व्याख्या इस प्रकार संक्षेप में बताई है :—

रागांग राग—वे हैं, जिनमें ग्राम-राग की कुछ छाया मिले।

भाषांग राग—वे हैं, जिनमें भाषा-राग की छाया हो।

क्रियांग राग—वे हैं, जिनसे शिथिल इन्द्रियों को बल व उत्साह प्राप्त होता हो।

उपांग राग—वे हैं, जिनमें राग की छाया बहुत ही कम मिलती हो।

इसी से मिलता-जुलता वर्णन कल्लिनाथ ने 'संगीत-रत्नाकर' की टीका में दिया है।

उपर्युक्त शास्त्रीय मतभेद के कारण, उक्त शब्दों का ठीक-ठीक विवरण क्या हो सकता है, इसका निर्णय करना कठिन ही है। अतः विभिन्न शास्त्रों का व्यापक अध्ययन करके विद्वानों द्वारा इस विषय पर कोई एक मत निर्धारित कर लिया जाए, तभी यह समस्या हल हो सकती है।

आदत-जिगर-हिसाब

ऐसे पुराने उस्तादों से, जो विशेष पढ़े-लिखे नहीं हैं, बातचीत करते समय बहुधा कुछ ऐसे शब्द सुनाई देते हैं, जिनका अर्थ जानने के लिए संगीत के विद्यार्थी उत्सुक रहते हैं। उन शब्दों में ही आदत, जिगर और हिसाब आते हैं, जिनका उल्लेख यहाँ किया जाता है।

प्राचीन गुणी गायकों का कहना है कि गायक में 'आदत, जिगर और हिसाब' इनमें से कम-से-कम प्रथम दो बातें तो होनी ही चाहिए, अन्यथा वह अपनी संगीत-साधना में सफलता प्राप्त नहीं कर सकेगा। तीसरी विशेषता 'हिसाब' प्रायः ताल-वाद्य-वादकों से सम्बन्धित है, जिसका उल्लेख नीचे किया जाएगा।

आदत—उत्तम रियाज (अभ्यास) द्वारा भली प्रकार तान लेने की सामर्थ्य प्राप्त करने की क्षमता रखना 'आदत' कहलाता है। जो संगीत-प्रेमी नियमित रूप से नित्य-प्रति अभ्यास करता रहता है, उसके उच्चारण में गम्भीरता और स्वर-माधुर्य पैदा हो जाता है। उसके गाने की 'आदत' जब तक कायम रहेगी, तब तक उसे सफलता मिलती रहेगी। इसके विरुद्ध कोई बड़े-से-बड़ा गायक भी जब अपना रियाज छोड़ देता है, तो उसके गायन में वह आकर्षण नहीं रहता, जोकि रियाज जारी रहने पर सम्भव हो सकता था। दूसरे शब्दों में कह सकते हैं कि उस संगीतज्ञ की 'आदत' छूट गई।

जिगर—आयुर्वेद में 'जिगर' शरीर के उस भाग को कहा जाता है, जिसके द्वारा रक्त बनता है; लेकिन संगीतज्ञों के कोष में इसका अर्थ है 'अंग-स्वभाव' अर्थात् Musical Temperament। राग की बढ़त करते समय किस स्थान पर कौनसा स्वर-समुदाय सुन्दर और आकर्षक प्रतीत होगा; राग में कौनसे स्वर लगाने पर राग का माधुर्य बढ़ेगा, इत्यादि बातों का ज्ञान रखना ही अंग-स्वभाव के अन्तर्गत आता है और इसे संगीतज्ञों की भाषा में 'जिगर' कहते हैं।

हिसाब—राग व ताल के शास्त्रीय नियमों की जानकारी रखना ही 'हिसाब' के अन्तर्गत आता है। बहुत-से अशिक्षित गायक या तबला-वादक मात्राओं के हिसाब-किताब को न जानते हुए भी यद्यपि काम कर जाते हैं, किन्तु गुणी लोगों के साथ बैठकर बातचीत करते समय जब मात्राओं या शास्त्रीय नियमों का मसला पेश होता है, तब वे बगलें झाँकने लगते हैं। किसी-किसी गायक को बड़ी-बड़ी तानें लेकर 'सम' पर मिलना आता है, किन्तु वह बेचारा अशिक्षित होने के कारण 'हिसाब' से शून्य है।

इस प्रकार आदत, जिगर और हिसाब, ये तीनों विशेषताएँ जिस संगीतज्ञ में होंगी, वही सफल कलाकार माना जाएगा और इन तीनों में से जो भी गुण उसमें कम होगा, वह उतना ही अधूरा समझा जाएगा।

स्वरलिपि-पद्धति

किसी गाने की कविता अथवा साजों पर बजाने की गत को स्वर और ताल के साथ जब लिखा जाता है, तब उसे स्वरलिपि (Notation) कहते हैं। प्राचीन काल में भारत में लगभग ३५० ई० पू० अर्थात् पाणिनि के समय के पहले ही स्वरलिपि-पद्धति विद्यमान थी, किन्तु तब यह स्वरलिपि-पद्धति अपने शैशव-काल में ही थी। उस समय तीव्र तथा कोमल स्वरों के भेद तथा ताल-मात्रा-सहित स्वरलिपि नहीं होती थी; अपितु केवल स्वरों के नाम उनके प्रथम अक्षरों के साथ सरगम के रूप में दिए जाते थे। उनसे केवल इतना ही बोध होता था कि अमुक गायन में अमुक स्वर प्रयुक्त हुए हैं।

तीव्र-कोमल स्वरों के चिह्न न होने के कारण एवं ताल, मात्रा, मीड़ आदि के अभाव में उन स्वरलिपियों से संगीत-विद्यार्थी लाभ उठाने में असमर्थ रहे। प्राचीन समय में स्वरलिपि-पद्धति का विकास न होने के और भी कुछ कारण थे; उदाहरणार्थ:—

१. उस समय संगीत-कला विशेषतया क्रियात्मक (Practical) रूप में थी, अर्थात् गुरु-मुख से सुनकर ही विद्यार्थी शिक्षा ग्रहण किया करते थे।

२. लेखन-प्रणाली एवं मुद्रण-सम्बन्धी सुविधाएँ उस समय आजकल जैसी न थीं।

३. रागों को जबानी (मौखिक) याद रखा जाता था।

४. संगीत-कला गुरु से शिष्य को और शिष्य से उसके शिष्य को सिखाने या कंठस्थ कराने की प्रथा थी।

५. प्राचीन समय के उस्ताद अपनी कला को, केवल अपने पुत्र अथवा विश्वसनीय शिष्यों को भी लिखकर नहीं बताते थे, बल्कि सीना-ब-सीना (सामने बैठकर) ही सिखाना पसन्द करते थे।

विद्यार्थियों के लिए सुबोध और सरल स्वरलिपि का निर्माण आज से ५०-६० वर्ष पूर्व हुआ, जिसका श्रेय भारतीय संगीत की दो महान् विभूतियों १. पं० विष्णुनारायण भातखंडे और २. पं० विष्णुदिगम्बर पलुस्कर को है।

इनके द्वारा निर्मित स्वरलिपियों का प्रचार शनैः-शनैः समस्त भारत में होता गया। बीच-बीच में अन्य कई संगीत-पंडितों ने भी अपनी-अपनी पृथक् स्वरलिपि-पद्धतियाँ चालू कीं, किन्तु वे व्यापक रूप से प्रचार में न आ सकीं और आज उक्त दोनों (भातखंडे व पलुस्कर) पद्धतियाँ ही लोकप्रिय होकर प्रचार में आ रही हैं।

यद्यपि इन स्वरलिपि-पद्धतियों से गायक के गले की सभी विशेषताएँ लिपिबद्ध करना सम्भव नहीं हो सका है; उदाहरणार्थ-भारतीय संगीत की विशेषताएँ गमक, गिटकरी, राग-सौन्दर्य, अलंकार, श्रुति-प्रयोग, स्वर-माधुर्य आदि बारीकियाँ स्वरलिपि द्वारा व्यक्त नहीं की जासकतीं। फिर भी वर्तमान स्वरलिपि-पद्धतियों से संगीत-विद्यार्थियों को जो सहायता मिली है और मिल रही है, उसे भुलाया नहीं जा सकता।

श्री भातखंडे ने पुराने घरानेदार उस्तादों के गायनों की स्वरलिपियाँ तैयार करने में बहुत ही परिश्रम किया था। उन्होंने समस्त भारत का भ्रमण करके, उस्तादों की सेवा तथा खुशामद करके स्वरलिपियाँ तैयार कीं। उस समय कुछ ऐसे भी उस्ताद थे, जो अपने गाने की स्वरलिपि किसी भी प्रकार दूसरे व्यक्ति को बनाने की आज्ञा नहीं देते थे। श्री भातखंडे ने बड़ी युक्ति और कौशल से परदों के पीछे छिप-छिपकर उनका गायन सुना और स्वरलिपियाँ तैयार कीं, एवं बहुत-सी स्वरलिपियाँ ग्रामोफोन-रिकार्डों द्वारा भी तैयार कीं। इस प्रकार कई हजार चीजों की स्वरलिपियाँ तैयार करके उन्हें 'क्रमिक पुस्तक मालिका' नाम से छह भागों में प्रकाशित कराकर संगीत-विद्यार्थियों का मार्ग प्रशस्त कर दिया। इसी प्रकार पं० विष्णुदिगम्बर पलुस्कर ने भी कई पुस्तकें तैयार कीं। पलुस्करजी की स्वरलिपि-पद्धति जो प्रारम्भ में उनके द्वारा चालू हुई थी, अब उसमें कुछ परिवर्तन हो गए हैं। यही कारण है कि विष्णुदिगम्बरजी की प्रारम्भिक मूल पुस्तकों में तथा आज उनके विद्यालयों में चलनेवाली 'रागविज्ञान' आदि पुस्तकों के चिन्हों में काफी अन्तर पाया जाता है। तथापि वर्तमान स्वरलिपि-प्रणाली उनकी प्राचीन प्रणाली से अधिक सुविधाजनक है। यही कारण है कि यह परिमार्जित स्वरलिपि-पद्धति विशेष रूप से प्रचार में आ रही है। विष्णुदिगम्बरजी की स्वरलिपि-पद्धति जो आजकल प्रचार में आ रही है, इस प्रकार है—

विष्णुदिगम्बर-पद्धति के स्वरलिपि-चिह्न

१. जिन स्वरों के ऊपर-नीचे कोई चिन्ह नहीं होता, वे मध्य-सप्तक के शुद्ध स्वर समझे जाते हैं; जैसे—रे ग म प।

२. जिन स्वरों के नीचे हलन्त का निशान होता, उन्हें कोमल या विकृत स्वर मानते हैं, जैसे—रि् ग् ध् नि्।

३. तीव्र या विकृत मध्यम को उल्टे हलन्त द्वारा इस प्रकार दिखाते हैं—म॒

४. ऊपर बिन्दीवाले स्वर मन्द्र-सप्तक के माने जाते हैं; जैसे—पं धं निं

५. जिन स्वरों के ऊपर खड़ी लकीर होती है, वे तार-सप्तक के स्वर होते हैं; जैसे—सा॑ रि॑ ग॑ म॑

६. स्वर पर मात्राओं के लिए इस प्रकार चिन्ह रखे हैं:—

+ चार मात्रा जैसे सा
(नीचे +)

ऽ दो मात्रा, जैसे सा
(नीचे ऽ)

– १ मात्रा, जैसे सा
(नीचे –)

० आधी मात्रा, जैसे सा
(नीचे ०)

⌣ ¼ मात्रा, जैसे प
(नीचे ⌣)

⌣⌣ ⅛ मात्रा, जैसे म
(नीचे ⌣⌣)

७. उच्चारण के लिए अवग्रह-चिन्ह (ऽ) का प्रयोग करते हैं और गीत के अक्षरों के ठहराव को लम्बा करने के लिए बिन्दु (•) का प्रयोग करते हैं।

जैसे—ग ऽ ऽ प
रा • • म

८. स्वरों के नीचे ३ या ६ इत्यादि लिखा हो, तो वहाँ १ मात्रा में ३ या ६ स्वर बोले जाते हैं।

९. किसी स्वर के ऊपर कोई दूसरा स्वर लिखा हो, तो कण-स्वर (Grace-note) के रूप में प्रयुक्त करते हैं।

१०. ताल में सम के लिए १ चिन्ह लगाते हैं; खाली के लिए + चिन्ह का प्रयोग होता है; अन्य तालियों के लिए क्रमश: उन गिनतियों का प्रयोग करते हैं, जिन गिनतियों पर ताल लगानी होती है।

भातखंडे-पद्धति के स्वरलिपि-चिह्न

१. जिन स्वरों के नीचे-ऊपर कोई चिन्ह: नहीं होता, उन्हें शुद्ध स्वर मानते हैं; जैसे—सा रे ग म।

२. जिन स्वरों के नीचे आड़ी रेखा खींच दी गई हो, उन्हें कोमल स्वर कहते हैं, जैसे—रे ग ध नि।

३. तीव्र मध्यम की पहचान के लिए म के ऊपर एक खड़ी लकीर खींच दी जाती है; जैसे—मं।

४. नीचे बिन्दुवाले स्वर मन्द्र-सप्तक के माने जाते हैं; जैसे—म़ प़ ध़।

५. ऊपर बिन्दुवाले स्वर तार-सप्तक के माने जाते हैं; जैसे—गं रें सां।

६. बिना बिन्दीवाले स्वर मध्य-सप्तक के समझने चाहिए; जैसे—प म ग।

७. गाने के जिस शब्द के आगे जितने अवग्रह-चिन्ह (ऽ) हों, उस शब्द को उतनी ही मात्रा बढ़ाकर गाते हैं; जैसे—श्या ऽ ऽ म।

८. जिस स्वर के आगे जितनी पड़ी लकीरें (–) हों, उस स्वर को उतनी ही मात्रा बढ़ाकर गाते हैं; जैसे—ग – –।

९. कई स्वरों को एक मात्रा में गाने-बजाने के लिए ‿ इस चिन्ह का प्रयोग होता है; जैसे—पमग अथवा रेगमप।

१०. स्वर के ऊपर ⌒ इस प्रकार के चिन्ह को मीड़ कहते हैं; जैसे—म प ध नि अर्थात् यहाँ पर मध्यम से निषाद तक मीड़ ली जाएगी।

११. किसी स्वर के ऊपर कोई स्वर दिया हो, तो उसे कण-स्वर समझना चाहिए;

ग
जैसे—प अर्थात् ग को जरा छूते हुए प स्वर को गाना या बजाना है।

१२. जो स्वर कोष्ठक में बन्द हो, उसे इस प्रकार गाना चाहिए—पहले उसके बाद का स्वर, फिर वह स्वर जो कोष्ठक में बन्द है, फिर उसके पहले का स्वर तथा फिर वही कोष्ठकवाला स्वर। अर्थात् एक मात्रा में चार स्वर गाए जाएँगे; जसे (प)= ध पम प।

१३. ताल में सम दिखाने का यह × चिन्ह होता है।

१४. खाली के लिए शून्य के चिन्ह (०) का प्रयोग होता है।

१५. सम को पहली ताली मानकर अन्य तालियों के लिए क्रमशः २-३-४ आदि संख्याएँ लगाते हैं।

संगीत और रस

मानव जाति के अन्तःकरण में निवास करनेवाली विशिष्ट भावनाओं के परमोत्कर्ष को ही शास्त्रज्ञों ने 'रस' कहा है; अथवा जब कोई स्वाभाविक वस्तु कुछ परिवर्तित होकर मन के अन्दर एक असाधारण नवीनता उत्पन्न कर देती है, तब उसे 'रस' कहते हैं ।

साहित्य में नव रस माने गए हैं; यथा:—

> शृंगारहास्यकरुणरौद्रवीरभयानकाः ।
> बीभत्सोद्भुत इत्यष्टौ रस शान्तस्तथा मतः ॥

१. शृंगार, २. हास्य, ३. करुण, ४. रौद्र, ५. वीर, ६. भयानक, ७. बीभत्स, ८. अद्भुत, और ९. शान्त ।

संगीत में केवल शृंगार, वीर, करुण और शान्त, इन चार रसों में ही उपर्युक्त नव रसों का समावेश माना गया है। हमारे प्राचीन शास्त्रकारों ने प्राचीन सप्त स्वरों के रस इस प्रकार बताए हैं:—

> सरी वीरेऽद्भुते रौद्रे धा बीभत्से भयानके ।
> कार्यो गनी तु करुणहास्यशृंगारयोर्मपी ॥

अर्थात्—

सा, रे—वीर, रौद्र तथा अद्भुत रसों के पोषक हैं ।

ध— बीभत्स तथा भयानक रसों का पोषक है ।

ग, नि—करुण रस के पोषक हैं ।

म, प—हास्य व शृंगार रसों के पोषक हैं ।

पंडित भातखण्डेजी ने हिन्दुस्तानी संगीत-पद्धति में स्वरों के अनुसार रागों के जो तीन वर्ग नियत किए हैं, उन तीनों वर्गों में पंडितजी ने रसों का समावेश इस प्रकार करने का सुझाव दिया है; यथा :—

रे ध कोमलवाले संधिप्रकाश रागों में—शान्त व करुण रस ।

रे ध तीव्रवाले रागों में—शृंगार रस ।

ग नि कोमलवाले रागों में—वीर रस ।

यद्यपि प्राचीन ग्रंथकारों ने किसी एक स्वर से ही एक रस की सृष्टि बताई है, किन्तु वास्तव में देखा जाए तो केवल एक ही स्वर से किसी विशेष रस की उत्पत्ति होना सम्भव नहीं ।

उदाहरणार्थ—षड्ज स्वर को उन्होंने वीररसप्रधान बताया है तथा पंचम को शृंगाररस का स्वर माना है और हमारे प्रायः सभी रागों में षड्ज व पंचम स्वर अवश्य मिलते हैं, तो इसका यह अर्थ हुआ कि सभी राग वीररस या शृंगाररसप्रधान होने

चाहिए थे; किन्तु वस्तुतः ऐसी बात नहीं है। अनेक रागों से विभिन्न रसों की सृष्टि होती है। निष्कर्ष यही निकलता है कि एक स्वर अपने अन्य सहयोगी स्वरों के साथ मिलकर ही रसोत्पत्ति करने में सफल होता है। कोई वादी स्वर अपने संवादी, अनुवादी या विवादी स्वर के सम्पर्क से ही किसी रस की सृष्टि करता है। शास्त्रीय स्वर-योजना के अनुसार निश्चित ऋतु में, योग्य वातावरण को देखकर श्रोताओं की मनोभावना को समझते हुए कोई राग जब किसी योग्य गायक द्वारा गाया जाए तथा उसके गीत का काव्य भी उसी रस के अनुकूल हो, तो रस की उत्पत्ति अवश्य होगी, इसमें कोई सन्देह नहीं। इसके विपरीत यदि कोई गायक बीभत्स रस की स्वरावली में शान्त रस का गीत गाने लगे, तो रसोत्पत्ति कदापि नहीं हो सकती। जहाँ पर केवल स्वरों द्वारा ही रस की सृष्टि करनी है, वहाँ गीत को छोड़कर केवल स्वर-लहरी द्वारा भी रसोत्पत्ति की जा सकती है। स्वर और शब्दों से ही गीत का निर्माण होता है और जब गीत में स्वर ही न रहेंगे, तो वह शब्दों की एक निरस रचना-मात्र रह जाएगी, जो बिना स्वरों की सहायता के रस की सृष्टि करने में सर्वथा असफल रहेगी। किसी एक ही शब्द द्वारा स्वरों की सहायता से विभिन्न रसों को उत्पन्न किया जा सकता है; जैसे 'आओ' यह शब्द लीजिए। इसे जब करुण स्वरों में कहा जाएगा, तो ऐसा मालूम होगा, मानो कोई सहायता के लिए पुकार रहा है; इस प्रकार करुण रस की सृष्टि होगी। और जब इसी शब्द को शृंगारिक स्वरों में कहा जाएगा, तो ऐसा प्रतीत होगा मानो कोई प्रेमी अपनी प्रेमिका को बुला रहा है; यहाँ शृंगार रस की सृष्टि होगी। कठोरता के स्वरों में इसी शब्द को कहा जाए, मानो लड़ने के लिए दुश्मन को चुनौती दी जा रही है, तब इसी 'आओ' से वीर रस की सृष्टि होगी।

उपर्युक्त उद्धरण से यह भली-भाँति प्रकट है कि एक ही शब्द से विभिन्न रसों की सृष्टि केवल स्वर-भेद के कारण हुई, अतः रसोत्पत्ति का मूल कारण स्वर ही माना जाएगा। काव्य द्वारा भी रुदन, क्रोध, भय, आश्चर्य, हास्य आदि भावों को सृष्टि तभी होती है, जबकि भिन्न शैली से उस कविता का उच्चारण हो और भिन्न शैली के उच्चारण में स्वरों का कुछ-न-कुछ अस्तित्व अवश्य ही होगा। वास्तव में देखा जाए, तो प्रत्येक उच्चारण का सम्बन्ध नाद, स्वर और लय से है; यथाः—

आत्मा विवक्षमाणोऽयं मतः प्रेरयते मनः।
देहस्थं मन्हिमाहंति स प्रेरयति मारुतम्॥
ब्रह्मग्रन्थिस्थितः सोऽथ क्रमादूर्ध्व पथे चरन्।
नाभिहृत्कंठमूर्धास्येष्वाविभवियते ध्वनिम्॥

अर्थात्—'जब आत्मा को बोलने की इच्छा होती है, तब वह मन को प्रेरित करती है; मन देहस्थ अग्नि को प्रेरणा देता है; अग्नि वायु का चलन करती है; तब ब्रह्म-ग्रन्थिस्थ वायु क्रमशः ऊपर चढ़ती हुई नाभि, हृदय, कंठ, मूर्धा और मुख, इन स्थानों से पाँच प्रकार के नाद (ध्वनि) उत्पन्न करती है। इन नादों का सम्बन्ध स्वर से है और स्वरों की सहायता से भावना तथा रस की उत्पत्ति होती है। जिस प्रकार स्वरों द्वारा

रस की उत्पत्ति होती है, उसी प्रकार नृत्य तथा ताल के द्वारा भी हमें विभिन्न प्रकार के रस प्राप्त होते हैं। एक सफल नर्तक अपने नृत्य में विभिन्न प्रकार के भावों द्वारा रसोत्पादन करने में सफल होता है। ताण्डव नृत्य से वीर तथा रौद्र रस, लास्य से शृंगार-रस तथा कथक नृत्य की अनेक भाव-भंगिमाओं द्वारा शृंगार, हास्य, करुण और शान्त रसों की सफलतापूर्वक उत्पत्ति की जा सकती है। यहाँ पर न स्वर है, न शब्द; फिर भी रस-सृष्टि होती है। यही नृत्य-कला की विशेषता है।

ताल और लय का सम्बन्ध भी रस से होता है; यथा :—

तथा लया हास्यशृंगारयोर्मध्यमाः ।
बीभत्सभयानकयोर्विलम्बितः ॥
वीररौद्राद्भुतेषु च द्रुत ।

—विष्णुधर्मोत्तर पुराण

अर्थात्—हास्य एवं शृंगार रसों में मध्य लय का प्रयोग होता है, बीभत्स एवं भयानक रसों में विलम्बित लय का तथा वीर, रौद्र एवं अद्भुत रसों में द्रुत लय का प्रयोग होता है।

इस प्रकार गायन, वादन, नर्तन, ताल और लय, संगीत के इन सभी अंगों द्वारा विभिन्न रसों की सृष्टि सम्भव है।

प्रथम वर्ष से पंचम वर्ष तक के

साठ रागों का वर्णन

१. बिलावल
२. अल्हैयाबिलावल
३. खमाज
४. यमन
५. काफी
६. भैरवी
७. भूपाली
८. सारंग
९. बिहाग
१०. हमीर
११. देस
१२. भैरव
१३. भीमपलासी
१४. बागेश्री
१५. तिलककामोद
१६. आसावरी
१७. केदार
१८. देशकार
१९. तिलंग
२०. हिंडोल
२१. मारवा
२२. सोहनी
२३. जौनपुरी
२४. मालकोंस
२५. छायानट
२६. कामोद
२७. बसन्त
२८. शंकरा
२९. दुर्गा
३०. दुर्गा (बि० ठाठ)
३१. शुद्धकल्याण
३२. गौड़सारंग
३३. जैजैवन्ती
३४. पूर्वी
३५. पूर्याधनाश्री
३६. परज
३७. पूरिया
३८. सिंदूरा
३९. कालिंगड़ा
४०. बहार
४१. अड़ाना
४२. धानी
४३. माँड़
४४. गौड़मल्लार
४५. झिंझोटी
४६. श्री
४७. ललित
४८. मियाँमल्लार
४९. दरबारीकान्हड़ा
५०. तोड़ी
५१. मुलतानी
५२. रामकली
५३. विभास
५४. पीलू
५५. आसा
५६. पटदीप
५७. रागेश्री
५८. पहाड़ी
५९. जोगिया
६०. मेघमल्लार

बिलावल

शुद्ध सुरन सों गाइए, ध-ग संवाद बखान ।
राग बिलावल को समय, प्रातःकाल प्रमान ॥

राग—बिलावल	वर्जित स्वर—कोई नहीं
ठाठ—बिलावल	आरोह—सा रे ग म प ध नि सां
जाति—सम्पूर्ण	अवरोह—सां नि ध प म ग रे सा
वादी—ध, संवादी—ग	पकड़—गरे, गप, ध, नि सां
स्वर—सभी शुद्ध	गायन-समय—प्रातःकाल का प्रथम प्रहर

यह उत्तरांगवादी राग है। यह राग कल्याण राग के समान दिखाई देता है, अतः इसे प्रातःकाल का कल्याण भी कहते हैं।

अल्हैयाबिलावल

आरोहन मध्यम नहीं, ध-ग संवाद बखान ।
उतरत कोमल नी लखै, ताहि अल्हैया जान ॥

राग—अल्हैयाबिलावल	वर्जित स्वर—आरोह में मध्यम
ठाठ—बिलावल	आरोह—सा, रे, गप, ध नि सां
जाति—षाडव-सम्पूर्ण	अवरोह—सांनिध, प, मग, रेसा
वादी—ध, संवादी—ग	पकड़—गरे, गप, धनिसां
स्वर—अवरोह में दोनों नि	गायन-समय—प्रातःकाल

बिलावल राग से ही अल्हैयाबिलावल की उत्पत्ति हुई है। अवरोह में कोमल निषाद का थोड़ा-सा प्रयोग इसके सौन्दर्य को बढ़ाता है। निषाद और गान्धार इसमें वक्र हैं।

खमाज

दोउ निषाद नीके लगें, आरोही रे हानि ।
ग-नि वादी-संवादि तें, खम्माजहि पहचानि ॥

राग—खमाज	वर्जित स्वर—आरोह में ऋषभ
ठाठ—खमाज	आरोह—सा, गम, प, धनिसां
जाति—षाडव-सम्पूर्ण 6X7	अवरोह—सां नि ध प, मग, रेसा
वादी—ग, संवादी—नि	पकड़—निध, मप, ध, मग
स्वर—दोनों नि	गायन-समय—रात्रि का दूसरा प्रहर

इस राग के आरोह में धैवत कुछ दुर्बल रहता है। आरोह में तीव्र और अवरोह में कोमल निषाद लिया जाता है। इस राग का वैचित्र्य ग म प नि, इन चार स्वरों पर निर्भर है। आरोह में पंचम स्वर पर अधिक नहीं ठहरना चाहिए। इसीलिए कोई-कोई गायक ग म ध नि सां, इस प्रकार पंचम छोड़कर भी तानें लेते देखे जाते हैं तथा कोई-कोई ग म प नि सां, इस प्रकार स्वर लेते हैं।

यमन

शुद्ध सुरन के संग जब, मध्यम तीवर होय।
ग-नि वादी-संवादि तें, यमन कहत सब कोय ।

राग—यमन	वर्जित स्वर—कोई नहीं
ठाठ—कल्याण	आरोह—सारेग, म॑प, ध, नि सां
जाति—सम्पूर्ण	अवरोह—सांनिध, प, म॑ग, रे सा
वादी—ग, संवादी—नि	पकड़—नि़रेगरे, सा, पम॑ग, रे, सा
स्वर—म तीव्र, शेष स्वर शुद्ध	गायन-समय—रात्रि का प्रथम प्रहर

यह पूर्वांगवादी राग है, कभी-कभी इसमें शुद्ध मध्यम का प्रयोग भी विवादी स्वर के नाते कर दिया जाता है; तब कुछ लोग इसे 'यमनकल्याण' कहते हैं।

काफी

कोमल ग-नी लगायकर, गावत आधी रात।
प-स वादी-संवादि तें, काफी राग सुहात॥

राग—काफी	वर्जित स्वर—कोई नहीं
ठाठ—काफी	आरोह—सारेग॒म, प, धनि॒सां
जाति—सम्पूर्ण	अवरोह—सां नि॒ ध, प, मग॒, रेसा
वादी—प, संवादी—सा	पकड़—सासा, रेरे, ग॒ग॒, मम, प
स्वर—ग, नि कोमल, शेष स्वर शुद्ध	गायन-समय—मध्य-रात्रि

इसके आरोह में शुद्ध गान्धार और शुद्ध निषाद लेकर इसमें विचित्रता पैदा की जाती है। इस राग का वैचित्र्य सा ग॒ प नि॒, इन स्वरों पर बहुत-कुछ अवलम्बित है।

भैरवी

कोमल सब ही सुर भले, मध्यम वादि बखान ।
षड्ज जहाँ संवादि है, ताहि भैरवी जान ॥

राग—भैरवी
ठाठ—भैरवी
जाति—सम्पूर्ण
वादी—म, संवादी—सा
स्वर—म शुद्ध, शेष स्वर कोमल

वर्जित स्वर—कोई नहीं
आरोह—सा, रेगम, पध, निसां
अवरोह—सां, निधप, मग, रेसा
पकड़—म, ग, सारेसा, ध़नि़सा
गायन-समय—प्रातःकाल

कोई-कोई इस राग में ध वादी और ग संवादी मानते हैं। यद्यपि इस राग का गायन-समय प्रातःकाल है, किन्तु कुछ संगीतज्ञ इसे सर्वकालिक राग मानकर चाहे जिस समय गाते-बजाते हैं। कोई-कोई गायक इसमें रे-मं-नि, इन तीव्र स्वरों का प्रयोग विवादी स्वर के नाते करते हैं, किन्तु इस कार्य में सावधानी की आवश्यकता है।

भूपाली

म-नि वर्जित कर गाइए, मान ठाठ कल्याण ।
ग-ध वादी-संवादि सों, भूपाली पहचान ॥

राग—भूपाली
ठाठ—कल्याण
जाति—औडुव
वादी—ग, संवादी—ध
स्वर—सब शुद्ध

वर्जित स्वर—म, नि
आरोह—सा रे ग प, धसां
अवरोह—सां, धप, ग रे, सा
पकड़—ग,रे,साध़, सारेग, पग, धपग, रे,सा
गायन-समय—रात्रि का प्रथम प्रहर

यह बहुत सरल और मधुर राग है। गाते समय इसे शुद्धकल्याण, जैतकल्याण और देशकार से बचाने में कुशलता की आवश्यकता है। यह केवल पाँच स्वरों का अपने ढंग का स्वतन्त्र राग है।

सारंग (शुद्ध)

वर्जित कर गन्धार सुर, गावत काफी अंग ।
दोऊ म-नि, संवाद रि-प, कहत शुद्धसारंग ॥

राग—शुद्ध सारंग
ठाठ—काफी
जाति—षाडव
वादी—रे, संवादी—प
स्वर—दोनों म, दोनों नि

वर्जित स्वर—ग
आरोह—सा रे म प मंपनिसां
अवरोह—सां नि प मं पध पमरे ऩिसा
पकड़—सा,रेमरे, प,मंप, निप, मंप,मरे,सा
गायन-समय—दिन का दूसरा प्रहर

इस राग का उल्लेख 'हृदयप्रकाश' व 'हृदयकौतुक' ग्रन्थों में पाया जाता है। मध्यमादसारंग में धैवत वर्जित है, किन्तु शुद्धसारंग में धैवत लगता है, इसलिए यह राग उससे अलग अपना अस्तित्व रखता है। गौड़सारंग से भी यह बिलकुल अलग है, क्योंकि गौड़सारंग कल्याण ठाठ का राग है और यह काफी ठाठ का है। इसी प्रकार नूरसारंग से भी यह बचा लिया जाता है, क्योंकि नूरसारंग में शुद्ध मध्यम नहीं है।

बिहाग

ग-नि संवाद बनायकर, चढ़ते रि-ध को त्याग।
रात्रि दूसरे प्रहर में, गावत राग बिहाग॥

राग—बिहाग	वर्जित स्वर—आरोह में रे, ध
ठाठ—बिलावल	आरोह—सा ग म प नि सां
जाति—औडुव-सम्पूर्ण	अवरोह—सां नि ध प म ग रे सा
वादी—ग, संवादी—नि	पकड़—नि़सा, गमप, गमग, रेसा
स्वर—सब शुद्ध	समय—रात्रि का दूसरा प्रहर

इसके आरोह में तो रे-ध वर्जित हैं ही, किन्तु अवरोह में भी रे-ध अधिक प्रबल नहीं रखने चाहिए, वरना बिलावल की छाया दीखने का भय रहता है। विवादी स्वर के नाते कभी कभी इसमें तीव्र मध्यम का भी प्रयोग देखने में आता है। अवरोह में निषाद से पंचम पर आते समय तथा गान्धार से षड्ज पर आते समय कुशलता से चलना चाहिए।

हमीर

कल्यानहिं के मेल में, दोनों मध्यम जान।
ध-ग वादी-संवादि सों, राग हमीर बखान॥

राग—हमीर	वर्जित स्वर—कोई नहीं
ठाठ—कल्याण	आरोह—सारेसा, गमध, निधसां
जाति—सम्पूर्ण	अवरोह—सांनिधप, मंपधप, गमरेसा
वादी—ध, संवादी—ग	पकड़—सारेसा गमध
स्वर—दोनों मध्यम, शेष स्वर शुद्ध	समय—रात्रि का प्रथम प्रहर

इस राग में तीव्र मध्यम का प्रयोग आरोह में थोड़ा-सा करना चाहिए। शुद्ध मध्यम आरोह-अवरोह, दोनों में है। इस राग के अवरोह में कभी-कभी धवत से पंचम पर आते समय ध नि़ प, इस प्रकार कोमल निषाद का प्रयोग विवादी स्वर के नाते देखने को मिलता है। कोई-कोई गुणी इसमें पंचम वादी मानते हैं, किन्तु भातखंडेजी के मतानुसार इसका वादी स्वर धैवत ही ठीक है।

देस

वादी रे, संवादि प, दोउ निषाद लग जायँ।
औडुव-संपूरन सुघर, देस राग को गायँ॥

राग—देस	वर्जित स्वर—आरोह में ग-ध
ठाठ—खमाज	आरोह—सा रे म प नि सां
जाति—औडुव-सम्पूर्ण	अवरोह—सां नि ध प, म ग, रे ग सा
वादी—रे, संवादी—प	पकड़—रे, मप, निधप, पधपम, गरेगसा
स्वर—दोनों निषाद, शेष स्वर शुद्ध	समय—मध्य रात्रि

देस राग का स्वरूप सोरठ से बहुत मिलता-जुलता है, अतः देश के बाद सोरठ या सोरठ के बाद देस का गाना कठिन पड़ता है। इस राग में गान्धार स्वर स्पष्ट रूप से लिया जाता है, किन्तु सोरठ में उसे कुछ दबा हुआ रखते हैं। इसके आरोह में ग और ध, ये दोनों स्वर वर्जित हैं।

भैरव

ध-रि वादी-संवादि करि, रि-ध कोमल सुर मान।
प्रात समय नीको लगे, भैरव राग महान्॥

राग—भैरव	वर्जित स्वर—कोई नहीं
ठाठ—भैरव	आरोह—सा रे॒ ग म, प ध॒, नि सां
जाति—सम्पूर्ण	अवरोह—सांनिध॒ पमग, रे॒सा
वादी—ध, संवादी—रे	पकड़—सा, गम, प, ध॒, प
स्वर—रे ध कोमल, शेष स्वर शुद्ध	समय—प्रातःकाल

यह बहुत प्राचीन और गम्भीर राग है। इस राग में रे॒-ध॒ स्वर अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हैं। इन स्वरों का प्रयोग करते समय इसे कालिंगड़ा और रामकली से बचाना चाहिए। भैरव के आरोह में ऋषभ का अल्पत्व रहता है एवं मध्यम से ऋषभ पर मीड़ लेकर आने में इसका माधुर्य बढ़ता है।

भीमपलासी

जब काफी के मेल में, चढ़ते रि–ध को त्याग।
ग–नि कोमल, संवाद म–स भीमपलासी राग॥

राग—भीमपलासी	वर्जित स्वर—आरोह में रे, ध
ठाठ—काफी	आरोह—ऩिसाम, प, नि सां
जाति—औडुव-सम्पूर्ण	अवरोह—सांनिधपम, गरेसा
वादी—म, संवादी—सा	पकड़—ऩिसाम, मग, पम, ग, मगरेसा
स्वर—ग नि कोमल, शेष स्वर शुद्ध	समय—दिन का तीसरा प्रहर

इस राग के आरोह में ऋषभ और धैवत वर्जित रहते हैं और सा, म, प, इन स्वरों का प्राबल्य रहता है। इस राग को गाते समय धनाश्री राग से बचाना चाहिए, जोकि काफी ठाठ का है। किन्तु पगमग, इन स्वर-संगतियों से धनाश्री और भीमपलासी अलग-अलग हो जाते हैं। साथ ही इस राग में म वादी और धनाश्री में प वादी दिखाकर भी इनका मिश्रण बचाया जा सकता है।

बागेश्री

ग–नि कोमल, संवाद म–स, आरोही रि–प हानि।
अवरोही पंचम बरजि, बागेश्री पहचानि॥

राग—बागेश्री	वर्जित स्वर—आरोह में रे प, अवरोह में प
ठाठ—काफी	आरोह—सा म ग म ध नि सां
जाति—औडुव-षाडव	अवरोह—सां नि ध मग मग रे सा
वादी—म, संवादी—सा	पकड़—सा ऩिध़सा, मधनिध, म, गरे, सा
स्वर—ग नि कोमल, शेष स्वर शुद्ध	समय—मध्य-रात्रि

मध्यम, धैवत और निषाद स्वरों की संगति इस राग की शोभा बढ़ाती है। बागेश्र के आरोह में ऋषभ स्वर का प्रयोग बहुत कम होता है या बिलकुल छोड़ दिया जाता है। इस राग में पंचम स्वर के प्रयोग पर मतभेद पाया जाता है। कोई-कोई गुणी-जन पंचम को बिल्कुल वर्जित रखते हैं और कोई-कोई पंचम को अवरोह में लेना स्वीकार करते हैं एवं कोई-कोई पंचम स्वर को आरोह-अवरोह, दोनों में लेते हैं; इसीलिए इस राग की जाति के विषय में मतभेद है। परन्तु इसे औडुव-षाडव मानना ही उचित है।

तिलककामोद

षाडव-सम्पूरन कह्यो, आरोही धा नाहिं।
रि-प वादी-संवादि तें, तिलककमोद बताहिं ॥

राग—तिलककामोद	वर्जित स्वर—आरोह में धैवत
ठाठ—खमाज	आरोह—सारेगसा, रेमपधमप, सां
जाति—षाडव-सम्पूर्ण	अवरोह—सांपधमग, सारेग, सानि़
वादी—रे, संवादी—प	पकड़—प़नि़सारेग, सा, रेपमग, सानि़
स्वर—सब शुद्ध	समय—रात्रि का दूसरा प्रहर

इस राग का स्वरूप कई जगह देस और सोरठ से मिलता है, किन्तु इधर इस राग में कोमल निषाद बिलकुल वर्जित रखने के कारण यह राग देश और सोरठ से बच जाता है। इस राग की चाल वक्र होने से ही इसकी विचित्रता बढ़ जाती है। महाराष्ट्र में तिलककामोद गाते समय दोनों निषाद लेने का रिवाज है।

आसावरी

ग-ध-नी कोमल सुर लगें, चढ़त ग-नी न सुहात।
ध-ग वादी-संवादि तें, आसावरी कहात ॥

राग—आसावरी	वर्जित स्वर—आरोह में ग, नि
ठाठ—आसावरी	आरोह—सा, रेमप, ध॒सां
जाति—औडुव-सम्पूर्ण	अवरोह—सांनि॒ध॒, प मग॒, रेसा
वादी—ध, संवादी—ग	पकड़—रे, म, प, नि॒ध॒, प
स्वर—ग ध नि कोमल	समय—प्रातःकाल

उत्तर-भारत में आसावरी राग में कोमल ऋषभ लगाकर भी गाने का प्रचार है, और उसे कोमल ऋषभ की आसावरी कहते हैं। किन्तु दक्षिणी खयाल-गायक इसे तीव्र ऋषभ से ही गाते हैं। इस राग का वैचित्र्य ग, प, ध, इन तीन स्वरों पर निर्भर है। अवरोह में यह राग विशेष रूप से खिलता है।

केदार

दो मध्यम केदार में, स-म संवाद सम्हार।
आरोहन रि-ग बरजकर, उतरत अल्प गँधार ॥

राग—केदार	वर्जित स्वर—आरोह में रे, ग
ठाठ—कल्याण	आरोह—साम, मप, धप, निध, सां
जाति—औडुव-सम्पूर्ण	अवरोह—सां, निध, प, मंपगमरेसा
वादी—सा, संवादी—म	पकड़—सा, म, मपधपम, पम, रेसा
स्वर—दोनों मध्यम	समय—रात्रि का प्रथम प्रहर

हमीर के समान इस राग में भी दोनों मध्यम लगाए जाते हैं, किन्तु यह इस राग की विशेषता है कि कभी-कभी इसके अवरोह में दोनों मध्यम एक के बाद दूसरा, इस क्रम से आ जाते हैं। केदार का आरोह करते समय षड्ज से एकदम मध्यम पर जाना बड़ा सुन्दर प्रतीत होता है। इसके अवरोह में कभी-कभी धैवत के साथ कोमल निषाद का अल्प प्रयोग करते हैं। इस प्रकार निषाद का प्रयोग विवादी स्वर के नाते होता है। इसके अवरोह में गान्धार स्वर वक्र और दुर्बल रहता है; अतः इस स्वर का प्रयोग सावधानी से करना चाहिए, अन्यथा कामोदादि राग दिखाई देने लगते हैं।

देशकार

जबहिं बिलावल मेल सों, म-नि सुर दिए निकार।
ध-ग वादी-संवादि तें, औडुव देशीकार॥

राग—देशकार	वर्जित स्वर—म, नि
ठाठ—बिलावल	आरोह—सा रे ग प ध सां
जाति—औडुव	अवरोह—सां ध प गपधप ग रे सा
वादी—ध, संवादी—ग	पकड़—साध, प, गप, धप, गरेसा
स्वर—सब शुद्ध	समय—दिन का प्रथम प्रहर

इस राग को गाते समय विभिन्न स्थानों पर धैवत दिखाने में सावधानी रखनी चाहिए, अन्यथा भूपाली की छाया आ सकती है। ध्यान रहे कि भूपाली राग पूर्वांग-प्रबल और देशकार उत्तरांग-प्रबल है।

तिलंग

रि-ध वर्जित, दोउ नी लगें, लखि खम्माजहि अंग।
ग-नि वादी-संवादि कर, गावत राग तिलंग॥

राग—तिलंग	वर्जित स्वर—रे, ध
ठाठ—खमाज	आरोह—सा ग म प नि सां
जाति—औडुव	अवरोह—सां, नि॒, प, मग, सा
वादी—ग, संवादी—नि	पकड़—नि़सागमप, निसां, सांनि॒प, गमगसा
स्वर—दोनों निषाद	समय—रात्रि का दूसरा प्रहर

इस राग में निषाद और पंचम की संगति भली मालूम होती है। धैवत वर्जित होने से खमाज से यह राग अलग हो जाता है। इसके अवरोह में कोई-कोई गायक थोड़ा-सा ऋषभ स्वर विवादी के नाते प्रयोग करते हैं।

हिंडोल

रि-प सुर वर्जित मानकर, मध्यम तीवर बोल।
ध-ग वादी-संवादि तें, औडुव राग हिंडोल॥

राग—हिंडोल	वर्जित स्वर—रे, प
ठाठ—कल्याण	आरोह—साग, मंधनिध, सां
जाति—औडुव-औडुव	अवरोह—सां, निध, मंग, सा
वादी—ध, संवादी—ग	पकड़—सा, ग, मंधनिधमंग, सा
स्वर—म तीव्र, शेष स्वर शुद्ध	समय—दिन का प्रथम प्रहर

इस राग के आरोह में नि का प्रयोग कम किया जाता है और वह भी वक्र स्वर के रूप में। यदि हिंडोल में निषाद का प्रयोग अधिक हो जाए, तो सोहनी की छाया पड़ सकती है। उत्तम गायक इसमें गमकों का बहुत सुन्दर प्रयोग करते हैं।

मारवा

रि-ध वादी-संवादि कर, पंचम वर्जित कीन्ह।
रे कोमल मध्यम कड़ी, राग मारवा चीन्ह॥

राग—मारवा	वर्जित स्वर—प
ठाठ—मारवा	आरोह—सारे॒, ग, मंध, निध, सां
जाति—षाडव-षाडव	अवरोह—सांनिध, मंगरे॒सा
वादी—रे, संवादी—ध	पकड़—धमंगरे॒, गमंग, रे॒, सा
स्वर—रे कोमल, म तीव्र	समय—दिन का अन्तिम प्रहर

इस राग के आरोह में निषाद कई स्थानों पर वक्र गति से प्रयुक्त होता है। रे॒ ग ध, इन स्वरों पर इस राग की विचित्रता निर्भर है। अवरोह में जब ऋषभ वक्र होता है, तब यह राग अधिक चमकता है। इसमें मीड़ का काम अधिक अच्छा नहीं लगता।

सोहनी

तीवर मा, कोमल ऋषभ, पंचम वर्जित मान।
ध-ग वादी-संवादि तें, कियो सोहनी गान॥

राग—सोहनी	वर्जित स्वर—प
ठाठ—मारवा	आरोह—साग, मंधनिसां
जाति—षाडव-षाडव	अवरोह—रेंसां, निध, मंध, मंग, रेसा
वादी—ध, संवादी—ग	पकड़—सां, निध, निध, ग, मंधनिसां
स्वर—रे कोमल, म तीव्र	समय—रात्रि का अन्तिम प्रहर

इस राग में कुशल गायक विविध स्थानों पर कोमल मध्यम का प्रयोग बड़ी कुशलता से करते हैं। इसमें तार-षड्ज चमकता रहता है और इससे राग की रंजकता बढ़ती है। इसके आरोह में रे स्वर वर्जित तो नहीं है, किन्तु यह दुर्बल रहता है।

जौनपुरी

कोमल ग-ध-नी सुर कहे, आरोही गा हानि।
वादी धा संवादि गा, जौनपुरी पहचानि॥

राग—जौनपुरी	वर्जित स्वर—आरोह में ग
ठाठ—आसावरी	आरोह—सा, रेम, प, ध, निसां
जाति—षाडव-सम्पूर्ण	अवरोह—सां, निध, प, मग, रेसा
वादी—ध, संवादी—ग	पकड़—मप, निधप, ध, मपग, रेमप
स्वर—ग-ध-नि कोमल	समय—दिन का दूसरा प्रहर

इस राग का स्वरूप आसावरी से मिलता-जुलता है, किन्तु आसावरी के आरोह में निषाद वर्जित है और इस राग के आरोह में निषाद लेते हैं। इस प्रयोग से यह आसावरो से बच जाता है।

मालकोंस

रि-प वर्जित औडुव मधुर, सब कोमल सुर मान।
म-स वादी-संवादि सों, मालकोंस पहचान॥

राग—मालकोंस	वर्जित स्वर—रे, प
ठाठ—भैरवी	आरोह—निसा, गम, ध, निसां
जाति—औडुव	अवरोह—सांनिध, म, गमगसा
वादी—म, संवादी—सा	पकड़—मग, मधनिध, म, ग, सा
स्वर—ग-ध-नि कोमल	समय—रात्रि का तीसरा प्रहर

इस राग में ध्रुवपद व खयाल की गायिकी अधिक दिखाई देती है, क्योंकि यह गम्भीर प्रकृति का राग है।

छायानट

जबहिं ठाठ कल्याण में, दोनों मध्यम पेखि।
प-रि वादी-संवादि सों, छायानट को देखि ॥

राग—छायानट	वर्जित स्वर—कोई नहीं
ठाठ—कल्याण	आरोह—सा रे ग म प नि ध सां।
जाति—सम्पूर्ण	अवरोह—सां नि ध प मंप धप गम रेसा।
वादी—प, संवादी—रे	पकड़—प, रे, गमप, मग, मरेसा
स्वर—दोनों मध्यम	गायन-समय—रात्रि का प्रथम प्रहर

छायानट में दोनों मध्यम लिए जा सकते हैं, किन्तु तीव्र मध्यम जब लेना हो, तो केवल मंपधप करके ही लेना चाहिए। शुद्ध मध्यम आरोह-अवरोह, दोनों में लिया जाता है। पंचम और ऋषभ की संगति इसमें भली मालूम होती है। ग-नि, इन दोनों स्वरों को क्रम से अवरोह और आरोह में वक्र किया जाता है। अवरोह में कभी-कभी कोमल निषाद भी विवादी स्वर के नाते लिया जाता है।

कामोद

कल्याणहिं के मेल में, दोनों मध्यम लाय।
प-रि वादी-संवादि कर, तब कामोद सुहाय ॥

राग—कामोद	वर्जित स्वर—कोई नहीं
ठाठ—कल्याण	आरोह—सारे पमं पध पनिध सां।
जाति—सम्पूर्ण	अवरोह—सांनिध प मंपधप, गमरेसा।
वादी—प, संवादी—रे	पकड़—रे, प, मंप, धप गमप, गमरेसा
स्वर—दोनों मध्यम	समय—रात्रि का प्रथम प्रहर

इस राग में गान्धार और निषाद स्वर वक्र गति से लगते हैं तथा ये दोनों स्वर इसमें दुर्बल रहने चाहिए। निषाद तो बहुत ही कम लगता है। कभी-कभी अवरोह में कोमल निषाद का प्रयोग विवादी स्वर के रूप में किया जाता है। आरोह में ही तीव्र मध्यम का प्रयोग किया जाता है। ऋषभ से पंचम पर जाने में कामोद स्पष्ट दिखाई देने लगता है।

बसन्त

रि-ध कोमल, संवाद स-म, मध्यम के दोउ रूप।
आरोही में रिप बरजि, राग बसन्त अनूप ॥

राग—बसन्त	वर्जित स्वर—ऋषभ-पंचम (आरोह में)
ठाठ—पूर्वी	आरोह—सा ग मं ध रें सां
जाति—औडुव-सम्पूर्ण	अवरोह—सांरें नि ध प मंगमंध मंगरेसा
वादी—सा, संवादी—म	पकड़—मंध, रें, सां रें, निधप, मंगमंग
स्वर—दोनों मध्यम, कोमल रे-ध	समय—रात्रि का अन्तिम प्रहर

इस राग में दोनों मध्यम ललित-अंग से लिए जाते हैं। उतरांगप्रधान होने के कारण इसमें तार-षड्ज पर विशेष जोर रहता है। इसके और परज राग के स्वर समान हैं। अतः मं ध रें सां और रें नि ध प, मं ग मं, ग से यह राग तुरन्त स्पष्ट हो जाता है।

शंकरा

आरोही रे-मा बरजि, अवरोही मा त्याग।
ग-नि वादी-संवादि सों, कहत शंकरा राग॥

राग—शंकरा	वर्जित स्वर-आरोह में रेम, अवरोह में म
ठाठ—बिलावल	आरोह—साग, प, निध, सां
जाति—औडुव-षाडव	अवरोह—सांनिप, निध, गप, गरेसा
वादी—ग, संवादी—नि	पकड़-सां, निप,निध, सां, निप,गप, गसा
स्वर—सब शुद्ध	समय—रात्रि का दूसरा प्रहर

कोई-कोई संगीतज्ञ इसका वादी स्वर षड्ज और संवादी पंचम मानकर समय मध्यरात्रि मानते हैं। शंकरा के दो प्रकार देखने में आते हैं। एक प्रकार में रे-म वर्जित करके इसकी जाति औडुव मानते हैं और दूसरे प्रकार में केवल मध्यम वर्जित करके इसे षाडव जाति का राग मानते हैं, दोनों प्रकार सुन्दर हैं। इसके आरोह में ऋषभ अल्प रहता है। कुशल संगीतज्ञ इस राग में तिरोभाव करते समय रे-ध का अधिक प्रयोग दिखाकर कल्याण राग का आभास कराते हैं, किन्तु पनिध, सांनि, यह स्वर-संगति और मध्यम का लोप इस राग को पहचानने में सहायता देता है। शंकरा का स्वरूप बिहाग से कुछ मिलता है, किन्तु बिहाग में मध्यम स्वर स्पष्ट होने के कारण यह उससे अलग हो जाता है।

दुर्गा (खमाज ठाठ)

जबहिं मेल खम्माज में, रि-प सुर वर्जित कीन्ह।
दोउ निषाद, संवाद ग-नि, औडुव दुर्गा चीन्ह॥

राग—दुर्गा	वर्जित स्वर—रे, प
ठाठ—खमाज	आरोह—सा ग म ध नि सां
जाति—औडुव	अवरोह—सां नि ध म ग सा
वादी—ग, संवादी—नि	पकड़—गसा ऩिध़ ऩिसा मग मध ऩिध मगसा
स्वर—दोनों निषाद	समय—रात्रि का दूसरा प्रहर

दुर्गा राग के दो प्रकार हैं। उपर्युक्त प्रकार खमाज ठाठ का है। इसमें रे-प वर्जित करके औडुव जाति का मानते हैं। दूसरा प्रकार बिलावल ठाठ का दुर्गा है। उसे भी हम नीचे दे रहे हैं। खमाज ठाठ के दुर्गा में ध-म की स्वर-संगति रक्तिवर्धक होती है। कभी-कभी इसके आरोह में तीव्र निषाद का प्रयोग भी करते हैं।

दुर्गा (बिलावल ठाठ)

म-स वादी-संवादि लखि, ग-नि सुर वर्जित मान।
तबहि बिलावल मेल की दुर्गा ले पहचान॥

राग—दुर्गा	वर्जित स्वर—ग, नि
ठाठ—बिलावल	आरोह—सा रे म प ध सां
जाति—औडुव	अवरोह—सां ध प म रे सा
वादी—म, संवादी—सा	पकड़—प,मप,धमरे,प,सांध,सांरेंपध,मरेसा
स्वर—सब शुद्ध	समय—रात्रि का दूसरा प्रहर

इस दुर्गा में गान्धार के न होने से सोरठ का रूप झलकने लगता है, किन्तु सोरठ के आरोह में रे-ध नहीं होते और इस राग में रे-ध मौजूद हैं, इसलिए यह उससे बच जाता है। मध्यम स्पष्ट लगने से यह राग खिलता है।

शुद्धकल्याण

कल्यानहि के मेल में, चढ़ते म-नी हटाय।
वही शुद्धकल्यान है, ग-ध संवाद सुहाय॥

राग—शुद्धकल्याण	वर्जित स्वर—आरोह में म, नि
ठाठ—कल्याण	आरोह—सा रे ग प ध सां
जाति—औडुव-सम्पूर्ण	अवरोह—सां नि ध प मं ग रे सा
वादी—ग, संवादी—ध	पकड़—ग, रेसा, ऩि ध़ प़ सा, गरेपरे सा
स्वर—म तीव्र (अवरोह में)	समय—रात्रि का प्रथम प्रहर

इस राग की साधारण प्रकृति भूपाली के समान है। म-नि, ये दोनों स्वर यद्यपि आरोह में ही वर्जित हैं, किन्तु अवरोह में भी इन स्वरों को वर्जित करके बहुत-से लोग इस राग को गाते हैं। अवरोह में यद्यपि तीव्र मध्यम भी लिया जा सकता है, किन्तु इस स्वर को पंचम से गान्धार तक की मीड़ लेकर दिखाते हैं। जलद तानों में तीव्र मध्यम छोड़ दिया जाता है, केवल निषाद अवरोह में कोई-कोई ले लेते हैं। इस कृत्य से भूपाली की भिन्नता दिखाई दे जाती है। प-रे का मिलाप रक्तिवर्धक होता है। इस राग में धैवत स्वर को भूपाली की अपेक्षा कम प्रयोग में लाना उचित है।

गौड़सारंग

दोऊ मध्यम लगि रहे, कल्यानहि के अंग।
ग-ध वादी-संवादी तें, बनत गौड़सारंग ॥

राग—गौड़सारंग	वर्जित स्वर—कोई नहीं
ठाठ—कल्याण	आरोह—सा, गरेमग, पमंधप, निधसां,
जाति—वक्र-सम्पूर्ण	अवरोह—सांधनिप, धमंपग, मरे, प, रेसा
वादी—ग, संवादी—ध	पकड़—सा, गरेमग, परेसा
स्वर—दोनों मध्यम	समय—दिन का दूसरा प्रहर

इस राग में दोनों मध्यमों का प्रयोग होता है। यद्यपि इसमें गान्धार, निषाद वक्र हैं, किन्तु राग का मुख्य अंग 'गरे मग', इस स्वर-समुदाय पर आधारित है; इसलिए कई स्थानों पर ग-नि का वक्रत्व छिप जाता है। तीव्र मध्यम केवल आरोह में ही लिया जा सकता है। अवरोह में किंचित् कोमल निषाद कुशलतापूर्वक ले सकते हैं।

जैजैवन्ती

तीवर-कोमल रूप दोउ, ग-नि के दिए लगाय।
रि-प वादी-संवादि सों, जैजैवन्ति कहाय ॥

राग—जैजैवन्ती	वर्जित स्वर—कोई नहीं
ठाठ—खमाज	आरोह—सारे गमप, निसां
जाति—सम्पूर्ण	अवरोह—सांनिधप, धम रेगरेसा
वादी—रे, संवादी—प	पकड़—रेगरेसा, निधप, रे
स्वर—दोनों ग, दोनों नि	समय—रात्रि का दूसरा प्रहर

इसके आरोह में तीव्र ग-नि और अवरोह में कोमल ग-नि लेते हैं, लेकिन कभी-कभी अवरोह में भी तीव्र गान्धार लिया जा सकता है। कोमल ग केवल अवरोह में ही

ले सकते हैं और यह स्वर दोनों ओर से रे-ग-रे, इस प्रकार ऋषभ द्वारा घिरा रहता है। यह राग सोरठ के अंग का है। मन्द्र-पंचम और मध्य-ऋषभ का मिलाप इसमें बहुत अच्छा मालूम होता है।

पूर्वी

रि-ध कोमल कर गाइए, दोनों मध्यम मान।
ग-नि वादी-संवादि सों, राग पूर्वी जान॥

राग—पूर्वी	वर्जित स्वर—कोई नहीं
ठाठ—पूर्वी	आरोह—सा रेग, मंप, ध, निसां
जाति—सम्पूर्ण	अवरोह—सां नि धप, मं, ग, रे सा
वादी—ग, संवादी—नि	पकड़—नि सारेग, मग, मं, ग, रेगरेसा
स्वर—रे-ध, कोमल, दोनों मध्यम	समय—दिन का अन्तिम प्रहर

सा, ग, प, इन तीन स्वरों पर इस राग की विचित्रता निर्भर है। इस राग के अवरोह में कोमल म का प्रयोग गान्धार के साथ बहुत सुन्दर प्रतीत होता है।

पूरियाधनाश्री

मध्यम तीव्र लगायकर, रि-ध कोमल सुर मान।
राग पूरियाधनाश्री, प-रि संवाद बखान॥

राग—पूरियाधनाश्री	वर्जित स्वर—कोई नहीं
ठाठ—पूर्वी	आरोह—निरेगमंप, धप, निसां
जाति—सम्पूर्ण	अवरोह—रेंनिधप, मंग मंरेग, रेसा
वादी—प, संवादी—रे	पकड़—निरेग, मंप, मंग, मंरेग, धमंग, रेसा
स्वर—रे-ध कोमल, म तीव्र	समय—सायंकाल

यह राग पूर्वी से मिलता-जुलता है, किन्तु पूर्वी में दोनों मध्यम हैं और इसमें तीव्र मध्यम ही है, इस भेद से यह पूर्वी से बचा लिया जाता है। इस राग में मं रेग तथा रेंनिधप, ये स्वर-समुदाय राग-दर्शक हैं।

परज

दोनों मध्यम लीजिए, रि-ध कोमल सुखदाइ।
स-प वादी-संवादि लखि, गुनिजन परज सुहाइ॥

राग—परज	वर्जित स्वर—आरोह में रे-प
ठाठ—पूर्वी	आरोह—निसाग, मंधुनिसां
जाति—औडुव-सम्पूर्ण	अवरोह—सां, निधुप, मंप, गमग, रेसा
वादी—सा, संवादी—प	पकड़—सां, निधुप, मंपधुप, गमग
स्वर—रे-ध कोमल, दोनों मध्यम	समय—रात्रि का अन्तिम प्रहर

यह राग उत्तरांगप्रधान है, अतः इसमें तार-षड्ज की चमक बहुत सुन्दर मालूम देती है। इस राग की गति कुछ चंचल है, इसीलिए बसन्त राग से यह अलग पहचान लिया जाता है। जब इस राग की कुछ तानें निषाद पर समाप्त की जाती हैं, तो यह और भी स्पष्ट हो जाता है। सांरेंसांरें, निधुनि, ये स्वर इसमें बार-बार दिखाई देते हैं। धुपगमग, मंधुनिसां, यह स्वर-समुदाय राग-दर्शक है।

पूरिया

ठाठ मारवा में जबहिं, दीनों पंचम त्याग।
ग-नि वादी-संवादि सों, कह्यो पूरिया राग॥

राग—पूरिया	वर्जित स्वर—प
ठाठ—मारवा	आरोह—निरेसा ग मंध निरेंसां
जाति—षाडव	अवरोह—सां नि ध मं ग रे सा
वादी—ग, संवादी—नि	पकड़—ग, निरेसा, निधनि मंध, रे सा
स्वर—रे कोमल, म तीव्र	समय—सन्धिप्रकाश-काल (सायंकाल)

इस राग का मुख्य चलन मन्द्र और मध्य-स्थानों में रहता है। यह सन्धिप्रकाश राग है। निषाद और मध्यम की संगति इसकी शोभा बढ़ाती है। मन्द्र-सप्तक में सा, निधनिमंग, ये स्वर राग का स्वरूप स्पष्ट करते हैं।

सिंदूरा

ग-नि आरोहन त्यागकर, कोमल ग-नी बखान।
स-प संवाद बनायकर, सुघर सिंदूरा जान॥

राग—सिंदूरा
ठाठ—काफी
जाति—औडुव-सम्पूर्ण
वादी—सा, संवादी—प
स्वर—नि-ग कोमल

वर्जित स्वर—आरोह में ग, नि
आरोह—सा, रेमप, ध सां
अवरोह—सां निधपमग, रेमग, रेसा
पकड़—सा, रेमप, ध, सां निधपमग रेसा
समय—सायंकाल

इस राग को सैंधवी भी कहते हैं। कोई-कोई गुणी जन निषाद के वर्जित्व पर मतभेद रखते हैं, अतः आरोह में कभी-कभी कोमल नि ले लिया जाता है। 'राग-विबोध' में इसे 'सिंघोड़ा' नाम दिया है।

कालिंगड़ा

रि-ध कोमल कर गाइए, भैरव ठाठ प्रमान।
स-प संवादी-वादि सों, कालिंगड़ा पहचान॥

राग—कालिंगड़ा
ठाठ—भैरव
जाति—सम्पूर्ण
वादी—प, संवादी—सा
स्वर—रे-ध कोमल

वर्जित स्वर—कोई नहीं
आरोह—सारेगम, पधनिसां
अवरोह—सांनिधप, मगरेसा
पकड़—धप, गमग, नि, सारेग, म
समय—रात्रि का अन्तिम प्रहर

कालिंगड़ा गाते समय रे ध स्वरों पर आन्दोलन अधिक देने से भैरव की झलक आने लगती है। इसीलिए इसमें पंचम वादी और षड्ज संवादी मानते हैं, क्योंकि धैवत वादी होगा, तो उस पर आन्दोलन भी अधिक होंगे। परज राग से भी इसकी प्रकृति बहुत-कुछ मिलती-जुलती है।

बहार

चढ़त रि उतरत धा बरजि कोमल कर गन्धार।
दोउ निषाद, संवाद म-स, षाडव राग बहार॥

राग—बहार
ठाठ—काफी
जाति—षाडव-षाडव
वादी—म, संवादी—सा
स्वर—ग कोमल, निषाद दोनों

वर्जित स्वर—आरोह में रे, अवरोह में धा
आरोह—सा, गम, पगम, नि धनि सां
अवरोह—सां, निपमप, गम, रेसा
पकड़—मपगप, ध, निसां
समय—मध्य रात्रि

इसका गायन-समय शास्त्रों में यद्यपि मध्य-रात्रि का दिया गया है, किन्तु वसन्त ऋतु में यह राग चाहे जिस समय गाया-बजाया जा सकता है, ऐसा संगीतज्ञों का मत है। इस राग में म-ध की संगति भली मालूम देती है। नि̲नि̲पम, पग̲, म, ध, नि̲सां यह स्वर-समुदाय बहार में बार-बार दिखाई देता है।

अड़ाना

कोमल ग-ध, दोउ नी लगें, स-प संवाद बताहिं।
चढ़त ग, उतरत धा बरजि, राग अड़ाना माहिं॥

राग—अड़ाना	वर्जित स्वर—आरोह में ग, अवरोह में ध
ठाठ—आसावरी	आरोह—सारेमप, ध̲निसां
जाति—षाडव	अवरोह—सांध̲नि̲पमप, ग̲म, रेसा
वादी—सा, संवादी प	पकड़—सां, ध̲ निसां, ध̲, नि̲पमप, ग̲मरेसा
स्वर—ग-ध कोमल तथा दोनों निषाद	समय—रात्रि का तीसरा प्रहर

इस राग का आरोह करते समय सारंग की छाया स्पष्ट दिखाई देती है। अवरोह में 'ग̲ म रे सा', इस प्रकार वक्र गान्धार है। मध्य और तार-सप्तक में इसका विस्तार अधिक है।

धानी

वादी गा, संवादि नी, ग-नि सुर कोमल जान।
रि-ध वर्जित कर गाइए, औडुव धानी मान॥

राग—धानी	वर्जित स्वर—रे, ध
ठाठ—काफी	आरोह—सा, ग̲मप, नि̲सां
जाति—औडुव	अवरोह—सां, नि̲प, मग̲, सा
वादी—ग, संवादी—नि	पकड़—नि̲साग̲, मप, नि̲सां,सांनि̲प, मग̲, सा
स्वर—ग-नि कोमल	समय—सार्वकालिक

कोई-कोई गायक धानी के अवरोह में थोड़ा-सा ऋषभ लेते हैं। प्राचीन ग्रन्थों में भी धानी का उल्लेख मिलता है। 'संगीत-पारिजात' में रे वर्जित तथा रे-ध वर्जित, इस प्रकार धानी के दो रूप दिए हैं।

माँड

स-प वादी-संवादि कर, नी स्वर कंपित होइ।
शुद्ध और सम्पूर्ण है, माँड राग कह सोइ॥

राग—माँड	वर्जित स्वर—कोई नहीं
ठाठ—बिलावल	आरोह—सागरेमग पमधप निधसां
जाति—वक्र-सम्पूर्ण	अवरोह—सांधनिप धमपग मसा
वादी—सा, संवादी—प	पकड़—सा, रेग, सा, रे, ममप, ध, पधसां
स्वर—सब शुद्ध	समय—सार्वकालिक

यह राग मालवा (राजस्थान) प्रान्त से उत्पन्न हुआ है। इसका स्वरूप वक्र है। इस राग में सा, म, प, ये स्वर अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हैं। निषाद पर कम्पन इस राग की विशेषता है। आरोह में रे-ध स्वर दुर्बल हैं, अवरोह में वक्र हैं। जैसे साग, रेम, गप इत्यादि।

गौड़मल्लार

ग-नि के दोनों रूप लखि, चढ़ते अल्प सम्हार।
म-स वादी-संवादि तें, कहत गौड़मल्लार॥

राग—गौड़मल्लार	वर्जित स्वर—कोई नहीं
ठाठ—काफी	आरोह—सा, रेगम, रेप, मपधसां
जाति—सम्पूर्ण	अवरोह—सांधनिपमपमगरेसा।
वादी—म, संवादी—सा	पकड़—रेगरेमगरेसा, पमप, धसां धपम।
स्वर—दोनों ग, नि	समय-दोपहर दिन,वर्षाऋतुमें प्रत्येकसमय

इस राग के बारे में दो मत हैं। एक मत इस राग को काफी ठाठ का मानता है, तो दूसरा मत इसे खमाज ठाठ का बताता है। यह मतभेद लेकर गान्धार स्वर के बारे में दोनों मत अपने विचार भिन्न रखते हैं। खयाल-गायक तीव्र गान्धार लेते हैं और ध्रुवपद के गायक कोमल ग लगाते हैं, किन्तु ऐसा करने से इसे मियाँमल्लार से बचाना कठिन हो जाता है। अतः इसमें सदैव शुद्ध गान्धार ही लेना चाहिए। यह मौसमी राग है, अतः इसके गीतों में प्रायः वर्षा-ऋतु का वर्णन मिलता है।

झिंझोटी

गा वादी, संवादि नी, कोमल लियो निषाद।
राग झिंझोटी गाइए, प्रथम रात्रि के बाद॥

राग—झिंझोटी	वर्जित स्वर—कोई नहीं
ठाठ—खमाज	आरोह—सारेगम पधनिसां
जाति—सम्पूर्ण	अवरोह—सांनिधप मगरेसा
वादी—ग, संवादी—नि	पकड़—धसा, रेम, ग, पमगरे, सानिधप
स्वर—नि कोमल	समय—रात्रि का दूसरा प्रहर

यह खमाज ठाठ का आश्रय राग है। इस राग का विस्तार मन्द्र व मध्य-सप्तक में विशेष रूप से रहता है। 'धसा, रे मग' यह स्वर-समुदाय राग वाचक है।

श्री

आरोहन ग-ध बरजकर, रि-ध कोमल, मा तीख।
रि-प वादी-संवादि तें, श्री राग को सीख॥

राग—श्री	वर्जित स्वर—आरोह में ग, ध
ठाठ—पूर्वी	आरोह—सा, रे मं प, निसां
जाति—औडुव-सम्पूर्ण	अवरोह—सां, निध, पमंगरे, सा
वादी—रे, संवादी—प	पकड़—सा, रेरे, सा, प, मंगरे, गरे, रे, सा
स्वर—रे-ध कोमल, म तीव्र	समय—सायंकाल (सन्धिप्रकाशकाल)

यह बहुत गम्भीर और लोकप्रिय राग है। रे-प की संगति जब इस राग में करते हैं, तब यह बहुत मधुर मालूम देता है। 'सा ग रे रे सा', यह स्वर-समुदाय इसमें प्रिय मालूम होता है।

ललित

दो मध्यम, कोमल ऋषभ, पंचम वर्जित जान।
म-स वादी-संवादि सों, ललित राग पहचान॥

राग—ललित	वर्जित स्वर—प
ठाठ—मारवा	आरोह—निरेगम मंमग मंधसां
जाति—षाडव	अवरोह—रें निध मंध मंमग रे सा
वादी—म, संवादी—सा	पकड़—निरेगम धमंधमंम ग
स्वर—कोमल रे, दोनों मध्यम	समय—रात्रि का अन्तिम प्रहर

इस राग में धर्म धर्म, यह स्वर-प्रयोग तथा नि़रेगममंमग, यह स्वर-समुदाय राग की विशेषता को व्यक्त करते हैं। कुछ ग्रन्थों में इस राग में कोमल धैवत लिखा है, किन्तु इधर तीव्र धैवत ही लिया जाता है।

मियाँमल्लार

गा कोमल, संवाद म-स, उतरत धैवत टार।
दोउ निषाद के रूप ले, कहि मीयाँमल्लार ॥

राग—मियाँमल्लार	वर्जित स्वर—आरोह में ध
ठाठ—काफी	आरोह—रेमरेसा, मरे, प, निध, निसां
जाति—सम्पूर्ण-षाडव	अवरोह—सांनिप, मप, गम, रेसा
वादी—म, संवादी—सा	पकड़—रेमरेसा,नि़प़म़प़,नि़ध़नि़साप,गमरेसा
स्वर—दोनों निषाद, ग कोमल	समय—मध्य-रात्रि और वर्षा ऋतु में सदैव

कान्हड़ा और मल्लार के संयोग से यह राग बना है। इस राग में दोनों निषाद लगते हैं और कभी-कभी कुशल गायक एक के बाद दूसरा निषाद बराबर लेकर भी राग-हानि से इसे बचा लेते हैं। इस राग का आलाप विलम्बित लय में करके जब उसका विस्तार मन्द्र-स्थान में होता है, तब बड़ा सुन्दर और कर्णप्रिय लगता है। कहते हैं कि यह राग मियाँ तानसेन के द्वारा आविष्कृत हुआ है। वादी-संवादी के बारे में कुछ लोगों का मत वादी सा, संवादी प के पक्ष में है, किन्तु भातखंडे के अनुयायी अधिकतर म वादी तथा सा संवादी ही मानते हैं।

दरबारीकान्हड़ा

ग-ध-नी कोमल जानिए, उतरत धैवत नाहिं।
सुन दरबारीकान्हड़ा, रि-प संवाद बताहिं ॥

राग—दरबारीकान्हड़ा	वर्जित स्वर—अवरोह में ध
ठाठ—आसावरी	आरोह—नि़सारेगरेसा मप धनिसां
जाति—सम्पूर्ण-षाडव	अवरोह—सां धनिप, मप ग म रेसा
वादी—रे, संवादी—प	पकड़—ग, रेरे, सा, ध़, नि़सा, रे, सा
स्वर—ग-ध-नि कोमल	समय—मध्य-रात्रि

इस राग में गुणी लोग जलद और सीधी तानों में गान्धार स्वर को बिलकुल ही छोड़ देते हैं। गान्धार पर आन्दोलन इस राग की विचित्रता बढ़ाता है। नि-प की संगति इसमें बड़ी प्यारी लगती है। कहते हैं कि मियाँ तानसेन ने यह राग तैयार करके दरबार में अकबर बादशाह को सुनाकर उसे प्रसन्न किया था।

तोड़ी

रि-ग-धा कोमल, तीव्र मा, ध-ग संवाद बखान।
सम्पूरन तोड़ी कही, द्वितीय प्रहर दिन मान॥

राग—तोड़ी	वर्जित स्वर—कोई नहीं
ठाठ—तोड़ी	आरोह—सा, रेग, मंपध, निसां
जाति—सम्पूर्ण	अवरोह—सांनिधप, मंग, रे, सा
वादी—ध, संवादी—ग	पकड़—धनि सा, रे, गरे, सा, मंग, रेग, रेसा
स्वर—रे-ग-ध कोमल, म तीव्र	समय—दिन का दूसरा प्रहर

इस राग में पंचम स्वर का प्रयोग कुछ कमी के साथ करना चाहिए। इस राग की विचित्रता रे, ग तथा ध, इन तीन स्वरों पर निर्भर है। तोड़ी कई प्रकार की प्रचलित है, किन्तु राग तोड़ी के लिए तोड़ी, शुद्धतोड़ी, मुलतानीतोड़ी अथवा मियाँ की तोड़ी, ये नाम लिखे जाते हैं। इनके अतिरिक्त बिलासखानीतोड़ी, देसीतोड़ी, आसावरीतोड़ी, गान्धारीतोड़ी, जौनपुरीतोड़ी, बहादुरीतोड़ी, लाचारीतोड़ी इत्यादि जितने नाम हैं, वे इस राग से भिन्नता रखते हैं; अर्थात् वे राग बिलकुल अलग-अलग हैं।

मुलतानी

कोमल रि-ग-धा, तीव्र मा, प-स संवाद सजाइ।
चढ़ते रि-ध को त्यागकर मुलतानी समझाइ॥

राग—मुलतानी	वर्जित स्वर—आरोह में रे-ध
ठाठ—तोड़ी	आरोह—निसा गमंप निसां
जाति—औडुव-सम्पूर्ण	अवरोह—सांनिधप, मंग, रेसा
वादी—प, संवादी—सा	पकड़—निसा मंग, पग, रेसा
स्वर—रे ग ध कोमल, म तीव्र	समय—दिन का चौथा प्रहर

तोड़ी की तरह इस राग में भी रे ग ध का प्रयोग बड़ी कुशलता से करना होता है। इन स्वरों के गलत उपयोग से राग का स्वरूप बदल सकता है और तोड़ी की छाया आ सकती है। मुलतानी में म-ग की संगति और पुनरावृत्ति होती है। काफी ठाठ से आगे सन्धिप्रकाश रागों में प्रवेश करने के लिए यह राग अत्यन्त उपयोगी है। इस राग में सा-प-नि विश्रान्ति-स्थान माने जाते हैं। प्राचीन संस्कृत-ग्रन्थों में भी तीव्र मध्यम की मुलतानी पाई जाती है।

रामकली

भैरव के ही मेल में, म-नि दोउ रूप लखाय।
रि-ध कोमल, संवादि प-स, रामकली बन जाय॥

राग—रामकली	वर्जित स्वर—कोई नहीं
ठाठ—भैरव	आरोह—साग मप धनिसां
जाति—सम्पूर्ण	अवरोह—सांनिध पर्म पधनिध पगमरेसा
वादी—पंचम, संवादी—षड्ज	पकड़—धप मंप धनिध पगमरेसा
स्वर—रे-ध कोमल तथा म-नि दोनों	समय—प्रात:काल

रामकली का साधारण स्वरूप भैरव राग के समान है। रामकली के कई प्रकार सुने जाते हैं। एक प्रकार में म-नि आरोह में वर्जित हैं। इस प्रकार को शास्त्राधार तो है, किन्तु प्रचार में बहुत कम दिखाई देता है।

रामकली का एक और प्रकार है, जिसके आरोह-अवरोह में सातों स्वर लगते हैं; किन्तु यह प्रकार भैरव से मिल जाता है। उससे बचने के लिए इस प्रकार में गुणी लोग एक परिवर्तन यह बताते हैं कि भैरव का विस्तार मन्द्र और मध्य-स्थान में रहना चाहिए और रामकली का मध्य और तार-स्थान में विस्तार होना चाहिए।

रामकली का एक तीसरा प्रकार भी है, जिसमें दोनों म और दोनों नि प्रयोग किए जाते हैं। यह प्रकार खयाल-गायकों से प्राय: सुनने को मिलता है। इस प्रकार में तीव्र म और कोमल नि, इन दोनों स्वरों का प्रयोग एक अनूठे ढंग से होता है। मंपधनिधप, गमरेसा, इस प्रकार की तानें रामकली के इस प्रकार में प्राय: मिलती हैं। यही रूप आजकल गाया जाता है।

उपरिवर्णित प्रकारों के कारण इसके वादी-संवादी में भी मतभेद होना स्वाभाविक है, किन्तु दोनों मध्यम और दोनों निषाद वाले प्रकार में वादी पंचम और संवादी षड्ज मानना ठीक होगा, ऐसा ही भातखंडे-पद्धति के अनुयायी भी मानते हैं।

विभास (भैरव ठाठ)

जब भैरव के मेल सों, म-नि सुर दिए निकास।
रि-ध कोमल, संवाद ध-ग, औडुव रूप विभास॥

राग—विभास	वर्जित स्वर—म, नि
ठाठ—भैरव	आरोह—सा रे ग प धप सां
जाति—औडुव	अवरोह—सां ध प गपधप गरेसा
वादी—ध, संवादी—ग	पकड़—ध, प, गप, गरेसा
स्वर—रे-ध कोमल	समय—प्रात:काल

जिन रागों में म-नि वर्जित होते हैं, उनमें ग-प की संगति बहुत प्रिय मालूम होती है। यह उत्तरांग प्रधान राग है। विभास में जब धैवत लेकर पंचम पर राग समाप्त होता है, तो श्रोताओं को बड़ा आनन्द आता है। विभास की तरह ही सायंकाल का एक राग 'रेवा' है, किन्तु रेवा में ग वादी है और विभास में ध वादी है। इस भेद से गुणीजन विभास और रेवा को अलग-अलग दिखा देते हैं।

इसके अतिरिक्त 'विभास' नाम के दो राग और हैं। एक विभास पूर्वी ठाठ का है और एक मारवा ठाठ का, किन्तु उपर्युक्त विभास भैरव ठाठ का है, अतः उनसे इस विभास का कोई मेल नहीं।

पीलू

ध-ग-नी तीनों सुरन के कोमल-तीवर रूप।
ग-नि वादी-संवादि लखि, पीलू राग अनूप॥

राग—पीलू	वर्जित स्वर—कोई नहीं
ठाठ—काफी	आरोह—सारेग॒, मपध॒प, ऩिधपसां
जाति—सम्पूर्ण	अवरोह—ऩिधपमग॒, ऩिसा
वादी—ग, संवादी—नि	पकड़—ऩिसाग॒ऩिसा, प़ध॒ऩिसा
स्वर—सभी लग सकते हैं	समय—दिन का तीसरा प्रहर

पीलू राग को सभी पसन्द करते हैं। भैरवी, भीमपलासी, गौरी इत्यादि रागों के मिश्रण से इसकी रचना हुई है, अतः बारहों स्वर प्रयोग करने की इस राग में छूट है। तीव्र स्वरों का प्रयोग प्रायः अवरोह में अधिक किया जाता है।

आसा

औडुव-संपूरन कहत, आरोहन ग-नि त्याग।
म-स वादी-संवादि तें सोभित आसा राग॥

राग—आसा	वर्जित स्वर—आरोह में ग-नि
ठाठ—बिलावल	आरोह—सा रे म प ध सां
जाति—औडुव-सम्पूर्ण	अवरोह—सांनिधप मगरेसा
वादी—म, संवादी—सा	पकड़-रेमपधसांनिधपमगरेसारेगसाऩिध़सा
स्वर—सब शुद्ध	समय—रात्रि का दूसरा प्रहर

इसमें सभी शुद्ध स्वरों का प्रयोग होता है। इस राग को आरभी नामक राग से बचाने में सावधानी बरतनी पड़ती है। 'आसा' के आरोह में ग-नि का प्रयोग अल्प अथवा वर्जित होता है।

पटदीप

गा कोमल, संवाद प-स, चढ़ते रि-ध न लगाय।
औडुव-सम्पूरन कह्यो, तब पटदीप सुहाय॥

राग—पटदीप
ठाठ—काफी
जाति—औडुव-सम्पूर्ण
वादी—पंचम, संवादी—षड्ज
स्वर—कोमल गान्धार

वर्जित स्वर—आरोह में रे-ध
आरोह—निसा गम पनिसां
अवरोह—सांनिधप मगरेसा
पकड़—साग मगरे सानि, सागरेसा
समय—सायंकाल

यह राग भीमपलासी से बहुत-कुछ मिलता-जुलता है, किन्तु भीमपलासी में कोमल निषाद है और इसमें शुद्ध है। इस कारण कोमल निषाद का बचाव करके इसे गाना चाहिए। इसी प्रकार का एक राग पटदीपकी (प्रदीपकी) नामक श्री भातखंडे की 'क्रमिक पुस्तक मालिका' भाग ६ में मिलता है, किन्तु उसमें कोमल निषाद तथा दोनों गान्धार लिए हैं; इससे वह प्रकार अलग ही है।

पटदीप राग में निषाद पर विश्रान्ति लेकर उस निषाद से ही जोड़कर सागरेसा, यह स्वर-समुदाय लेना चाहिए, ऐसा मत श्री पटवर्धन जी का है।

रागेश्री (रागेश्वरी)

आरोहन प-रि वर्ज्य कर, उतरत पंचम हानि।
दोऊ नी संवाद ग-नि, रागेश्वरी बखानि॥

राग—रागेश्री
ठाठ—खमाज
जाति—औडुव-षाडव
वादी—ग, संवादी-नि
स्वर—दोनों निषाद

वर्जित स्वर-आरोह में प-रे, अवरोह में प
आरोह—साग मधनिसां
अवरोह—सांनि धम गरेसा
पकड़—गमधनि सांनिधऽ मगरेसा
समय—रात्रि का दूसरा प्रहर

इसमें पंचम स्वर तो बिलकुल नहीं लगता और आरोह में ऋषभ भी नहीं लगाया जाता। ध-म की स्वर-संगति इसमें बहुत सुन्दर मालूम होती है। उत्तरांग में बागेश्री का आभास होता है, किन्तु पूर्वांग में आया हुआ तीव्र गान्धार बागेश्री का भ्रम हटा देता है, क्योंकि बागेश्री में कोमल गान्धार लगता है।

पहाड़ी

औडुव करके गाइए, म-नि को दीजै त्याग।
स-प वादी, सम्वादि ते, कहत पहाड़ी राग॥

राग-पहाड़ी
ठाठ-बिलावल
जाति-औडुव
वादी-षड्ज, संवादी-पंचम
स्वर-सब शुद्ध

वर्जित स्वर-म नि
आरोह-सारेगप धसां
अवरोह-सांधप, गप, गरेसा
पकड़-ग, रेसा, ध, पधसा
समय-सार्वकालिक

इस राग में मध्यम और निषाद स्वर इतने दुर्बल हैं कि उन्हें वर्जित ही कहना उपयुक्त होगा। जब इस राग में भूपाली की छाया दिखाई देने लगती है, तो चतुर गायक इसके अवरोह में थोड़ा मध्यम 'ग मग रे सा', इस प्रकार लगाकर भूपाली से इसे बचा लेते हैं। मन्द्र-सप्तक के धैवत पर विश्रान्ति लेने से इस राग का सौन्दर्य बढ़ता है।

जोगिया

आरोही वर्जित ग-नी, अवरोहन गा त्याग।
रि-ध कोमल, संवाद म-स, कहत जोगिया राग॥

राग—जोगिया	वर्जित स्वर–आरोह में ग नि, अवरोह में ग
ठाठ—भैरव	आरोह—सा रे म प ध सां
जाति—औडुव-षाडव	अवरोह—सां नि ध प ध म रे सा
वादी—म, संवादी—सा	सा पकड़—म, रेसा, सारेरेमरेसा
स्वर—रे, ध कोमल	समय—प्रातःकाल

रे-म और ध-म की स्वर-संगति इस राग को रंजकता बढ़ाती है। मध्यम स्वर मुक्त रखने से यह राग विशेष अच्छा लगता है। संगीत-मर्मज्ञों का कहना है कि इस राग की रचना भैरव और सावेरी के सम्मिश्रण से हुई है। सावेरी राग कर्नाटकी ग्रन्थों में पाया जाता है। भातखंडे-मतानुसार इस राग के अवरोह में किसी-किसी स्थान पर कोमल निषाद लेते हुए कोमल धैवत पर आते हैं।

मेघमल्लार

जब काफी के मेल सों, ध-ग सुर दीने टार।
दोउ निषाद, संवाद स-प, औडुव मेघमलार॥

राग—मेघमल्लार	वर्जित स्वर—ध, ग
ठाठ—काफी	आरोह—सा मरे मप निनिसां
जाति—औडुव	अवरोह—सां नि प मरे मनि़ रेसा
वादी—सा, संवादी—प	पकड़—मरेपमरेसा, नि़प़नि़सा
स्वर—दोनों नि, बाकी शुद्ध	समय—रात्रि का प्रथम प्रहर

म रे प, यह स्वर-विन्यास मेघमल्लार की विशेषता है। ऋषभ स्वर पर होने-वाला आन्दोलन इस राग की सुन्दरता बढ़ाकर राग का स्वरूप व्यक्त करता है। यह

म म म
आन्दोलन रे, रे, रे, इस प्रकार ऋषभ पर मध्यम का कण लगाकर कई बार किया जाता है। मध्यम पर अनेक बार विश्रान्ति होती है, जिससे सारंग की छाया दूर होती है। इस राग में धैवत लगाकर भी कोई-कोई गायक गाते हैं।

ताल-मात्रा-लय-विवरण

ताल—जिस आधार पर गायन, वादन और नृत्य होता है, उसकी क्रिया नापने को 'ताल' कहते हैं। जिस प्रकार भाषा में व्याकरण की आवश्यकता होती है, उसी प्रकार संगीत में ताल की आवश्यकता होती है। गाने-बजाने और नाचने की शोभा ताल से ही है; यथा:—

तालस्तलप्रतिष्ठायामिति धायोर्धजि स्मृतिः।
गीतं वाद्यं तथा नृत्यं यतस्ताले प्रतिष्ठितम्॥

ताल शब्द 'तल' धातु (प्रतिष्ठा, स्थिरता) से बना है। तबला, पखावज इत्यादि ताल-वाद्यों से जब गाने के समय को नापा जाता है, तो एक विशेष प्रकार का आनन्द प्राप्त होता है। वास्तव में 'ताल' संगीत की जान है, ताल पर ही संगीत की इमारत खड़ी हुई है।

मात्रा—'मात्रा' ताल का ही एक हिस्सा है, क्योंकि मात्राओं के योग से ही समस्त तालों की रचना हुई है। एक-सी लय या चाल में गिनती गिनने को मात्रा कह सकते हैं। यदि घड़ी की एक सैकिंड को हम एक मात्रा मान लें, तो १६ सैकिंड में तीनताल का ठेका बन जाएगा, १२ सैकिंड में एकताल का ठेका बन जाएगा और १० सैकिंड में झपताल हो जाएगी। इसी प्रकार बहुत-सी तालें बनी हैं।

लय—मुख्य लय तीन प्रकार की होती हैं—१. विलम्बित, २. मध्य तथा ३. द्रुत।

विलम्बित लय—जिस लय की चाल बहुत धीमी हो, उसे विलम्बित लय कहते हैं। विलम्बित लय का अन्दाज, मध्य लय से यों लगाया जाता है—मान लीजिए, एक मिनट में आपने एक-सी चाल से ६० तक गिनती गिनी, तो उसे अपनी मध्य लय मान लीजिए। इसके बाद इसी एक मिनट में समान चाल से ३० तक गिनती गिनी, तो विलम्बित लय कहेंगे, अर्थात् ३० तक गिनती जो गिनी गई, उसकी लय बनिस्बत ६० वाली गिनती के धीमी हो गई, अर्थात् प्रत्येक गिनती में कुछ देर लगी। 'विलम्ब' का अर्थ है—देर।

मध्य लय—जिस लय की चाल विलम्बित से तेज और द्रुत से कम हो, उसे मध्य लय कहते हैं। यह लय बीच की होती है। 'मध्य' का अर्थ है—बीच।

द्रुत लय—जिस लय की चाल विलम्बित लय से चौगुनी या मध्य लय से दुगुनी हो, उसे द्रुत लय कहेंगे। ऊपर मध्य लय में बताया गया था कि १ मिनट में समान चाल से ६० तक गिनती गिनकर मध्य लय कायम की गई है। अब यदि १ मिनट में १२० तक गिनती गिनी जाएगी, तो निश्चय है कि गिनती की चाल तेज हो जाएगी। द्रुत का अर्थ है—तेज।

ठेका—तबला या मृदंग के लिए प्राचीन शास्त्रकारों ने भिन्न-भिन्न बोल वैसी ही भाषा में बना दिए, जैसी उन ताल-वाद्यों से प्रकट होती है। उन्हीं बोलों को जब हम तबला या मृदंग पर बजाते हैं, तब उसे ठेका कहते हैं। ठेका एक ही आवृत्ति का होता है, जिसमें मात्राएँ निश्चित होती हैं। उन्हीं निश्चित मात्राओं के अनुसार गाने-बजाने का नाप होता है; जैसे कहरवा ताल में ८ मात्राएँ हैं और इसके दो भाग हैं। प्रत्येक भाग में ४-४ मात्राएँ हैं। पहली मात्रा पर सम और पाँचवीं पर खाली है।

इस प्रकार लिखेंगे:—

मात्राएँ	१	२	३	४	५	६	७	८
ठेका	धा	गे	न	ति	न	क	धि	न
ताल-चिह्न	×				०			

यह कहरवा का ठेका हुआ। इसी प्रकार अन्य बहुत-सी तालों के ठेके हैं।

दुगुन—किसी ठेके को जब दुगुनी लय में बजाया जाए, यानी जितने समय में कोई ठेका एक बार बजाया गया था, उतने ही समय में उसे दो बार कहा जाए या बजाया जाए, तो उसे दुगुन कहेंगे। इसी प्रकार किसी गीत की स्थायी या अन्तरे को जितने समय में एक बार गाया जाए, ठीक उतने ही समय में उसे दो बार गा दिया जाए, तो वही 'दुगुन' कहलाएगी।

तिगुन, चौगुन—इसी प्रकार जब कोई ठेका या गीत १ मिनट में एक बार बजाया जाए और वही ठेका या गीत उतने ही समय में अर्थात् १ मिनट में ही ३ बार गाया या बजाया जाए, तो उसे तिगुन कहेंगे। यदि १ मिनट में ४ बार गाया या बजाया जाए तो उसे चौगुन कहेंगे।

आड़ी—कोई ठेका या गीत जिस मध्य लय में गाया-बजाया जाए, उससे ड्यौढ़ी लय में गाने-बजाने को 'आड़ी' कहेंगे। मान लीजिए, १ मिनट में ६० तक गिनती गिनी जा रही है, और जब एक मिनट में ९० तक गिनती गिनने लगें, तो वही 'आड़ी' कहलाएगी।

कुआड़ी—यदि ठेके की गति मध्य लय से सवाई होती है, तो उसे कुआड़ी लय कहते हैं; जैसे १ मिनट में ६० तक गिनती गिनी जा रही थी और जब १ मिनट में ही ७५ तक गिनती गिनी जाएगी, तो उसे 'कुआड़ी' कहेंगे।

बिआड़ी—इसी प्रकार एक मिनट में १०५ तक गिनती गिनी जाएगी, तो 'बिआड़ी' अर्थात् पौने दोगुनी लय हो जाएगी। लय का विशेष विवरण आगामी पृष्ठों में ताल के साथ दिया गया है।

सम—यह ताल का वह स्थान है, जहाँ से गाना-बजाना या ताल का ठेका शुरू होता है। गायक-वादक ऐसे स्थान पर संगति करते हुए जब मिलते हैं, तो एक विशेष प्रकार का आनन्द आता है और श्रोताओं के मुँह से अनायास ही 'आं' निकल जाती है।

या उनके शरीर का अंग हिल जाता है। 'सम' पर गायक-वादक विशेष जोर देकर उसे प्रदर्शित करते हैं। प्रायः सम पर ही गाने-बजाने की समाप्ति भी होती है। सम को 'न्यास' भी कहते हैं।

खाली—प्रत्येक ताल के कुछ हिस्से होते हैं, जिन्हें भाग भी कहते हैं। इन भागों पर जहाँ हाथ से तालियाँ बजाई जाती हैं, वे तो 'भरी' कहलाती हैं और जिन भागों पर बन्द रहती है, वह 'खाली' कहलातो है। ताल में खाली भाग इसलिए रखने पड़े हैं कि इससे सम आने का अन्दाज ठीक लग जाता है। खाली के स्थान का संकेत हाथ फेंककर किया जाता है और भातखंडे-स्वरलिपि-पद्धति में इस स्थान को (०) शून्य द्वारा दिखाते हैं।

भरी—ताल के जिन हिस्सों पर तालियाँ बजाई जाती हैं, उन्हें 'भरी' या तालियों के स्थान कहते हैं। वैसे, जब हाथ से ताल दिखानी होती है, तब भरी ताल को थाप द्वारा दिखाया जाता है।

यति—लय के चाल-क्रम (गति) को कहते हैं। प्राचीन शास्त्रों में यति के पाँच प्रकार माने गए हैं—

१. **समा**—लय के अन्तर्गत आरम्भ, बीच और अन्त, इन तीनों स्थानों पर बराबर एक-सी लय का होना ही 'समा' यति कहलाता है।
२. **श्रोतावहा**—जिसके आरम्भ में विलम्बित लय, बीच में मध्य लय और अन्त में द्रुत लय हो, उसे 'श्रोतावहा' यति कहते हैं।
३. **मृदंगा**—जिसके आरम्भ और अन्त में द्रुत लय, बीच में मध्य लय या विलम्बित लय होती है, उसे 'मृदंगा' यति कहते हैं।
४. **पिपीलिका**—जिसके आदि, अन्त में विलम्बित या मध्य लय और बोच में द्रुत लय होती है, उसे 'पिपीलिका' यति कहते हैं।
५. **गोपुच्छा**—जो यति द्रुत लय से आरम्भ होकर क्रमशः मध्य और फिर विलम्बित होती जाए, उसे 'गोपुच्छा' यति कहते हैं।

आवृत्ति—आवृत्ति का अर्थ है फेरना, दुहराना या चक्कर लगाना। जिस ताल को सम से सम तक जितनी बार दुहराया जाएगा, उसे उतनी ही आवृत्ति कहेंगे। कोई-कोई इसे आवर्तन या आवर्तक भी कहते हैं।

जर्ब—जर्ब का अर्थ है आघात या चोट। तबले पर जो थाप दी जाती है, उसे जर्ब कहते हैं। इसी प्रकार सितार पर जो मिजराब द्वारा आघात किया जाता है, उसे भी जर्ब कहते हैं।

कायदा—तबला या मृदंग पर बजनेवाले वर्ण-समूह तालबद्ध होकर अभ्यास में आने लगें और उन्हें शास्त्रीय रीति से तबला या मृदंग पर बजाया जा सके एवं उँगलियाँ सधी हुई और तैयार पड़ें, बोल स्पष्ट निकलें, तो उसे 'कायदा' कहते हैं।

टुकड़ा—तबला या मृदंग पर बजनेवाले बोलों का एक छोटा-सा समूह जब दुगुन, तिगुन, चौगुन या अठगुन की लय में बजाकर सम पर उसकी समाप्ति होती है, तो उसे 'टुकड़ा' कहते हैं।

तिपल्ली—जिन शब्दों की गति की चाल बिना खंड किए तीन बार कहकर सम पर आए, उसे तिपल्ली कहते हैं।

चौपल्ली—जिसके बलों के खन्ड चार-चार मालूम हों।

पल्टा—तबला या मृदंग पर बजनेवाले बोलों के किसी समूह को जब उलट-पलटकर बजाया जाता है, तो उसे पल्टा कहते हैं।

तीया—किसी भी टुकड़े को तीन बार इस प्रकार बजाया जाए कि उसका अन्तिम धा सम पर आकर पड़े, तो उसे तीया या तिहाई कहते हैं।

मुखड़ा—किसी टुकड़े को सम से खाली तक अथवा खाली से सम तक बजाने को मुखड़ा कहते हैं।

मोहरा—यह तीया की भाँति ही होता है। अर्थात् जब किसी टुकड़े को तीन बार बजाकर सम पर उसकी समाप्ति हो, तो उसे मोहरा या तीया कहते हैं।

लग्गी—तबले में आड़ी चाल से जब 'धिधाधिन धीनाड़ा' इत्यादि बोल बजाए जाते हैं, तो उसे लग्गी कहते हैं।

लड़ी—जिस प्रकार माला की लड़ी में दाने पिरोये जाते हैं, उसी प्रकार बराबर की लय में ताल के बोलों को चुनकर दुगुन, चौगुन में बार-बार बजाया जाता है, उसे लड़ी कहते हैं।

पेशकारा—तबला या मृदंग पर बजनेवाले सुन्दर-सुन्दर बोलों को विशेष प्रकार से बजाकर श्रोताओं के सामने पेश करने को पेशकारा कहते हैं। पेशकारा के बोलों में यह विशेषता होती है कि वे ताल और लय के लहरे पर हिलते हुए एवं आड़दार धक्का देते हुए चलते हैं। इन्हें कुशल तबला-वादक ही सफलतापूर्वक बजा सकते हैं।

आमद—गायन-वादन या नृत्य के साथ तबला या मृदंग पर जब संगति चलती है, तो कुछ सुन्दर बोलों को आरम्भ में बजाया जाता है, उसे ही आमद या सलामी कहते हैं।

बोल—तबला या मृदंग पर बजनेवाले अक्षरों से निर्मित जो शब्द बनते हैं, उन्हें बोल कहते हैं; जैसे किट, धिन, कड़ान, धिड़ान धा इत्यादि।

उठान—आमद या सलामी के बोलों को जोरदार तिहाई मारकर जब सम पर आते हैं तब उसे 'उठान' कहते हैं।

नवहक्का—तिहाई को तीन बार बजाकर उसका अन्तिम अक्षर सम पर आए तो उसे नवहक्का कहते हैं।

रेला—एक-एक मात्रा में चार, आठ या अधिक अक्षरों के बोलों को मध्य लय में सीधी चाल से बजाने को रेला कहते हैं। रेला कई आवृत्तियों के होते हैं।

परन

ताल की किसी भी मात्रा से आरम्भ होकर जो बोल सम पर समाप्त होता है, उसको अथवा ग्रह से सम तक के बाज को परन कहते हैं।

ताल के दस प्राण

प्रत्येक जाति के तालों में दस बातें अवश्य ही मिलेंगी, जिन्हें ताल के प्राण कहते हैं—१. काल, २. क्रिया, ३. कला, ४. मार्ग, ५. अंग, ६. प्रस्तार, ७. जाति, ८. ग्रह, ९. लय और १० गति।

काल

समय का ही दूसरा नाम 'काल' है। काल से ही मात्राओं और तालों की रचना हुई है और इसी से लय बनती है।

क्रिया

किसी भी ताल की मात्राओं के गिनने को क्रिया कहते हैं। क्रिया से ही हमें मालूम होता है कि अमुक ताल में कौन-कौन-से अंग हैं और वह कौन-सी ताल है। क्रिया के दो भेद माने गए हैं—१. सशब्द क्रिया, २. निःशब्द क्रिया।

सशब्द क्रिया

ताल की मात्राओं या समय को गिनने की वह क्रिया है, जिसमें आवाज उत्पन्न हो, अर्थात् ताली देकर मात्राएँ गिनना।

निःशब्द क्रिया

ताल की मात्राएँ जब उँगलियों पर या मन-ही-मन में, बिना शब्द किए हुए गिनी जाएँ, तो उसे निःशब्द क्रिया कहेंगे।

कला

मात्राओं के हिस्से (भाग) को कहते हैं; जैसे आधी मात्रा, चौथाई मात्रा या ⅛ मात्रा आदि।

मार्ग

प्राचीन ग्रन्थों में चार प्रकार के बताए हैं। ध्रुव, चतुरा, दक्षिणा और वृत्तिका। कला के हिसाब से इन्हें भिन्न-भिन्न प्रकार से बाँटा जाता था। किन्तु इनका वास्तविक रूप क्या था, इसका कोई पता नहीं चलता।

अंग

ताल के समय में जो भिन्न-भिन्न भाग होते हैं, उन्हें अंग कहते हैं। यह छह प्रकार के हैं, जिन्हें अनुद्रुत, द्रुत, लघु, गुरु, प्लुत और काकपद कहते हैं।

अनुद्रुत में १. मात्रा, द्रुत में २. मात्रा, लघु में ४. मात्रा, गुरु में ८ मात्रा, प्लुत में १२ मात्रा और काकपद में १६ मात्राओं का समय माना गया है।

प्रस्तार—जिस प्रकार सात स्वरों के फैलाव से ५०४० तानें पैदा हुई हैं, उसी प्रकार एक मात्रा से लेकर १६ मात्राओं तक के प्रस्तार से भिन्न-भिन्न तालें पैदा होकर उनकी संख्या ६५५३५ हो जाती है। प्रस्तार का अर्थ है—बढ़ाना या फैलाना।

जाति—ताल के बोलों की रचना जितने-जितने अक्षरों से हुई है, उनके अनुसार पाँच जातियाँ कायम की गई हैं, जो निम्नलिखित हैं :—

१. चतुरश्र जाति	४ मात्राओं के लिए	तक धिन
२. त्र्यश्र जाति	३ " "	तकिट
३. खंड जाति	५ " "	तकिट किट
४. मिश्र जाति	७ " "	तक धिन तकिट
५. संकीर्ण जाति	९ " "	तकधिन तक तकिट

ग्रह—ताल के चार ग्रह होते हैं, जिन्हें सम, विषम, अतीत और अनाघात कहते हैं। १. जब गीत और ताल एक ही स्थान से आरम्भ हों तो उसे सम ग्रह कहेंगे। २. जब सम निकलने के बाद गाना शुरू किया जाए, तो उसे विषम ग्रह कहेंगे। विषम का अर्थ है असमान या बराबर न होना। ३. अतीत का अर्थ है पिछला या अन्त। ताल के सम का अन्त होने पर जब गायन आरम्भ किया जाता है, तो उस स्थान को अतीत कहते हैं। ४. जब पहले गायन आरम्भ हो जाए और पीछे ताल शुरू हो, तो उसे अनाघात या अनागत ग्रह कहते हैं।

लय-विवरण

समय के किसी भी हिस्से की समान (एक-सी) चाल को 'लय' कहते हैं। जैसे घड़ी का पैण्डुलम एक-सी चाल में खट-खट कर रहा है। मान लीजिए, उसका प्रत्येक 'खट' एक सैकिन्ड के समय में चल रहा है। यदि वही पैण्डुलम कोई खट एक सैकिन्ड में और कोई खट डेढ़ सैकिन्ड में करने लगे, तो हम संगीत की भाषा में कहेंगे कि इसकी लय बिगड़ गई, अर्थात् घड़ी की चाल बिगड़ गई। लय बराबर तभी रहेगी, जब वह घड़ी अपनी 'खट-खट' एक-सी लय में करती रहेगी।

इसी प्रकार संगीत या गाने, बजाने तथा नाचने का सम्बन्ध लय से है। एक-सी चाल में किसी ताल को बजाया जाएगा, तो उससे एक प्रकार की लय स्थिर कर ली जाएगी। फिर उस ताल की गति घटाई या बढ़ाई जाएगी, तब लय बदल जाएगी। इस प्रकार मुख्य लय तीन मानी गई हैं :—

१. मध्य लय, २. विलंबित लय, ३. द्रुत लय। किन्तु जब संगीत के बड़े-बड़े कलाकार विशेष रूप से अपनी कला का प्रदर्शन करते हैं, तो उन्हें उपयुक्त तीन लयों के अतिरिक्त और लयों की भी आवश्यकता होती है। उनके लिए इन लयों का निर्माण और हुआ—अति विलम्बित लय, तिगुन लय, चौगुन लय, अठगुन लय, कुआड़ी लय, आड़ी लय और बिआड़ी लय। इस प्रकार लय के कुल दस भेद हुए। अब यह बताते

हैं कि इनमें भेद क्या है और इन्हें लिपिबद्ध कैसे किया जाएगा, अर्थात् लिखा कैसे जाएगा।

लय की व्याख्या और उसे लिपिबद्ध करने का ढंग

मध्य लय

जब कोई गायक गाना आरम्भ करे, तो पहले उसकी बराबर की लय मालूम कर लेनी चाहिए। बराबर की लय को ही मध्य लय कहते हैं। मध्य का अर्थ है बीच। अर्थात् वह इसी लय को आधार मानकर अन्य लयों का प्रदर्शन करेगा।

अगले पृष्ठ पर हम एक गीत की पहली लाइन दे रहे हैं। इसे मध्य लय में मानकर आगे की लय बताने में सुविधा रहेगी। साथ ही इस गीत की लाइन के सोलह अक्षरों को गाने का समय मध्य लय में सोलह सैकिंड मान लेते हैं। यह हमारा मानदण्ड है। इसी के गणित से अन्य लयों को समझने की चेष्टा की जाएगी।

मध्य लय (तीनताल), मानदंड सोलह सैकिंड

गीत–	ज	य	ज	य	गि	रि	ध	र	न	ट	व	र	म	न	ह	र
सैंकिंड–	१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१३	१४	१५	१६
ताल–	ना	धी	धी	ना	ना	धी	धी	ना	ना	ती	ती	ना	ना	धी	धी	ना
चिन्ह	×				२				०				३			

उपर्युक्त गीत के सोलह अक्षर सोलह सैकिंड में गाए गए और यह हमने मध्य लय मान ली। अब इस लय को विलम्बित लय करके दिखाते हैं, अर्थात् उपर्युक्त लय से सोलह अक्षर गाने में जितना समय लगा था, अब उससे दुगुना समय (बत्तीस सैकिंड) इन्हीं सोलह अक्षरों को गाने में लगेगा; जैसे :—

विलम्बित लय (तीनताल)

ज	ऽ	य	ऽ	ज	ऽ	य	ऽ	गि	ऽ	रि	ऽ	ध	ऽ	र	ऽ
१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१३	१४	१५	१६
ना	–	धी	–	धी	–	ना	–	ना	–	धी	–	धी	–	ना	–
×								२							
न	ऽ	ट	ऽ	व	ऽ	र	ऽ	म	ऽ	न	ऽ	ह	ऽ	र	ऽ
१७	१८	१९	२०	२१	२२	२३	२४	२५	२६	२७	२८	२९	३०	३१	३२
ना	–	ती	–	ती	–	ना	–	ना	–	धी	–	धी	–	ना	–
०								३							

इस प्रकार बत्तीस सैकिंड में वही सोलह अक्षर गाए गए, तो हम कहेंगे कि यह हमारी अर्ध लय हो गई। इसे ही विलम्बित लय भी कहेंगे।

अतिविलम्बित लय

ज	ऽ	ऽ	ऽ	य	ऽ	ऽ	ऽ	ज	ऽ	ऽ	ऽ	य	ऽ	ऽ	ऽ
१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१३	१४	१५	१६
ना	–	–	–	धी	–	–	–	धी	–	–	–	ना	–	–	–
X															

गि	ऽ	ऽ	ऽ	रि	ऽ	ऽ	ऽ	ध	ऽ	ऽ	ऽ	र	ऽ	ऽ	ऽ
१७	१८	१९	२०	२१	२२	२३	२४	२५	२६	२७	२८	२९	३०	३१	३२
ना	–	–	–	धी	–	–	–	धी	–	–	–	ना	–	–	–
२															

न	ऽ	ऽ	ऽ	ट	ऽ	ऽ	ऽ	व	ऽ	ऽ	ऽ	र	ऽ	ऽ	ऽ
३३	३४	३५	३६	३७	३८	३९	४०	४१	४२	४३	४४	४५	४६	४७	४८
ना	–	–	–	ती	–	–	–	तीं	–	–	–	ना	–	–	–

म	ऽ	ऽ	ऽ	न	ऽ	ऽ	ऽ	हृ	ऽ	ऽ	ऽ	र	ऽ	ऽ	ऽ
४९	५०	५१	५२	५३	५४	५५	५६	५७	५८	५९	६०	६१	६२	६३	६४
ना	–	–	–	धी	–	–	–	धी	–	–	–	ना	–	–	–
३															

इस प्रकार ६४ सैकिंड में वे ही १६ अक्षर गाए गए, अर्थात् मध्य लय नं० १ से इसकी गति चौथाई हुई, क्योंकि मध्य लय में हमने १६ सैकिंड में ही १६ अक्षर गा लिए थे और उन्हीं १६ अक्षरों को गाने में यहाँ चौगुना समय लग गया, इसलिए हमारी लय की गति चौथाई हो गई। इसे ही अतिविलम्बित लय कहेंगे।

यह तो लय को घटाने या विलम्बित करने का गणित हुआ; अब आगे लय को बढ़ाने का हिसाब बताया जाता है:—

दुगुन लय (द्रुत लय)

इसकी चाल नं० १ वाली मध्य लय से ठीक दुगुनी होगी, इसलिए इसे दुगुन कहेंगे; और चूँकि इसकी चाल में पहले की अपेक्षा तेजी है, इसलिए इसे द्रुत लय

भी कहते हैं। द्रुत का अर्थ है जल्द या तेज। द्रुत लय को इस प्रकार लिपिबद्ध करेंगे :—

जय	जय	गिरि	धर	नट	वर	मन	हर
१	२	३	४	५	६	७	८
नाधी	धीना	नाधी	धीना	नाती	तीना	नाधी	धीना
×		२		०		३	

पाठकों को मालूम ही है कि मध्य लय के उपर्युक्त १६ अक्षरों को १६ सैकिंड में गाया गया था। अब वे ही १६अक्षर ८ सैकिंड में गा लिए, अतः यह हुई दुगुन लय। क्योंकि १६÷२=८

तिगुन लय

इस लय में मध्य लय से तिगुनी चाल हो जाएगी, अर्थात् अब उन्हीं १६ अक्षरों के गाने में मध्य लय की अपेक्षा एक तिहाई समय लगेगा :—

जयज	यगिरि	धरन	टवर	मनह	र,ज
१	२	३	४	५	५⅓
नाधीधी	नानाधी	धीनाना	तीतीना	नाधीधी	नाना
×	२	०		३	×

नोट—'जय-जय गिरिधर नटवर मनह' इन १५ अक्षरों को गाने में ५ सैकिंड लगे तथा अन्तिम 'र' अक्षर में ⅓ सैकिंड लगा और 'ज' अक्षर पर फिर दूसरी आवृत्ति शुरू हो गई।

इस प्रकार तिगुन लय में उन्हीं १६ अक्षरों को गाने में १६÷३=५⅓ सैकिंड लगेंगी; और यदि इसे तीन बार गाया जाए, तो पूरी १६ सैकिंड में सम पर आ जाएँगे।

चौगुन लय

इसकी चाल नं० १ वाली मध्य लय से चौगुनी तेज होगी।

जयजय	गिरिधर	नटवर	मनहर
१	२	३	४
नाधीधीना	नाधीधीना	नातीतीना	नाधीधीना
×	२	०	३

चूँकि १ नं० की मध्य लय के १६ अक्षरों को गाने में १६ सैकिंड लगे थे, इसलिए चौगुनी लय में १६÷४=४ सैकिंड लगेंगे; और इसे ४ बार गाया जाए, तब मध्य लय वाली सम पर आ जाएँगे।

अठगुन लय

इसकी चाल नम्बर १ वाली मध्य लय से अठगुनी तेज होगी—

जयजयगिरिधर	नटवरमनहर
१	२
नाधीधीनानाधीधीना	नातीतीनानाधीधीना
× २	० ३

चूँकि नं० १ की मध्य लय के इन्हीं १६ अक्षरों को गाने में १६ सैंकिड लगे थे, इसलिए अठगुनी लय में १६÷८=२ सैंकिड लगेंगे; और इसे ८ बार गाने पर १६ सैंकिड में मध्य लय वाली सम आ जाएगी।

कुआड़ी लय

इसकी चाल नं० १ वाली मध्य लय से सवाई तेज होती है। इसे लिखने के लिए १ अक्षर के चार भाग मानकर प्रत्येक अक्षर के आगे ऽऽऽ ऐसे ३ अवग्रह लगाए जाएँगे। और फिर अवग्रह सहित पाँच-पाँच बोलों को एक-एक मात्रा के अन्तर्गत रखेंगे। जैसे :—

जऽऽऽय	ऽऽऽजऽ	ऽऽयऽऽ	ऽगिऽऽऽ	रिऽऽऽध
१	२	३	४	५
ना---धी	---धी-	--ना--	-ना---	धी---धी
×			२	

ऽऽऽरऽ	ऽऽनऽऽ	ऽटऽऽऽ	वऽऽऽर	ऽऽऽमऽ	ऽऽनऽऽ	ऽहऽऽऽ	र,ऽऽऽज
६	७	८	९	१०	११	१२	१२$\frac{४}{५}$,
---ना-	--ना--	-ती---	ती---ना	---नाऽ	--धी--	-धी---	ना---ना
	०			३			×

ध्यान दीजिए, 'जयजय गिरिधर नटवर मनहर' ये सोलह अक्षर १२ सैंकिड से कुछ अधिक समय में अर्थात् १२$\frac{४}{५}$ सैंकिड में ही समाप्त हो गए। क्योंकि मध्य लय १६ सैंकिड में थी, इसलिए १६÷१$\frac{१}{४}$=१२$\frac{४}{५}$ सैंकिड समय लगा।

आड़ी लय

इसकी गति (चाल) मध्य लय नं० १ से ड्योढ़ी होती है। इसे लिखने के लिए एक अक्षर के दो भाग मानकर प्रत्येक अक्षर के आगे एक अवग्रह (ऽ) जोड़ा जाएगा और अवग्रह सहित तीन-तीन बोलों को एक मात्रा के अन्तर्गत रखेंगे।

जऽय	ऽजऽ	यऽगि	ऽरिऽ	धऽर	ऽनऽ	टऽव	ऽरऽ	मऽन	ऽहऽ	र,ऽज
१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	१०$\frac{२}{३}$,
ना-धी	-धी-	ना-ना	-धी-	धी-ना	-ना-	ती-ती	-ना-	ना-धी	-धी-	ना-ना
×		२			०			३		×

इस लय में वे ही सोलह अक्षर १०$\frac{२}{३}$ सैकिंड में गा लिए जाएँगे; क्योंकि मध्य-लय १६ सैकिंड में थी, इसलिए १६÷१$\frac{१}{२}$=१०$\frac{२}{३}$ सैकिंड समय लगा।

बिआड़ी लय

इस लय की गति मध्य लय नं० १ से पौने दोगुनी तेज होगी। इसे लिखने के लिए प्रत्येक अक्षर के चार भाग मानकर तीन अवग्रह (ऽऽऽ) जोड़े जाएँगे; क्योंकि एक भाग स्वयं वह अक्षर हो गया। इस प्रकार चार भाग हो जाते हैं। अब अवग्रह सहित सात-सात बोलों को एक मात्रा के अन्तर्गत रखेंगे।

जऽऽऽयऽऽ	ऽजऽऽऽयऽ	ऽऽगिऽऽऽरि	ऽऽऽधऽऽऽ	रऽऽऽनऽऽ
१	२	३	४	५
ना---धी--	-धी---ना-	--ना---धी	---धी---	ना---ना--
×		२		०
ऽटऽऽऽवऽ	ऽऽरऽऽऽम	ऽऽऽनऽऽऽऽ	हऽऽऽरऽऽ	ऽ,जऽऽऽयऽ
६	७	८	९	९$\frac{१}{७}$,
-ती---ती-	--ना---ना	---धी---	धी---ना--	-,ना---धी-
	३			×

इस लय में वे ही १६ अक्षर ९$\frac{१}{७}$ सैकिंड में गाए गए, क्योंकि मध्य लय १६ सैकिंड में थी और यह उसकी पौने दोगुनी तेज है, तो १६÷१$\frac{३}{४}$=९$\frac{१}{७}$ सैकिंड। ध्यान दीजिए, 'मनहर' तक गाने में ९ सैकिंड पूरी हो गईं, फिर अगली मात्रा के सात भागों में से १ भाग और लेना पड़ा, तभी गणित के हिसाब से ९$\frac{१}{७}$ आया।

उत्तरी संगीत-पद्धति की कुछ मुख्य तालें

कहरवा (मात्रा ८, भाग २)

मात्रा	१	२	३	४	५	६	७	८
बोल	धा	गे	न	ति	न	क	धि	न
ताल-चिन्ह	×				०			

दादरा (मात्रा ६, भाग २)

१	२	३	४	५	६
धा	धी	ना	धा	ती	ना
×			०		

झपताल (मात्रा १०, भाग ४)

१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०
धी	ना	धी	धी	ना	ती	ना	धी	धी	ना
×		२			०		३		

चार ताल (मात्रा १२, भाग ६)

१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२
धा	धा	दिं	ता	किट	धा	दिं	ता	तिट	कत	गदि	गन
×		०		२		०		३		४	

त्रिताल (मात्रा १६, भाग ४)

१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१३	१४	१५	१६
धा	धिं	धिं	धा	धा	धिं	धिं	धा	धा	तिं	तिं	ता	ता	धिं	धिं	धा
×				२				०				३			

आड़ाचारताल (मात्रा १४, भाग ७)

१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१३	१४
धिं	धिं	धागे	तिरकिट	तू	ना	क	त्ता	धीं	धीं	ना	धीं	धीं	ना
×		२		०		३		०		४		०	

तीव्रा (मात्रा ७, भाग ३)

१	२	३	४	५	६	७
धा	दिं	ता	तिट	कत	गदि	गन
×			२		३	

सूलताल (मात्रा१०, भाग ५)

१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०
धा	धा	दिं	ता	किट	धा	तिट	कत	गदि	गन
×		०		२		३		०	

धमार (मात्रा १४, भाग ४)

१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१३	१४
क	धि	ट	धि	ट	धा	ऽ	क	ति	ट	ति	ट	ता	ऽ
×					२		०			३			

रूपक (मात्रा ७, भाग ३)

१	२	३	४	५	६	७
ती	ती	ना	धी	ना	धी	ना
×			२		३	

एकताल (मात्रा १२, भाग ६)

१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२
धिं	धिं	धागे	तिरकिट	तू	ना	क	त्ता	धागे	तिरकिट	धिं	न
×		०		२		०		३		४	

दीपचन्दी (मात्रा १४, भाग ४)

१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१३	१४
धा	धीं	ऽ	धा	गे	तीं	ऽ	ता	तीं	ऽ	धा	गे	धीं	ऽ
×			२				०			३			

पंजाबी (मात्रा १६, भाग ४)

१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१३	१४	१५	१६
धा	ऽधी	ऽक	धा	धा	ऽधी	ऽक	धा	ता	ऽती	ऽक	ता	धा	ऽधी	ऽक	धा
×				२				०				३			

मत्तताल (मात्रा १८, भाग ९)

१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१३	१४	१५	१६	१७	१८
धा	ऽ	धि	ड़	न	क	धि	ड़	न	क	ति	ट	क	त	ग	दि	ग	न
×		०		२		३		०		४		५		६		०	

तिलवाड़ा (मात्रा १६, भाग ४)

१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१३	१४	१५	१६
धा	त्रिकिट	धिं	धिं	धा	धा	तिं	तिं	ता	त्रिकिट	धिं	धिं	धा	धा	धिं	धिं
×				२				०				३			

धीमा इकताला (मात्रा १२, भाग ६)

१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२
धीं	धीं	धागे	तिरकिट	तू	ना	क	त्ता	धागे	तिरकिट	धिं	नाना
×		०		२		०		३		४	

झूमरा (मात्रा १४, भाग ४)

१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१३	१४
धि	धिं	नक	धि	धिं	धागे	तिरकिट	तिं	तिं	नक	धि	धिं	धागे	तिरकिट
×			२				०			३			

ब्रह्म ताल (मात्रा २८, भाग १४)

१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१३	१४
धा	धि	धिं	धा	तृक	धिं	धिं	धा	ती	ती	ना	ती	तो	ना
×		०		२		३		०		४		५	

१५	१६	१७	१८	१९	२०	२१	२२	२३	२४	२५	२६	२७	२८
ती	ना	तू	ना	क	त्ता	धी	ना	धागे	नधा	तृक	धि	गदि	गन
६		०		७		८		९		१०		०	

गणेश ताल (मात्रा २१, भाग १०)

१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१३	१४	१५	१६	१७	१८	१९	२०	२१
धा	ता	दिं	ता	कत	तिट	धा	दिं	ता	कत	तिट	ता	धागे	दिं	ता	धागे	ता	तिट	कत	गदि	गन
×				२	३				४	५	६				७	८	९	१०		

विक्रम ताल (मात्रा १२, भाग ४)

१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२
धा	ऽ	धि	त्ता	ऽ	क	ऽ	त्ता	तिट	कत	गदि	गन
×		२			०			३			

ताल गजझंपा (मात्रा १५, भाग ४)

१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१३	१४	१५
धा	धि	नक	तक	धा	धिं	नक	तक	धिं	नक	तक	किट	तक	गदि	गन
×				२				०				३		

शिखर ताल (मात्रा १७, भाग ४)

१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१३	१४	१५	१६	१७
धा	त्रक	धिं	नक	थुं	गा	धिं	नक	धुम	किट	कत	धेत	धा	तिट	कत	गदि	गन
×						०						२		३		

यतिशेखर ताल (मात्रा १५, भाग १०)

१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१३	१४	१५
धा	तत्	धि	न	त्रक	धि	धि	ना	तत्	धागि	नाधा	त्रक	धिना	गदि	गन
×	२		३		४	५	६		७	८	९		१०	

चित्रा ताल (मात्रा १५, भाग ५)

१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१३	१४	१५
धा	ना	धि	धि	ना	तू	ना	क	त्ता	त्रक	धो	ना	धी	धी	ना
×		२			३				४				०	

बसन्त ताल (मात्रा ९, भाग ९)

१	२	३	४	५	६	७	८	९
धा	देत्	देत्	धुं	धुं	तेटे	कत	गदि	गन
×	२	३	४	०	५	०	६	०

विष्णु ताल (मात्रा १७, भाग ५)

१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१३	१४	१५	१६	१७
धिं	ना	धिं	धिं	ना	धिं	त्रक	धो	ना	धिं	धिं	ना	धिं	धी	ना	धी	ना
×		२			३				४				०			

मणि ताल (मात्रा ११, भाग ४)

१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११
धा	धि	ट	कि	ट	धा	कि	ट	त	कि	ट
×			२		३			४		

झम्पा ताल (मात्रा १०, भाग ४)

१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०
धा	ऽ	धा	गे	ति	ट	ति	द्धा	कि	ट
×		२			०		३		

रुद्र ताल (मात्रा ११, भाग ११)

१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११
धी	ना	धी	ना	ता	ती	ना	क	त्ता	धी	ना
×	२	०	३	४	५	०	६	७	८	०

ठेका टप्पा (मात्रा १६, भाग ४)

१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१३	१४	१५	१६
धिं	ता	धिं	धिं	धिं	ता	धिं	ऽ	धा	धे	दिं	ऽ	धिं	ता	धिं	धिं
×				२				०				३			

अद्धा त्रिताल (मात्रा ८, भाग ४)

१	२	३	४	५	६	७	८
धाधिं	ऽना	धाधिं	ऽना	तातिं	ऽना	धाधिं	ऽना
×		२		०		३	

सवारी ताल (मात्रा १५, भाग ७)

१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१३	१४	१५
धी	त्रिकिट	धीना	कत्	धीधी	नाधी	धीना	तीना	तीना	तूकतूना	किड़नग	कत्ता	धीधी	नाधी	धीना
×			२		०		३		०		४		०	

लक्ष्मी ताल (मात्रा १८, भाग १८)

१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१३	१४	१५	१६	१७	१८
धि	तेत्	धेत्	धेत्	दिं	ता	तिट	कत	धा	दिं	ता	धुम	किट	धुम	किट	कत	गदि	गन
×	२	३	०	४	५	६	०	७	८	९	१०	११	१२	१३	१४	१५	०

ताल पश्तो (मात्रा ७, भाग ३)

१	२	३	४	५	६	७
तृक	धिं	ऽ	धा	धा	तिं	ऽ
×			२		३	

ठेका कव्वाली (मात्रा ८, भाग २)

१	२	३	४	५	६	७	८
धा	कत	धा	धिं	ता	कत	ता	धिं
×				२			

ताल शूलफाक्ता (मात्रा १०, भाग ३)

१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०
धि	धिं	धा	त्रिकिट	तू	ना	कत	धी	धी	ना
×				२		३			

दक्षिणी ताल-पद्धति

उत्तरी ताल-पद्धति और दक्षिणी (कर्नाटकी) ताल-पद्धति में विशेष रूप से भिन्नता पाई जाती है। कर्नाटकी ताल-पद्धति में मुख्य सात तालें मानी गई हैं, जिनके नाम इस प्रकार हैं—१. ध्रुवताल, २. मठताल, ३. रूपकताल, ४. झंपताल, ५. त्रिपुट-ताल, ६. अठताल और ७. एकताल।

'पंचजाति-भेद' के अनुसार इन सात तालों की पाँच-पाँच जातियाँ हैं। इस प्रकार इनसे ७×५=३५ तालें उत्पन्न होती हैं।

दक्षिणी पद्धति में तालों को लिखने के लिए छह चिह्न नियत किए गए हैं, जिनकी सहायता से इन तालों को लिखा जाता है। वे ६ चिह्न इस प्रकार हैं:—

चिह्न	नाम	मात्रा
◡	अणुद्रुत अथवा विराम,	मात्रा १
o	द्रुत	मात्रा २
I	लघु	मात्रा ४
S	गुरु	मात्रा ८
३	प्लुत	मात्रा १२
×	काकपद	मात्रा १६

उपर्युक्त छह चिह्नों में 'लघु' नाम का चिह्न विशेष महत्त्वपूर्ण है और इसी एक चिह्न के कारण तालों की विभिन्न जातियाँ पैदा हुई हैं। लघु चिह्न की मात्राएँ यद्यपि ऊपर चार बताई गई हैं, किन्तु 'पंचजाति-भेद' के अनुसार लघु की मात्राएँ परिवर्तित होती रहती हैं और इसी परिवर्तन से पाँच जातियाँ पैदा हुई हैं; यथा:—

१. चतुरश्र जाति, २. त्र्यश्र जाति, ३. खंड जाति, ४. मिश्र जाति, ५. संकीर्ण जाति।

चतुरश्र जाति—इसमें 'लघु' की चार मात्राएँ मानी गई हैं।

त्र्यश्र जाति—इसमें 'लघु' की तीन मात्राएँ मानी गई हैं

खंड जाति—इसमें 'लघु' की पाँच मात्राएँ मानी गई हैं।

मिश्र जाति—इसमें 'लघु' की सात मात्राएँ मानी गई हैं।

संकीर्ण जाति—इसमें 'लघु' की नौ मात्राएँ मानी गई हैं।

कर्नाटकी ताल-पद्धति की जिन सात तालों के नाम ऊपर दिए गए हैं, उनमें केवल अणुद्रुत, द्रुत और लघु, इन्हीं तीन चिह्नों का प्रयोग होता है। शेष तीन चिह्न गुरु, प्लुत और काकपद का प्रयोग इनमें नहीं होता। इन तीन चिह्नों का प्रयोग दक्षिण की उन १०८ तालों में होता है, जो कि उनके नृत्य में प्रयुक्त होती हैं।

ऊपर बताए हुए 'पंचजाति-भेद' के अनुसार सात तालों के ३५ प्रकार कौन-कौन-से उत्पन्न होते हैं, यह आगे की तालिका में देखिए:—

कर्नाटकी ७ तालों के पंचजातिभेदानुसार ३५ प्रकार

ताल	जाति-भेद	ताल-चिह्न	जाति-भेद से मात्रा-विभाग	कुल मात्राएँ
ध्रुव ताल	चतुरश्र	। ४ ० । ४ । ४	४+२+४+४	१४
	त्र्यश्र	। ३ ० । ३ । ३	३+२+३+३	११
	मिश्र	। ७ ० ७ । ७	७+२+७+७	२३
	खंड	। ५ ० । ५ । ५	५+२+५+५	१७
	संकीर्ण	। ९ ० । ९ । ९	९+२+९+९	२९
मठ ताल	चतुरश्र	। ४ ० । ४	४+२+४	१०
	त्र्यश्र	। ३ ० । ३	३+२+३	८
	मिश्र	। ७ ० । ७	७+२+७	१६
	खंड	। ५ ० । ५	५+२+५	१२
	संकीर्ण	। ९ ० । ९	९+२+९	२०
रूपक ताल	चतुरश्र	। ४ ०	४+२	६
	त्र्यश्र	। ३ ०	३+२	५
	मिश्र	। ७ ०	७+२	९
	खंड	। ५ ०	५+२	७
	संकीर्ण	। ९ ०	९+२	११
झंपताल	चतुरश्र	। ४ ◡ ०	४+१+२	७
	त्र्यश्र	। ३ ◡ ०	३+१+२	६
	मिश्र	। ७ ◡ ०	७+१+२	१०
	खंड	। ५ ◡ ०	५+१+२	८
	संकीर्ण	। ९ ◡ ०	९+१+२	१२

ताल	जाति	चिह्न	अक्षर	मात्रा
त्रिपुट ताल	चतुरश्र	। ४ ० ०	४+२+२	८
	त्र्यश्र	। ३ ० ०	३+२+२	७
	मिश्र	। ७ ० ०	७+२+२	११
	खंड	। ५ ० ०	५+२+२	९
	संकीर्ण	। ९ ० ०	९+२+२	१३
झठ ताल	चतुरश्र	। ४ । ४ ० ०	४+४+२+२	१२
	त्र्यश्र	। ३ । ३ ० ०	३+३+२+२	१०
	मिश्र	। ७ । ७ ० ०	७+७+२+२	१८
	खंड	। ५ । ५ ० ०	५+५+२+२	१४
	संकीर्ण	। ९ । ९ ० ०	९+९+२+२	२२
एकताल	चतुरश्र	। ४	४	४
	त्र्यश्र	। ३	३	३
	मिश्र	। ७	७	७
	खंड	। ५	५	५
	संकीर्ण	। ९	९	९

ये तो हुए जाति-भेद के अनुसार सात तालों के पेंतीस प्रकार। अब पंचगति-भेद के अनुसार इनमें से प्रत्येक प्रकार के पाँच-पाँच भेद और होते हैं। इससे ३५×५=१७५ तालों के प्रकार इस पद्धति से उत्पन्न होते हैं। आगामी पृष्ठ में उदाहरण के लिए केवल 'अठ ताल' के पच्चीस प्रकार पंचगति-भेदानुसार कैसे हो सकते हैं, यह दिखाया जाता है।

अठताल के पच्चीस प्रकार

जाति	चिह्न	मात्राएँ	गति-भेद	गति-भेद के प्रकार से कुल मात्राएँ
चतुरश्र	। ४ । ४ ० ०	१२	चतुरश्र	१२×४=४८
			त्र्यश्र	१२×३=३६
			मिश्र	१२×७=८४
			खंड	१२×५=६०
			संकीर्ण	१२×९=१०८
त्र्यश्र	। ३ । ३ ० ०	१०	चतुरश्र	१०×४=४०
			त्र्यश्र	१०×३=३०
			मिश्र	१०×७=७०
			खंड	१०×५=५०
			संकीर्ण	१०×९=९
मिश्र	। ७ । ७ ० ०	१८	चतुरश्र	१८×४=७२
			त्र्यश्र	१८×३=५४
			मिश्र	१८×७=१२६
			खंड	१८×५=९०
			संकीर्ण	१८×९=१६२
खंड	। ५ ५ । ० ०	१४	चतुरश्र	१४×४=५६
			त्र्यश्र	१४×३=४२
			मिश्र	१४×७=९८
			खंड	१४×५=७०
			संकोर्ण	१४×९=१२६

संकीर्ण	।६।६००	२२	चतुरश्र	२२×४=८८
			त्र्यश्र	२२×३=६६
			मिश्र	२२×७=१५४
			खंड	२२×५=११०
			संकीर्ण	२२×६=१९८

ज्ञातव्य : इसी तरह शेष छह तालों से भी पच्चीस-पच्चीस प्रकार पैदा होकर कुल १७५ हो जाएँगे।

ऊपर के नक्शों में चिह्नवाले खाने में ताल-चिह्न लघु के आगे जो अंक लिखे गए हैं, उनका अर्थ यह है कि लघु यहाँ पर इतनी मात्रा का माना गया है; जैसे लघु का चिन्ह '।' यह है, तो जहाँ पर चतुरश्र जाति में लघु दिखाया जाएगा, वहाँ ।४ इस प्रकार लिखेंगे। त्र्यश्र जाति में ।३ इस प्रकार लिखेंगे। मिश्र जाति में लघु को ।७ इस प्रकार लिखेंगे। खंड जाति में लघु को ।५ इस प्रकार लिखेंगे और संकीर्ण जाति में लघु को ।६ इस प्रकार लिखेंगे। लघु के चिह्न के आगे दिए हुए विभिन्न अंकों द्वारा आसानी से यह मालूम हो जाता है कि यहाँ पर लघु की इतनी मात्राएं मानी गई हैं। अन्य चिह्नों के साथ मात्रा लिखने का नियम नहीं है, क्योंकि केवल 'लघु' की ही मात्राएँ बदलती हैं; बाकी चिह्नों की मात्राओं में 'कोई परिवर्तन नहीं होता।

कर्नाटकी ताल-पद्धति की बाबत निम्नलिखित बातें विद्यार्थियों को याद रखनी चाहिए :—

१. कर्नाटक-ताल-पद्धति में लघु की मात्राएँ जाति-भेद के अनुसार बदलती रहती हैं।
२. जिस ताल में जितने चिह्न होंगे, उसमें उतनी ही ताली (थाप) या भरी तालें होंगी।
३. कर्नाटकी पद्धति में 'खाली' नहीं होती।
४. सभी तालें सम से आरम्भ होती हैं।
५. कर्नाटकी पद्धति में मुख्य ७ तालें होती हैं।
६. प्रत्येक ताल की पाँच-पाँच जातियाँ होती हैं, जिनसे ३५ प्रकार उत्पन्न होते हैं।
७. पाँच-पाँच जातियों के पाँच-पाँच भेद होते हैं, जिनसे १७५ प्रकार उत्पन्न हो जाते हैं।

कर्नाटकी पद्धति की ७ तालों को हिन्दुस्तानी पद्धति में लिखने का कायदा

(ये सातों तालें चतुरश्र जाति में दी जा रही हैं।)

ध्रुव ताल, मात्रा १४ (।०।।) चतुरश्र जाति

मात्रा—	१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१३	१४
चिह्न—	×				२		३				४			

मठ ताल, मात्रा १० (।०।) चतुरश्र जाति

१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०
×				२		३			

रूपक ताल, मात्रा ६ (।०) चतुरश्र जाति

(इस ताल को हिन्दुस्तानी पद्धति में ७ मात्राओं की मानते हैं।)

१	२	३	४	५	६
×				२	

झंपा ताल, मात्रा ७ (।◡०) चतुरश्र जाति

१	२	३	४	५	६	७
×				२	३	

त्रिपुट ताल, मात्रा ८ (।००) चतुरश्र जाति

१	२	३	४	५	६	७	८
×				२		३	

अठ ताल, मात्रा १२ (।।००) चतुरश्र जाति

१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२
×				२				३		४	

एकताल, मात्रा ४ (।) चतुरश्र जाति

(हिन्दुस्तानी पद्धति में 'एकताल' १२ मात्राओं की मानी गई है।)

१	२	३	४
×			

पूर्व-पृष्ठांकित ७ तालें चतुरश्र जाति में दी गई हैं। यदि इन्हीं तालों को त्र्यश्र जाति में मानकर लिखें, तो इनका रूप बदल जाएगा; क्योंकि चतुरश्र जाति में लघु को ४ मात्रा-काल का माना गया है और त्र्यश्र जाति में 'लघु' की मात्राएँ ३ मानी जाती हैं। उदाहरणार्थ ध्रुव ताल को अब त्र्यश्र जाति में इस प्रकार लिखेंगे :—

ध्रुव ताल (त्र्यश्र जाति), मात्राएँ ११

१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११
×			२		३			४		

इसी ध्रुव ताल को खंड जाति में लिखना हो, तो निम्नांकित प्रकार से लिखेंगे; क्योंकि खंड जाति में 'लघु' की पाँच मात्राएँ मानी गई हैं :—

ध्रुव ताल (खंड जाति), मात्राएँ १७

१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१३	१४	१५	१६	१७
×					२		३					४				

मिश्र जाति में लघु की मात्राएँ ७ मानी गई हैं, अतः यही ध्रुव ताल यदि मिश्र जाति में लिखी जाएगी, तो इसका रूप यह होगा :—

ध्रुव ताल (मिश्र जाति), मात्राएँ २३

१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१३	१४	१५	१६
×							२		३						

१७	१८	१९	२०	२१	२२	२३
४						

अब इसी ताल को संकीर्ण जाति में लिखें, तो इस ताल की मात्राएँ २९ हो जाएँगी; क्योंकि संकीर्ण जाति में गुरु की मात्राएँ ९ मानी गई हैं :—

ध्रुव ताल (संकीर्ण जाति), मात्राएँ २९

१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१३	१४	१५	१६	१७	१८	१९	२०
×									२		३								

२१	२२	२३	२४	२५	२६	२७	२८	२९
४								

———

वाद्ययन्त्र-परिचय

वाद्यों के प्रकार

भारतीय वाद्यों को ४ श्रेणियों में बाँटा गया है—१. तत वाद्य, २. सुषिर वाद्य, ३. अवनद्ध वाद्य और ४. घन वाद्य।

तत वाद्य या तन्तु-वाद्य—इस श्रेणी के वाद्यों में तारों के द्वारा स्वरों की उत्पत्ति होती है। इनके भी दो प्रकार हैं—१. तत वाद्य, २. वितत वाद्य। तत वाद्यों की श्रेणी में तार के वे साज आते हैं, जिन्हें मिजराब या अन्य किसी वस्तु की टंकोर देकर बजाते हैं; जैसे—वीणा, सितार, सरोद, तानपूरा, इकतारा, दुतारा इत्यादि। दूसरी वितत वाद्यों की श्रेणी में गज की सहायता से बजनेवाले साज आते हैं; जैसे—इसराज, सारंगी, वायलिन इत्यादि।

सुषिर वाद्य—इस श्रेणी में फूँक या हवा से बजनेवाले वाद्य आते हैं; जैसे—बाँसुरी, हारमोनियम, क्लारनेट, शहनाई, बीन एवं शंख इत्यादि।

अवनद्ध वाद्य—इस श्रेणी में चमड़े से मढ़े हुए ताल-वाद्य आते हैं; जैसे—मृदंग, तबला, ढोलक, खंजरी, नगाड़ा, डमरु और ढोल इत्यादि।

घन वाद्य—इस श्रेणी के वाद्यों के में चोट या आघात से स्वर उत्पन्न होते हैं; जैसे—जलतरंग, मँजीरा, झाँझ, करताल, घंटातरंग और पियानो इत्यादि।

सितार

संक्षिप्त इतिहास

तेरहवीं, चौदहवीं शताब्दी (१२९६-१३१६ ई०) में अलाउद्दीन खिलजी के दरबार में हजरत अमीर खुसरो एक प्रसिद्ध कवि और संगीतज्ञ हुए हैं। उन्होंने एक प्राचीन वीणा के आधार पर मध्यमादि वीणा बनाकर उसमें तीन तार चढ़ाए और उसका नाम 'सेहतार' रखा। फारसी में 'सेह' का अर्थ तीन होता है। सम्भवतः इसी आधार पर उन्होंने इस वीणा का नामकरण 'सेहतार' किया। इसमें २ पीतल के तथा १ लोहे का तार था और १४ परदे थे। पीतल के दोनों तार क्रमशः षड्ज और पंचम में मिलाए एवं लोहे का तार मध्यम में मिलाया गया। इसका तूँबा आधा ही होता था और दाएँ हाथ की अँगुली में मिजराब चढ़ाकर इसे चाहे जिस प्रकार की बैठक से बजा सकते थे, अर्थात् इसे बजाने में कोई बन्धन नहीं था।

धीरे-धीरे इसमें तारों की संख्या बढ़ती रही। कहा जाता है कि १७१९ ई० में मुगल बादशाह मुहम्मद शाह के समय में इसमें ३ तार बढ़े। इस प्रकार छह तार का होकर कुछ समय चलता रहा। बाद में इसमें १ तार और बढ़ाकर ७ तार हो गए।

अमीर खुसरो ने सितार का आविष्कार किया और तानसेन के पुत्र सुरतसेन के वंशज अमृत सेन और निहाल सेन ने इसके रूप में संशोधन तथा परिवर्तन किया, ऐसी

किंवदन्ती है। जयपुर के इस घराने का अन्तिम तन्तकार अमीर खाँ था, जिसके शिष्य-समुदाय में से उस्ताद इमदाद खाँ ने अधिक प्रसिद्धि पाई। इन्हीं के पुत्र इनायत खां सितार के बाज में बेजोड़ कलाकार माने जाते थे। अब स्व० इनायत खाँ के पुत्र विलायत खाँ वर्तमान समय में इस घराने के प्रतिनिधि माने जाते हैं। इनका घराना 'सेनी घराने' के नाम से प्रसिद्ध है।

सितार के सात तार

पहला तार—लोहे (स्टील) का होता है। इसे 'बाज का तार' या 'बोल-तार' कहते हैं। यह तार मन्द्र-सप्तक के 'म' में मिलाया जाता है।

दूसरा और तीसरा तार—ये दोनों 'जोड़ी के तार' कहलाते हैं। इन्हें मन्द्र-सप्तक के षड्ज यानी 'स़' में मिलाते हैं। ये दोनों ही तार पीतल के होते हैं।

चौथा तार—लोहे (स्टील) का होता है। इसे 'पंचम का तार' कहते हैं। यह मन्द्र-सप्तक के पंचम यानी 'प़' में मिलाया जाता है।

पाँचवाँ तार—पीतल का होता है। यह तार जोड़ी के तारों से लगभग दुगुना मोटा होता है। इसे अतिमन्द्र-सप्तक के पंचम में मिलाते हैं। यह 'लर्ज का तार' भी कहलाता है।

छठा तार—स्टील का होता है। यह मोटाई में चौथे तार से कुछ कम होता है। इसे मध्य-सप्तक के षड्ज में मिलाते हैं। इसे 'चिकारी का तार' कहते हैं।

सातवाँ तार—सातवाँ तार भी स्टील का होता है। यह तार सितार के अन्य सब तारों से पतला होता है और इसे तार-षड्ज अर्थात् 'सां' अथवा मध्य-सप्तक के 'प' में मिलाते हैं। इसे 'चिकारी का तार' या 'पपैया का तार' कहते हैं।

अंग-वर्णन

तारों के अतिरिक्त सितार के जो भाग होते हैं, उनका विवरण इस प्रकार है:—

तूँबा—सितार का वह भाग है, जो डाँड के नीचे रहता है। यह अन्दर से बिलकुल पोला और बहुत हलका होता है। तारों के द्वारा जो झन्कार पैदा होती है, वह इस तूँबे के कारण गूँजती रहती है।

डाँड—लकड़ी की लम्बी व पोली डंडी, जिसके ऊपर एक तख्ती ढकी रहती है, डाँड कहलाती है। इसी पर परदे बँधे रहते हैं।

गुल्ल—जहाँ पर डाँड और तूँबा जुड़े होते हैं, उसे कहते हैं।

लँगोट—तूँबे के नीचे के उस भाग को कहते हैं, जहाँ से तार शुरू होकर खूँटियों तक जाते हैं।

घुड़च—घुर्च या घोड़ा (Bridge) भी इसे ही कहते हैं। यह हाथी-दाँत की या हड्डी की एक छोटी चौकी के आकार की पट्टी होती है, जो तबली के ऊपर रहती है। इसी पर होकर तार खूँटियों की ओर जाते हैं।

जवारी—घुर्च की एक-सी सतह को जवारी कहते हैं। इसके ऊपर तार होते हैं।

तबली—तूँबे के ऊपर का ढक्कन, जिस पर ब्रिज या घुड़च जमी रहती है, उसे तबली कहते हैं।

ारगहन—सितार के अग्रभाग की खूँटियों के नीचे हाथी-दाँत या हड्डी की एक आड़ी पट्टी होती है। इसमें कई छेद होते हैं, जिनमें होकर तार खूँटियों तक जाते हैं। इसे 'तारदान' भी कहते हैं।

परदे—डाँड में ताँत से बँधे हुए पीतल या लोहे की सलाइयों के टुकड़े, जो कुछ मुड़े होते हैं। इन्हें न्दरी' या 'सारिका' भी कहते हैं।

तरबें—सितार के परदों की संख्या के अनुसार उसमें तरबों के तार भी लगाए जाते हैं। ये भिन्न-भिन्न स्वरों में मिले हुए होते हैं तथा सितार के ७ तारों से अतिरिक्त होते हैं। जब सितार बजता है, तो उसकी झंकार से तरबों के तारों में स्वतः झंकार उत्पन्न होती है।

खूँटियाँ—लकड़ी की बनी हुई छोटी-छोटी कुंजियाँ, जिनमें तार लिपटे रहते हैं, खूँटियाँ कहलाती हैं। इनको घुमाने से तार चढ़ते-उतरते हैं।

मनका—बाज के तार में एक छोटा-सा दाना पिरोया हुआ रहता है, उसे मनका कहते हैं। इससे बाज के तार की ध्वनि ठीक रखने में सहायता मिलती है।

मिजराब—यह पक्के लोहे के तार की अँगूठीनुमा होती है। दाहिने हाथ की तर्जनी अँगुली में इसको पहनकर सितार के तारों पर आघात करते हैं, तभी सितार बजता है।

सितार मिलाना

सर्वप्रथम किसी स्वर को सा मानकर जोड़ी के दोनों तार मिलाइए। यह मन्द्र-सप्तक के सा की आवाज होगी। ये दोनों तार बिलकुल एक स्वर में इतने मिलने चाहिए कि सुनने पर यह मालूम हो कि एक ही तार बोल रहा है।

इसके बाद बाज के तार को अर्थात् पहले तार को मन्द्र-सप्तक के मध्यम (म़) में मिलाइए।

चौथे तार को मन्द्र-सप्तक के पंचम (प़) में मिलाइए। यह जानने के लिए कि प़ का तार ठीक मिला या नहीं, जोड़ी के तार को सा के परदे पर दबाकर, मिजराब से छेड़कर देखिए कि चौथे तार की आवाज इससे मिल जाती है या नहीं। यदि आवाज एक-सी है, तो पंचम का तार ठीक मिल गया।

पाँचवाँ तार, जो सबसे मोटा पीतल का तार है, उसे अतिमन्द्र-सप्तक के पंचम में मिलाइए। ठीक आवाज पहचानने के लिए चौथे तार की आवाज से सहायता ली जा सकती है, क्योंकि चौथे तार की आवाज से इसकी आवाज एक सप्तक नीची होगी।

छठा तार मध्य-सप्तक के सा में मिलाइए। यह चिकारी का तार है। इस तार की आवाज ठीक मिल गई या नहीं, यह जानने के लिए बाज के तार को 'सा' के परदे पर दबाकर मिजराब से छेड़िए। यदि दोनों की आवाज मिल जाए, तो समझिए, छठा तार मध्य-सप्तक के षड्ज में ठीक तरह से मिल गया।

सातवें तार को तार-सप्तक के सा में मिलाइए। इसे पहचानने के लिए भी ऐसा करिए कि बाज के तार को तार-सप्तक (सां) के परदे पर दबाकर मिजराब छेड़िए। यदि दोनों की आवाज मिल जाए, तो सातवाँ तार भी ठीक मिल गया।

चल ठाठ और अचल ठाठ

साधारणतः सितार दो प्रकार का होता है—१. चल ठाठ वाला २. अचल ठाठ वाला।

१. चल ठाठ वाले सितार में १६ परदे इस प्रकार होते हैं :—

मं॒ प॒ ध॒ नि॒ नि॒ सा रे ग म मं प ध नि॒ नि सां रें गं

चल ठाठ वाले सितार के परदे आवश्यकतानुसार खिसकाकर ऊँचे-नीचे कर लिए जाते हैं। इससे ठाठ बदल जाता है।

२. अचल ठाठ वाले सितार में प्रायः १९ परदे इस प्रकार होते हैं :—

मं॒ प॒ ध॒ ध॒ नि॒ नि॒ सा रे ग॒ ग म मं प ध नि॒ नि सां रें गं

कोई-कोई इसमें २२ या २४ परदे भी मानते हैं, किन्तु १९ परदे वाला अचल ठाठ का सितार ही ठीक रहता है, क्योंकि इसके बजाने में सुविधा रहती है। फिर भी भिन्न-भिन्न कलाकार परदों की संख्या में अपनी रुचि के अनुसार हेर-फेर कर लेते हैं।

सितार के बोल

सितार के तारों पर मिजराब का प्रहार करने से जो ध्वनि निकलती है, उसे बोल कहते हैं। मुख्य बोल दो हैं :—

१. दा—मध्यम के तार पर बाहर की ओर से प्रहार करके मिजराबवाली अँगुली जब अपनी तरफ लाई जाती है, तो 'दा' बोल निकलता है। इसे 'आकर्ष' प्रहार कहते हैं।

२. रा—दा को उल्टा बजाने से 'रा' निकलता है। इसे 'अपकर्ष' प्रहार कहते हैं। इन्हीं दोनों बोलों को जब शीघ्रतापूर्वक एक मात्रा में ही बजाया जाता है, तो 'दिर' बोल बन जाता है तथा इन्हीं बोलों के हेर-फेर से द्रा, दाड़, द्रार्दा इत्यादि बोल बनते हैं।

गत—किसी राग के स्वरों में सितार के बोलों की तालबद्ध रचना को गत कहते हैं। गतों के मुख्य दो प्रकार हैं :—

मसीतखानी गत—इस गत के बोल विलम्बित लय में बजाए जाते हैं। मीड़ आदि का प्रयोग करते हुए बोलों में गम्भीरता दिखाई जाती है।

रजाखानी गत—इस गत के बोल द्रुत लय के होते हैं और अनेक प्रकार की विभिन्न चालें इसमें प्रदर्शित की जाती हैं।

जोड़-आलाप—सितार में गत बजाने से पहले जो आलाप बजाया जाता है, उसे ही जोड़ भी कहते हैं।

जमजमा—सितार में जब दो स्वरों को (एक के बाद दूसरे को) जल्दी-जल्दी इस प्रकार बजाया जाता है कि पहले स्वर पर तो मिजराब पड़े और दूसरे को बिना मिजराब के केवल अँगुली के आधार से बजाया जाए, तो उसे 'जमजमा' कहते हैं।

जैसे—रेग रेग गम गम
राऽ दाऽ दाऽ दाऽ

झाला—जब बाज के तार पर दा और चिकारी पर रा बजाया जाए तो चिकारी तथा बाज के तार पर प्रहार करते हुए दा रा रा रा, दा रा रा रा, इस प्रकार बजाने को झाला कहते हैं। झाले की सहायता से किसी स्वर को लम्बा भी किया जा सकता है। उलटा झाला इस प्रकार बजेगा—दा रा रा रा, दा दा रा रा अथवा रा दा रा रा, रा रा रा दा इत्यादि।

कृन्तन—कृन्तन का प्रयोग सितार में ऊँचे स्वर से नीचे स्वर पर आते समय इस प्रकार होता है कि बाएँ हाथ की अँगुलियों से झटके के साथ तार को दबाकर एकदम छोड़ने से दो या अधिक स्वर शीघ्रतापूर्वक बजाए जाते हैं, किन्तु एक स्वर से दूसरे स्वर का सम्बन्ध बना रहता है; इसी कृत्य को कृन्तन कहते हैं।

मीड़, सूत, आन्दोलन, गमक इत्यादि का वर्णन इस पुस्तक में पृष्ठ १६१ पर किया जा चुका है, अतः उसे दुहराने की यहाँ आवश्यकता प्रतीत नहीं होती।

तबला

तबला की प्रारम्भिक उत्पत्ति के विषय में विद्वानों के विभिन्न मत पाए जाते हैं, किन्तु अधिकांश विद्वानों का ऐसा मत है कि अलाउद्दीन खिलजी के समय में अमीर खुसरो नामक संगीतज्ञ ने पखावज को बीच में से दो भागों में काटकर तबला का आविष्कार किया। कहा जाता है 'तब्ल' नामक फारसी शब्द से तबला की उत्पत्ति हुई है। 'तब्ल' का अर्थ है नक्कारा।

कुछ विद्वानों के मत से तबला के आविष्कर्त्ता दिल्ली के उ० सिद्धार खाँ ढाढ़ी थे, जिनके शिष्य रोशन खाँ, कल्लू खाँ और तुल्लन खाँ हुए।

तबला के घराने

तबला के मुख्य चार घराने माने जाते हैं—१. दिल्ली-घराना, २. पंजाब-घराना, ३. बनारस-घराना और ४. लखनऊ या पूरब-घराना। इन घरानों के अन्तर्गत आज-कल निम्नांकित दो बाज प्रसिद्ध हैं:—

दिल्ली-बाज—इसमें चाँटी का काम विशेष महत्त्व रखता है। चाँटी के काम में तर्जनी और मध्यमा अँगुलियों का विशेष काम रहता है। इससे सोलो-वादन में विशेष सुविधा रहती है एवं पेशकारों और कायदों का भली प्रकार निर्वाह होता है। दिल्ली-घराने के मुख्य प्रतिनिधि उस्ताद अहमदजान थिरकवा हैं।

बनारस-बाज—इस बाज में प्राय: खुले बोलों के काम अधिक महत्त्व रखते हैं, जिनके निकालने में हथेली का प्रयोग अधिक होता है। इस घराने के मुख्य कलाकार श्री कंठे महाराज हैं। श्री कंठे महाराज के शिष्यों में श्री नन्नूजी, श्री बिक्कूजी, श्री किशन महाराज आदि के नाम भी उल्लेखनीय हैं।

पंजाब-बाज—इस घराने के प्रवर्तकों ने पखावज के खुले बोलों को बन्द करके एक नई शैली अपनाई और नई-नई गतों को जन्म दिया। वर्तमान प्रतिनिधि उस्ताद अल्लारखा इसी घराने की देन हैं।

लखनऊ-बाज—इस घराने की बन्दिशें और चक्रदार परनें प्रसिद्ध हैं। दिल्ली और बनारस के बीच की इस शैली ने उ० आबिदहुसैन, उ० मुन्ने खाँ, वाजिदहुसैन तथा पं० बीरू मिश्र के द्वारा काफी ख्याति अर्जित की।

श्री भातखंडेजी ने प्राचीन उत्तम तबलियों के नाम इस प्रकार बताए हैं:—

१. बख्शू धाड़ी—प्रसिद्ध तबला-वादक।

२. मम्मू—गत बजाने में कुशल।

३. सलारी—गत और परन बहुत सुन्दर बजानेवाला।

४. मक्खू—प्राचीन ढंग के बाज का उत्तम तबलिया।

५. नज्जू—बख्शू का शिष्य (लखनऊ)। इसका हाथ बहुत तैयार था।

वर्तमान समय में तबला के निम्नांकित कलाकार विशेष प्रसिद्ध हैं:—

१. अहमदजान थिरकवा, २. अल्लारखा, ३. कंठे महाराज, ४. किशन महाराज, ५. सामताप्रसाद 'गुदई महाराज', ६. करामत खाँ, ७. निखिल घोष और ८. हबीबुद्दीन खाँ।

दाहिना और बायाँ

दाहिना तबला लकड़ी का होता है और बायाँ मिट्टी या किसी धातु का। इन दोनों के मुँह पर चमड़ा मढ़ा रहता है, जिसे पुड़ी कहते हैं। पुड़ी के किनारे के चारों ओर चमड़े की गोट लगी रहती है, जिसे चाँटी कहते हैं। दाहिने तबले की पुड़ी के बीच और बाएँ (डग्गे) की पुड़ी के बीच से कुछ हटकर स्याही लगी रहती है। दाएँ और बाएँ, दोनों पुड़ियाँ चमड़े की डोरी से कसी रहती हैं। इन्हें 'बद्धी' या 'दुआल' भी कहते हैं। चाँटी और स्याही के बीच का स्थान 'लव' कहलाता है। इसे मैदान भी कहते हैं। पुड़ी के चारों ओर गोट के किनारे पर चमड़े के फीते का बुना हुआ गजरा लगा रहता है। 'दुआलों' में लकड़ी के गट्टे लगे रहते

हैं, जिन्हें नीचे खिसकाने पर तबले का स्वर ऊँचा होता है और गट्टे ऊँचे करने पर स्वर नीचा होता है। स्वर को अधिक ऊँचा-नीचा करना होता है, तभी गट्टे ठोके जाते हैं। मामूली स्वर के उतार-चढ़ाव के लिए चाँटी के किनारेवाली पगड़ी या गजरे पर हल्का आघात करने से ही काम चल जाता है।

तबला मिलाना

तबले का दायाँ जिस स्वर में मिलाना हो, उससे एक सप्तक नीचे उसी स्वर में बायाँ मिलाना चाहिए। वैसे, साधारणत: बाएँ को मिलाने की आवश्यकता नहीं पड़ती, फिर भी उपर्युक्त नियम को ध्यान में रखते हुए बायाँ भी ठीक रखने से अच्छा ही रहता है।

तबले को प्राय: षड्ज या पंचम में मिलाते हैं, किन्तु जिन रागों में पंचम स्वर वर्जित होता है, उनमें मध्यम स्वर में तबला मिलाते हैं।

सर्वप्रथम किसी एक घर को मिलाकर, दाहिनी ओर के उससे अगले घर को मिलाना चाहिए। इस प्रकार आगे के सब घर आसानी से मिल जाते हैं। मिलाने का एक प्रकार यह भी है कि पहले एक घर को मिलाने के बाद, फिर उसके सामने-वाला ९-वाँ घर मिलाते हैं, फिर ५-वाँ घर और फिर १३-वाँ घर मिलाते हैं। इन घरों का अर्थ समझने के लिए तबले की पुड़ी की गोलाई का विभाजन १६ भागों में कर लीजिए और जिसे सबसे पहले आप मिला रहे हैं, उसे पहला भाग समझिए, यही पहला घर है।

तबला मिलाने से पहले गायक या वादक के स्वर को जान लेना आवश्यक है। यदि उसके स्वर के हिसाब से तबला अधिक चढ़ा या उतरा हुआ है, तब तो गट्टों की ठोक-पीट करनी चाहिए, अन्यथा थोड़े-से अन्तर के लिए, जैसा कि हम ऊपर बता चुके हैं, चाँटी के पासवाले गजरे पर आघात करके ही मिला लेना चाहिए। गजरे को ऊपर से ठोकने पर तबला चढ़ता है और नीचे से उलटी चोट मारने पर तबले का स्वर उतरता है।

तबला के दस वर्ण

धा धिन तिट तिन ना क घी, ता किन कत्त विचार।
तबला के दस वर्ण हैं, इनको लेउ सुधार ॥

इस प्रकार तबला के १० बोल बताए गए हैं। इन बोलों को तीन भागों में बाँटा गया है—दाहिने हाथ के बोल, बाएँ हाथ के बोल और दोनों हाथों के सम्मिलित बोल।

१. दाहिने हाथ के बोल—ना, ता, तिट, किट, दिन या तुन, तिन इत्यादि।
२. बाएँ हाथ के बोल—घी या ग, क, कत्त, किन इत्यादि।

३. दोनों हाथों के सम्मिलित बोल—धिन्न या धिन, धा, धिन्ना, दिन्नक, गिद्दी, किड़नग, किटतक, त्रक, क्ड़ानतान, तकिट इत्यादि।

यद्यपि इन तीन प्रकार के बोलों में बहुत-सें ऐसे बोल आ गए हैं, जो उपर्युक्त दस वर्णों में बताए हुए बोलों से भिन्न हैं; किन्तु मूल रूप से बोल दस ही हैं। उनमें से अक्षरों को मिला-जुलाकर अधिक बोलों की उत्पत्ति हुई है।

मृदंग (पखावज)

नटराज शंकर का डमरु सबसे प्राचीन घन-वाद्य है, उसी के आधार पर मृदंग की उत्पत्ति हुई। मृदंग की प्राचीनता का प्रमाण ऋग्वेद (५।३३।६) से मिलता है, जिसमें वीणा, मृदंग, वंशी और डमरु का वर्णन आया है। पुरातन काल में मृदंग को 'पुष्कर' भी कहा जाता था, ऐसा भरत-मत के ग्रन्थों में वर्णन मिलता है। पुष्कर वाद्य देवताओं को अति प्रिय था। इसकी ताल के साथ-साथ उनका नृत्य हुआ करता था, इसका प्रमाण अनेक प्राचीन मूर्तियों तथा चित्रों द्वारा मिलता है।

प्राचीन पुष्कर वाद्य कई प्रकार के होते थे; जैसे—हरीतकी, जवाकृति, गोपुच्छाकृति आदि। हरड़ के आकार-जैसा पुष्कर होता था, अत: उसे हरीत की कहते थे। जव के आकार से मिलता-जुलता पुष्कर जवाकृति कहलाता था और गो की पूँछ के निचले गुच्छे से जिसका आकार समता रखता था, उसे गोपुच्छाकृति नाम दिया गया।

पखावज, मुरज और मर्दल, ये नाम भी मृदंग के ही हैं। इस प्रकार के विभिन्न नाम और उनकी आकृतियों का वर्णन ग्रन्थों में मिलता है। मृदंग का विशेष प्रचार दक्षिण-भारत में रहा। कुछ समय बाद उत्तर-भारत के संगीतज्ञों ने मृदंग से मिलता-जुलता प्रकार बनाकर इसका नाम पखावज रख लिया। पखावज पर अनेक कठिन-कठिन तालों का प्रयोग हुआ करता था। ध्रुवपद, धमार, ब्रह्म, रुद्र, विष्णु, लक्ष्मी, सवारी इत्यादि तालें इस पर बजाई जाती थीं। किन्तु जबसे तबला का आविष्कार हुआ, मृदंग का प्रचार बहुत कम हो गया। अब तो मृदंग के दर्शन मन्दिरों में, कीर्तन-मण्डलियों में यदा-कदा ही होते हैं; फिर भी कुछ गुणीजन इसको महत्त्व देते हैं और इसका आदर भी करते हैं।

प्रसिद्ध पखावजियों में ला० भवानीप्रसादसिंह पखावजी को भातखंडेजी ने अप्रतिम पखावजी कहकर सम्बोधित किया है। प्रसिद्ध पखावजी कुदऊसिंह इन्हीं के शिष्य थे। औंध के नवाब द्वारा उन्हें 'कुँवरदास' की पदवी प्राप्त हुई थी। कहा जाता है कि एक बार वाजिदअली शाह की एक महफिल में कुदऊसिंह व जोधसिंह पखावजियों को राजा ने १०,०००) रुपए की थैली, इनकी कला पर प्रसन्न होकर पुरस्कार में दी थी।

इनके पश्चात् ताज खाँ (डेरेदार), भवानीसिंह, खलीफा नासिर खाँ इत्यादि पखावजी प्रसिद्ध हुए।

पखावज की बनावट

दायाँ तबला और बायाँ डग्गा, दोनों के निचले भाग मिलाकर एक जगह ढोलक की तरह रख दिए जाएँ, तो पखावज का ही रूप बन जाता है। तबला और पखावज में एक भेद तो यह है कि पखावज में दायाँ और बायाँ अलग-अलग न होकर दोनों का आकाश (पोल) एक ही है। यही कारण है कि तबले की अपेक्षा पखावज में गूँज अधिक पाई जाती है, क्योंकि एक तरफ थाप देने से दूसरी ओर गूँज स्वयं उत्पन्न होती है। दूसरा भेद तबला और पखावज में यह है कि तबला के बोल बजाने में थाप का प्रयोग कम होता है और अँगुलियों का काम अधिक होता है, किन्तु पखावज में थाप का काम अधिक महत्त्व रखता है और अँगुलियों का काम कम होता है। पखावज में बाईं ओर गीला आटा लगाया जाता है। जब स्वर नीचा करना होता है, तो आटा कुछ आधिक लगाते हैं; ऊँचा स्वर करने के लिए आटा कम कर देते हैं।

तबला और पखावज मिलाने का ढंग लगभग एक-सा ही है, अतः उसे यहाँ दुहराने की आवश्यकता प्रतीत नहीं होती।

पखावज के बोल

'संगीत-रत्नाकर' ग्रन्थ में मृदंग के १६ वर्ण माने गए हैं, जिनका प्रमाण निम्नलिखित श्लोक से मिलता है:—

ङवर्जितः कवर्गश्च टतवर्गौ रहावपि ।
इति षोडशवर्णाः स्युरुभयोः पाटसंज्ञकाः ॥

अर्थात्—क-ख-ग-घ-ट-ठ-ड-ढ-त-थ-द-ध-न-म-र-ल। किन्तु आधुनिक कलाकारों द्वारा मृदंग के अक्षर-बोल दूसरे ही निश्चित किए गए हैं, जिन्हें ३ भागों में बाँटा जाता है :—

खुले बोल

जिन अक्षरों को बजाने पर सुरीली आँस निकलती है, वे खुले बोल कहलाते हैं।

बन्द बोल

जिनको बजाने के बाद सुरीली ध्वनि न निकलकर दबी हुई आवाज निकलती है, वे बन्द बोल कहे जाते हैं।

थाप

जब स्याही के ऊपरवाले आधे भाग पर सब अँगुलियाँ मिलाकर पंजा मारा जाए और शीघ्र ही कनिष्ठिका अँगुली की ओर वाला हथेली का भाग स्याही के किनारे पर आ जाए, तो इस कृत्य को थाप या थप्पी कहते हैं।

प्राचीन ग्रन्थों में वर्णित मृदंग के बोलों का उल्लेख ऊपर किया जा चुका है, किन्तु आधुनिक मृदंग-वादक ये बोल मानते हैं (यद्यपि इनमें विभिन्न मत हैं, किन्तु ये ही अधिक उपयोगी मालूम होते हैं) :—

मुख्य बोल—ता-त-दी-थुं-ना-धा-ड़-द्धे-दी-ग-खिर-झें-म ।
आश्रित बोल—रां-क-ग-ए-धु-धी-लां-थेई-ड़ां-की-टो-थरं ।

तानपूरा

गायकों के लिए तनापूरा (तम्बूरा) एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण तार-वाद्य है। इसमें किसी गाने की सरगम नहीं निकलती, केवल स्वर देने के लिए ही इसका प्रयोग किया जाता है। गायक अपने गले के धर्मानुसार इसमें अपना स्वर कायम कर लेते हैं और फिर इसकी झंकार के सहारे उनका गायन चलता रहता है।

अंग-वर्णन

तूँबा

नीचे गोल और ऊपर कुछ चपटा होता है। इसके अन्दर पोल होती है, जिसके कारण स्वर गूँजते हैं।

तबली

तूँबे के ऊपर का भाग, जिसपर ब्रिज लगा रहता है।

ब्रिज

घुर्च या घोड़ी भी इसी को कहते हैं। इसके ऊपर तानपूरे के चारों तार स्थिर रहते हैं।

डाँड

तूँबे में जुड़ी लकड़ी की पोली डंडी को 'डाँड' कहते हैं। इसमें खूँटियाँ लगी रहती हैं तथा तार इसके ऊपर खिचे रहते हैं।

लँगोट

तूँबे की पेंदी में लगी हुई कील को 'लँगोट' कहते हैं। इससे तानपूरा के चारों तार आरम्भ होकर खूँटियों तक जाते हैं।

अटी

खूँटियों की ओर डाँड पर हड्डी की दो पट्टियाँ लगी होती हैं, जिनमें से एक के ऊपर होकर तार जाते हैं; वही 'अटी' कहलाती है।

तारगहन

दूसरी पट्टी जो अटी के बराबर होती है, उसमें चार सूराख होते हैं; जिनमें होकर चारों तार खूँटियों तक जाते हैं। उसे 'तारगहन' कहते हैं।

गुलू

जिस स्थान पर तूँबा और डाँड जुड़े रहते हैं, उसे गुल या गुलू कहा जाता है।

खूँटियाँ

अटी व तारगहन के आगे लकड़ी की चार कुंजियाँ लगी होती हैं, जिनमें तानपूरे के चारों तार बँधे रहते हैं। इन्हें खूँटियाँ कहते हैं।

मनका

ब्रिज और लँगोट के बीच में तार जिन मोतियों में पिरोए होते हैं, उन्हें मनका कहते हैं। इनकी सहायता से तारों में आवश्यकतानुसार थोड़ा-सा उतार-चढ़ाव करके स्वर मिलाए जाते हैं।

सूत

ब्रिज और तारों के बीच में धागे का टुकड़ा दबाया जाता है। इसे उचित स्थान पर लगाने से तानपूरे की झंकार खुली हुई और सुन्दर निकलती है। वास्तव में ये धागे ब्रिज की सतह को ठीक करने के लिए होते हैं, जिसके लिए गायक बहुधा ऐसा कहते हैं कि तानपूरे की जवारी खुली है। यहाँ पर जवारी का अर्थ ब्रिज की सतह से ही है।

तार मिलाना

तानपूरे में चार तार होते हैं। इनमें से पहला तार मन्द्र-सप्तक के पंचम (प़) में, बीच के दोनों तार (जोड़ी के तार) मध्य-षड्ज (स) में और चौथा तार मन्द्र-सप्तक के षड्ज (स़) में मिलाया जाता है। इस प्रकार तानपूरे के चारों तार प़ स स स़, इन स्वरों में मिलाए जाते हैं। जिन रागों में पंचम वर्जित होता है (जैसे ललित), उनमें पंचमवाला तार मध्यम में मिलाते हैं।

तानपूरे के प़ स स, ये तीनों तार पक्के लोहे (स्टील) के होते हैं और चौथा तार (स़) पीतल का होता है। किसी-किसी तानपूरे में पहला तार भी पीतल का होता है, जिसे मर्दानी या भारी आवाज के लिए लगाते हैं; किन्तु जनानी या ऊँचे स्वर की आवाज के लिए लोहे का तार ही ठीक रहता है।

तानपूरा छेड़ना

तानपूरा बजाने को 'तानपूरा छेड़ना' कहा जाता है। पहले तार को सीधे हाथ की मध्यमा अँगुली से और बाकी तीन तारों को तर्जनी अँगुली से छेड़ा जाता है। चारों तार एक साथ नहीं छेड़े जाते, बल्कि बारी-बारी से एक-एक तार छेड़ा जाता है।

तानपूरे की बैठक

विभिन्न गायकों के अलग-अलग ढंग होते हैं। कोई एक घुटना नीचा और एक घुटना कुछ ऊँचा करके बैठकर तानपूरे को छेड़ते हैं। कोई तानपूरे को जमीन पर लिटाकर छेड़ते हैं। अनेक बड़े-बड़े गायक ऐसे हैं, जो स्वयं गाते हैं और तानपूरा उनका शागिर्द या अन्य कोई व्यक्ति छेड़ता रहता है। इससे उन्हें गाते समय अपने भाव व्यक्त करने में सहायता मिलती है।

वायलिन (बेला)

वायलिन (Violin) या बेला एक विदेशी वाद्य है। गज से बजनेवाले समस्त वाद्यों में आजकल इसे प्रतिष्ठा की दृष्टि से देखा जाता है। इस यन्त्र की उत्पत्ति और आविष्कार के बारे में विभिन्न मत पाए जाते हैं।

जो लोग इसे विदेशी वाद्य मानते हैं, उनके मतानुसार इसका आविष्कार यूरोप में १६-वीं शताब्दी के मध्य हुआ और तभी से यह प्रचलित है।

एक मत के अनुसार 'बेला' को मूल-रूप में भारतीय यन्त्र कहा जाता है। इस मत के अनुयायियों का कहना है कि लंकापति रावण ने एक तारवाला एक वाद्य-यन्त्र ईजाद किया। उसे गज से ही बजाया जाता था और उसका नाम 'रावणास्त्रम्' रखा गया। इसके पश्चात् ११-वीं शताब्दी के अन्त में भारत होकर परशिया, अरेबिया तथा स्पेन होता हुआ यह यन्त्र यूरोप पहुँचा। यहाँ पर इसमें परिवर्तन करके वर्तमान वायलिन के रूप में इसका विकास किया गया।

एक पाश्चात्य विद्वान् के मतानुसार ४०० वर्ष पहले यूरोप में (Voil) वाइल नामक एक वाद्य-यन्त्र का आविष्कार हुआ, जिसका प्रचार सोलहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध तक रहा। बाद में इसी वाइल यन्त्र के ढंग पर वायलिन बनाया गया। एक और मतानुसार १५६३ ई० में वेनिस नगर के एक ग्रामीण 'लीनारोनी' ने 'टेनर वायलिन' का आविष्कार किया था। उसी के आधार पर इटली के दो कलाकारों ने इसमें कुछ और विशेषताएँ सम्मिलित करके इसे नवीन रूप दिया। कोई-कोई इसे जरमनी का आविष्कार भी बताते हैं। इस प्रकार बेला के सम्बन्ध में अनेक धारणाएँ पाई जाती हैं। कुछ भी सही, यह तो मानना ही पड़ेगा कि अपने आधुनिक रूप में यह पूर्णरूपेण एक विदेशी वाद्य है। भारत में इसका प्रचार दिनों-दिन बढ़ रहा है। अच्छे बेला-वादक भी अब कई हो गए हैं।

बेला के विभिन्न भाग

बेला के मुख्य ६ भाग होते हैं:—

बॉडी (Body)

इसे बेला का शरीर समझिए। अन्दर से पोला होने के कारण इसमें आवाज गूँजती है। इसे बेली भी कहते हैं।

फिंगर-बोर्ड (Finger Board)

इस पर अँगुलियों की सहायता से स्वर निकाले ज ते हैं।

टेल-पीस (Tail-Piece)

वह भाग है, जिसमें चार सूराख होते हैं। इन चारों सूराखों में होकर चार तार खूँटियों तक जाते हैं।

एण्ड-पिन (End Pin)

इसमें टेलपीस ताँत के द्वारा फँसा रहता है।

ब्रिज (Bridge)

इसके ऊपर होकर तार खूँटियों की ओर जाते हैं।

साउण्ड-पोस्ट (Sound Post)

यह बेला के अन्दर, ब्रिज के ठीक नीचे लगा रहता है।

गज (Bow) और उसके भाग

बेला जिस छड़ी से बजाया जाता है, उसे 'बो' कहते हैं। इसके पाँच भाग होते हैं :—

१. गज की छड़ी (Stick); २. बाल (Hair), जोकि इस छड़ी में कसे रहते हैं; ३. स्क्रू (Screw), एक प्रकार का पेच, जिसे उल्टा या सीधा कसने से 'बो' (गज) के बाल तनते या ढीले होते हैं। ४. नट (Nut) इसमें बाल फँसे रहते हैं और जब पेच घुमाया जाता है, तो यह सरकने लगता है। ५. हैड (Head) यह 'बो' का अन्तिम सिरा है।

रेजन (Resin)

यह एक प्रकार का बिरोजा होता है। इस पर 'बो' (गज) के बाल घिसकर बेला बजाते हैं। इससे आवाज स्पष्ट और सुन्दर निकलती है।

बेला के चार तार और उन्हें मिलाने की पद्धति

बेला में कुल चार तार होते हैं, जो क्रमशः G D A E कहलाते हैं। इनको मिलाने के ढंग कई प्रकार के हैं :—

प्रथम प्रकार

प़ सा प सां, इस प्रकार मिलते हैं, यानी मन्द्र-सप्तक का पंचम, मध्य-सप्तक का षड्ज, मध्य-सप्तक का पंचम और तार-सप्तक का षड्ज।

दूसरा प्रकार

सा़ प़ सा प, इस तरह मिलाते हैं; यानी पहले दोनों तार मन्द्र-सप्तक के षड्ज-पंचम में और बाकी दो तार मध्य-सप्तक के षड्ज-पंचम में ।

तीसरा प्रकार

म़ सा प रें, इस प्रकार मिलाते हैं। भारत में अधिकतर यह तीसरा प्रकार ही प्रचलित है ।

इसराज

इसराज एक प्रकार से सितार और सारंगी का ही रूपान्तर है। इसका ऊपरी भाग सितार से मिलता है और नीचे का भाग सारंगी के समान होता है। इसराज को दिलरुबा भी कहते हैं। यद्यपि इसकी शक्ल में थोड़ा-सा अन्तर होता है, किन्तु बजाने का ढंग एक-सा ही होता है, इसीलिए इसराज और दिलरुबा पृथक् साज नहीं माने जाते ।

इसराज के मुख्य अंग

तूँबा

(खाल से मढ़ा हुआ होता है) इसके ऊपर घोड़ी या ब्रिज लगा रहता है।

लँगोट

तार बाँधने की कील होती है ।

डाँड

इसमें परदे बँधे रहते हैं ।

घुर्च

खाल से मढ़ी हुई तबली के ऊपर का हड्डी का टुकड़ा होता है, जिसके ऊपर तार रहते हैं। इसे घोड़ी या ब्रिज भी कहते हैं।

अटी

सिरे की पट्टी, जिसपर होकर तार गहन के भीतर से खूँटियों तक जाते हैं ।

खूँटियाँ

तारों को बाँधने और कसने के लिए होती हैं ।

इसराज के चार तार

बाज का तार

यह मन्द्र-सप्तक के मध्यम (म़) में मिलाया जाता है।

दूसरा व तीसरा तार

ये दोनों तार मन्द्र-सप्तक के षड्ज (स़) में मिलाए जाते हैं। इन्हें जोड़ी के तार कहते हैं।

चौथा तार

मन्द्र-सप्तक के पंचम (प़) में मिलता है। इस प्रकार इसराज के चारों तार म़ स़ स़ प़, में मिलाए जाते हैं। कोई-कोई कलाकार म़ स़ प़ स या म़ स़ प़ प़, इस प्रकार भी मिलाते हैं। इनके अतिरिक्त इसराज में तरब के तार और होते हैं, जिन्हें भिन्न-भिन्न रागों के अनुसार मिला लिया जाता है।

इसराज के परदे

इसराज में १६ परदे होते हैं, जोकि सितार की भाँति पीतल या स्टील के बने हुए होते हैं। ये परदे निम्नलिखित स्वरों में होते हैं:—

म़॑ प़ ध़ नि़॒ नि़ सा रे ग म म॑ प ध नि सां रें गं
१ २ ३ ४ ५ ६ ७ ८ ९ १० ११ १२ १३ १४ १५ १६

सितार की भाँति इसराज में कोमल स्वर बनाने के लिए परदों को खिसकाने की आवश्यकता नहीं पड़ती। कोमल स्वरों के स्थान पर अँगुली रख देने से ही काम चल जाता है।

इसराज बजाने में बाएँ हाथ की तर्जनी और मध्यमा अर्थात् पहली व दूसरी अँगुलियाँ काम देती हैं। गज को दाहिने हाथ से पकड़ते हैं। इसराज को बाएँ कन्धे के सहारे रखकर बजाना चाहिए। प्रारम्भ में गज धीरे-धीरे चलाना चाहिए तथा गज चलाते समय तार को अधिक जोर से नहीं दबाना चाहिए। पहले स्वर-साधन का अभ्यास हो जाने पर गतें निकालने की चेष्टा करनी चाहिए।

बाँसुरी

यह भारत का अति प्राचीन फूँक का वाद्य है। भगवान् कृष्ण ने अपने अधरों से लगाकर इसे अमरत्व प्रदान कर दिया है।

आजकल बाँसुरियाँ कई प्रकार की मिलती हैं, किन्तु हम यहाँ पर उसी का विवरण दे रहे हैं, जिसमें ६ सूराख होते हैं और जिसकी अँग्रेजी ढंग पर ट्यून की हुई होती है। यद्यपि देशी बाँसुरी भी काफी प्रचलित है, किन्तु उसे अच्छे स्वर-ज्ञान वाले ही पहचान सकते हैं कि इसकी ट्यून ठीक है या नहीं। बहुत-से कलाकार बाँस

की बाँसुरी अपने लिए स्वयं बना लेते हैं, किन्तु सभी के लिए तो ऐसा करना सम्भव नहीं हो सकता, अतः ६ सूराखवाली बाँसुरी बजाने की विधि दी जा रही है।

बाँसुरी में सरगम निकालने की विधि

सर्वप्रथम बाँसुरी के सब सूराखों को इस प्रकार बन्द करिए कि बाएँ हाथ की पहली, दूसरी, तीसरी अँगुलियाँ ऊपर के ३ सूराखों पर जमाई जाएँ। फिर दाहिने हाथ की पहली, दूसरी, तीसरी अँगुलियों से नीचे के तीनों सूराख बन्द किए जाएँ। ध्यान रहे कि सूराखों को अँगुलियों की पोर से अच्छा तरह दबाना चाहिए। यदि बीच में कोई भी अँगुलो सूराख से तनिक भी हट गई, तो आवाज फटी-फटी निकलेगी।

सब सूराख उपर्युक्त विधि से बन्द करने के बाद मुँह से हलकी फूँक लगाइए। इस प्रकार सब सूराख बन्द होने पर जो स्वर निकलेगा, वह मन्द्र-सप्तक का 'प़' होगा। बाकी स्वर एक-एक अँगुली क्रमानुसार उठाने पर इस प्रकार निकलेंगे :—

प़—सब सूराख बन्द करने पर।
ध़—नीचे का एक सूराख खोलने पर।
नि़—नीचे के दो " "
सा—नीचे के तीन " "
रे—नीचे के चार " "
ग—नीचे के पाँच " "
मं—सब सूराख खोल देने पर।

इस प्रकार छह सूराखों से 'प़ ध़ नि़ सा रे ग मं', ये सात स्वर निकले। इनमें मध्यम तीव्र है; बाकी स्वर शुद्ध हैं। मध्यम को शुद्ध बनाने के लिए ऊपर का सिर्फ आधा सूराख दबाना पड़ता है तथा अन्य स्वरों को कोमल बनाने के लिए भी सूराखों का अर्द्ध-प्रयोग किया जाता है।

इसके आगे के स्वर यानी मध्य-सप्तक के 'प ध नि' और तार-सप्तक के स्वर निकालने के लिए क्रम बिलकुल यही रहता है, सिर्फ मुँह की फूँक का वजन बदल दिया जाता है; उदाहरणार्थ—सब सूराख बन्द करने पर हलकी फूँक से मन्द्र-पंचम (प़) निकला है, तो फूँक का वजन दुगुना कर देने पर वही मध्य-सप्तक का पंचम (प) बन जाएगा। इसी प्रकार अन्य स्वर भी फूँक के दबाव के आधार पर आगे की सप्तक के निकलेंगे।

बाँसुरी पर पहले यमन राग के स्वरों—'सा रे ग मं प ध नि' का ही अभ्यास करना चाहिए, क्योंकि यमन राग में मध्यम तीव्र और बाकी स्वर शुद्ध हैं और बाँसुरी में भी पूरे सूराखों के खुलने पर यही स्वर आसानी से निकलते हैं। बाद में अभ्यास हो जाने पर आधे-आधे सूराखों के प्रयोग से अन्य विकृत स्वर भी निकलने लगेंगे।

यन्त्र-वादकों के गुण-दोष

प्राचीन ग्रन्थकारों ने वाद्य-यन्त्र बजानेवालों के गुण-दोषों का जो वर्णन किया है, उसका भावार्थ इस प्रकार है :—

वादक के गुण

१. गीत, वाद्य और नृत्य में पारंगत हो।
२. भिन्न-भिन्न वाद्यों (साजों) को बजाने में कुशल हो।
३. वाद्य-यन्त्र बनाने की जानकारी रखनेवाला हो।
४. ग्रह-ज्ञान रखनेवाला हो।
५. अँगुली-संचालन में कुशल हो।
६. ताल और लय का ज्ञान रखता हो।
७. विभिन्न वाद्य-यन्त्रों के विषय में पूर्ण ज्ञान रखता हो।
८. हस्त-संचालन में कुशल हो।
९. किस वाद्य-यन्त्र को बजाने में कौन-से शारीरिक अवयवों से सहायता मिलती है, इसका ज्ञान रखनेवाला हो।
१०. स्वरों के उतार-चढ़ाव का ज्ञान रखनेवाला हो।

वादक के दोष

जिस वादक में उपर्युक्त दस गुण नहीं हैं, या जो वादक उक्त बातों का ज्ञान नहीं रखता, फिर भी किसी वाद्य को बजाने की चेष्टा करता है, वह सफलता प्राप्त नहीं कर सकता। इस प्रकार उक्त दस गुणों का अभाव ही दस दोषों में बताया गया है।

संगीत में 'काकु'

भिन्नकण्ठध्वनिर्धीरैः काकुरित्यभिधीयते ।

अर्थात्—कंठ की भिन्नता से ध्वनि में जो भिन्नता पैदा होती है, उसे 'काकु' कहते हैं। ध्वनि या आवाज में मनोभावों को व्यक्त करने की अद्भुत शक्ति होती है। कंठ में जो ध्वनि-तन्त्रियाँ हैं, उनके स्पन्दन से ध्वनि निकलती है। इसी तरह तन्तु-वाद्यों में तारों के छेड़ने से ध्वनि पैदा होती है। हारमोनियम, बाँसुरी, शहनाई, क्लारनेट आदि सुषिर वाद्यों में वायु के कम्पन से ध्वनि उत्पन्न होती है।

ध्वनि में मनोभावों को व्यक्त करने की विचित्र शक्ति है। शोक, भय, प्रसन्नता, प्रेम आदि भावों को व्यक्त करने के लिए जब ध्वनि या आवाज में भिन्नता आती है, तब उसे 'काकु' कहते हैं। 'काकु' का प्रयोग मानव तो करते ही हैं, पशुओं में भी 'काकु'-प्रयोग भली-भाँति पाया जाता है। उदाहरणार्थ एक कुत्ता जब किसी चोर के ऊपर भोंकता है, तो उसके भोंकने की ध्वनि में एक प्रकार की भयंकरता या कठोरता होती है; और वही कुत्ता जब अपने मालिक के साथ घूमने के लिए व्यग्रता प्रकट करता हुआ, अपनी बँधी हुई जंजीर से मुक्ति पाने के लिए भोंकता है, तब उसकी आवाज या काकु बदल जाती है। उस समय उसकी आवाज में एक प्रकार की विवशता तथा विनय का भाव पाया जाता है। इसी प्रकार जब बिल्ली भूखी होती है, तो उसकी म्याऊँ में कुछ और ही बात होती है और वही बिल्ली किसी के द्वारा अपने बच्चे को छेड़ते समय विरोध प्रकट करती हुई म्याऊँ करती है, तब उसकी म्याऊँ में कुछ और ही प्रकार की ध्वनि होती है। ध्वनि की इसी भिन्नता या शैली को 'काकु' कहते हैं।

पशुओं की अपेक्षा मानव-जाति में काकु का प्रयोग विशेष रूप से पाया जाता है। एक शब्द है—जाओ। इस शब्द को काकु के विभिन्न प्रयोगों से देखिए—एक अफसर अपने चपरासी को कहीं भेजने के लिए 'जाओ' कहता है, तब उसकी 'जाओ' में आज्ञा देने की भावना पाई है जाती और यही शब्द जब एक विद्यार्थी छुट्टी पाते समय अपने गुरु के मुख से सुनता है, तब उसमें कुछ और ही प्रकार की 'काकु' होती है। यहाँ हम कहेंगे कि उस अफसर का और गुरुजी का शब्द तो एक ही है, किन्तु काकु पृथक्-पृथक् हैं। इसी प्रकार गायन में काकु के प्रयोग सुनने में आते हैं। प्रसिद्ध गायनाचार्य पं० ओम्कारनाथ ठाकुर जब सूरदास का लोकप्रिय पद 'मैया, मैं नहिं माखन खायो' गाते थे, तब 'मैया री' शब्द में वह विभिन्न काकु-प्रयोग इस खूबी से करते थे कि श्रोतागण कभी तो हँसने लगते और कभी आनन्दाश्रु बहाने लगते। उनके द्वारा गाए हुए 'मैया' शब्द में कहीं तो रोष तथा भुँझलाहट का भाव होता था और कहीं माता के प्रति विनम्रता होती थी; कभी उसमें करुणा होती थी, तो कभी उससे वेदना निःसृत होती थी। यह काकु का ही चमत्कार था।

नाटक में जब किसी पात्र द्वारा कोई विशेष भाव व्यक्त कराया जाता है, तब वहाँ काकु बहुत सहायक होती है। जो अभिनेता काकु का प्रयोग जितनी कुशलता से

समर्थ होगा वह अपने अभिनय को उतनी ही सफलतापूर्वक निभा सकेगा। 'नाट्यशास्त्र' के १७-वें अध्याय में काकु की विशद व्याख्या पाई जाती है। उसमें छाती, कंठ, सिर आदि काकु के स्थान बताए गए हैं। साथ ही यह भी बताया है कि किस काकु से कौन-कौनसे रस की सृष्टि होती है। 'संगीत-रत्नाकर' में काकु के छह प्रकार बताए गए हैं; यथा:—

छायाकाकुः षट्प्रकारा स्वररागान्यरागजा।
स्याद्देशक्षेत्रयन्त्राणां तल्लक्षणमथोच्यते॥

अर्थात्—छाया-काकु छह प्रकार के होते हैं—१. स्वर-काकु, २. राग-काकु, ३. अन्यराग-काकु, ४. देश-काकु ५. क्षेत्र-काकु और ६. यन्त्र-काकु।

स्वर-काकु

श्रुति को कुछ अधिक या कम कर देने से एक स्वर की दूसरे स्वर में जो छाया दिखाई देती है, वह 'स्वर-काकु' है।

राग-काकु

किसी राग की जो अपनी मुख्य छाया है, वह 'राग-काकु' कहलाती है।

अन्यराग-काकु

जब किसी राग की छाया अन्य राग में दिखाई देती है, तो उसे 'अन्यराग-काकु' कहते हैं।

देश-काकु

जो किसी अन्य राग का सहारा न लेकर अपने देश और स्वभाव से अपने राग में ही सम्मिलित रहता है, उसे 'देश-काकु' कहते हैं।

क्षेत्र-काकु

'क्षेत्र' शरीर को कहते हैं, अतः राग में अलग-अलग शरीर के प्रति जो काकु विभिन्न रूप धारण करता है, उसी को 'क्षेत्र-काकु' कहते हैं।

यन्त्र-काकु

वीणा तथा बाँसुरी आदि वाद्य-यन्त्रों से उत्पन्न ध्वनि का जो अपना काकु होता है, उसे 'यन्त्र-काकु' कहते हैं। इस यन्त्र-काकु के द्वारा ही हमारे कान वाद्य-यन्त्रों की परस्पर भिन्नता करके उन्हें बिना देखे ही केवल श्रवण-मात्र से पहचान लेते हैं कि यह ध्वनि अमुक वाद्य की है।

'अमरकोष' के अनुसार 'काकु' ध्वनि के उस विकार को कहते हैं, जिसके द्वारा किसी भाव की अभिव्यक्ति हो। हमारी सम्मति में काकु की यह व्याख्या बहुत-कुछ ठीक है। वास्तव में काकु के अन्दर एक विचित्र शक्ति है, जिसके द्वारा भावों की अभिव्यंजना में स्निग्धता, माधुर्य और रस की सृष्टि होती है। संगीत के लिए तो काकु का प्रयोग बहुत ही महत्त्व रखता है।

गायकों के घराने

भारतीय संगीत-कला के प्राचीन गायकों में कुछ ऐसे प्रसिद्ध गायक हो गए हैं, जिन्होंने अपनी प्रतिभा से एक विशेष प्रकार की गायन-शैली को जन्म देकर, उसे अपने पुत्रों तथा शिष्यों को सिखाकर प्रचलित किया। उनकी उस शैली का अनुकरण उनके शिष्यगण तथा कुटुम्बी अब तक करते चले आ रहे हैं। उन गायन-शैलियों को ही घराने का नाम दिया जाता है। अनेक घरानों के राग-स्वर तो प्राय: एक-से ही हैं, किन्तु उनके गाने का या स्वरों को प्रयुक्त करने का ढंग अलग-अलग होने से ही यह कहा जाता है कि यह अमुक घराने की गायकी है।

गायकों के मुख्य ५ घराने हैं—१. ग्वालियर-घराना, २. जयपुर-घराना, ३. किराना-घराना, ४. आगरा-घराना और ५. दिल्ली-घराना। इन घरानों का संक्षिप्त परिचय इस प्रकार है:—

ग्वालियर-घराना

इस घराने के जन्मदाता प्रसिद्ध संगीतज्ञ हद्दूखाँ-हस्सूखाँ के दादा स्व० नत्थन पीरबख्श माने जाते हैं। इनकी वंश-परम्परा इस प्रकार है :—
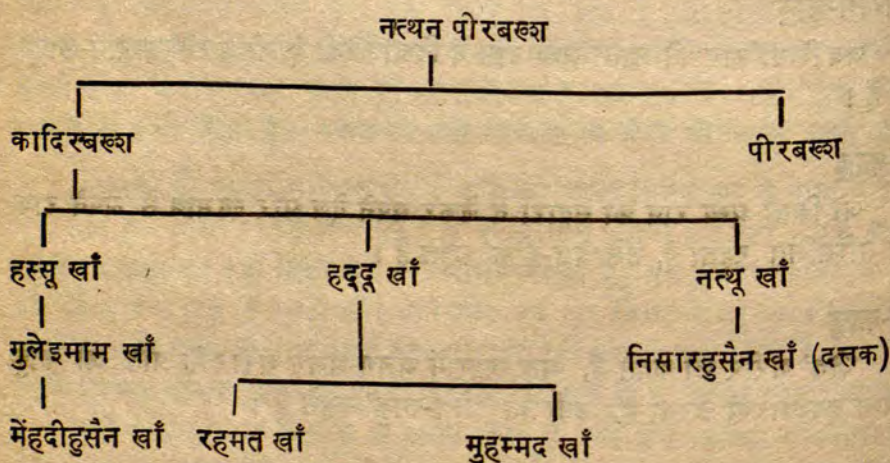
नत्थू खाँ यद्यपि कादिरबख्श के पुत्र थे, किन्तु यह अपने चाचा पीरबख्श की गोद थे। हस्सू खाँ, हद्दू खाँ तथा नत्थू खाँ, ये तीनों भाई प्रसिद्ध खयाल-गायक एवं ग्वालियर के दरबारी गायक थे।

गुलेइमाम के पुत्र मेंहदीहुसैन को तोड़ी राग गाने में कमाल हासिल था। इस परम्परा के महाराष्ट्रीय शिष्य बालकृष्ण बुआ इचलकरंजीकर, बासुदेव जोशी, तथा बाबा दीक्षित थे। बालकृष्ण बुआ के शिष्य थे—पं० विष्णुदिगम्बर पलुस्कर। पलुस्करजी ने बम्बई पहुँचकर ग्वालियर-घराने की गायकी का प्रचार किया, जिसके फलस्वरूप पं० ओम्‌कारनाथ ठाकुर, विनायकराव पटवर्धन, नारायणराव व्यास आदि प्रसिद्ध गायक हमें प्राप्त हुए।

नत्थू खाँ के कोई सन्तान न होने के कारण उन्होंने निसारहुसैन को गोद ले लिया और उन्हें संगीत की शिक्षा भी भली प्रकार देने लगे। निसारहुसैन ने अपने परिश्रम और प्रतिभा से गायन-कला में अच्छी प्रसिद्धि पाई। बाद में आप ग्वालियर के दरबारी गायक नियुक्त हो गए। निसारहुसैन की शिष्य-परम्परा इस प्रकार है:—
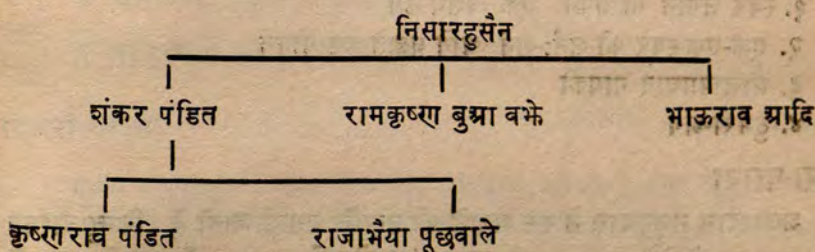
ग्वालियर-घराने की गायकी में निम्नलिखित विशेषताएँ उल्लेखनीय हैं:—

१. जोरदार एवं खुली आवाज का गायन
२. ध्रुवपद-अंग के खयाल
३. सीधो तथा सपाट तानें
४. बोल-तानों में लयकारी
५. गमकों का प्रयोग

जयपुर-घराना

इस घराने के जन्मदाता 'मनरंग' बताए जाते हैं। उनके वंशज मुहम्मदअली खाँ हुए और मुहम्मदअली खाँ के पुत्र आशिकअली खाँ हुए। आगे चलकर इस घराने के दो उप-घराने हो गए—१. पटियाला-घराना और २. अल्लादिया खाँ-घराना। जयपुर-घराने की विशेषताओं के साथ-साथ इन उप-घरानों ने कुछ और विशेषताएँ पैदा करके अपनी-अपनी गायन-शैली को आकर्षक बनाया।

जयपुर-घराने की विशेषताएँ इस प्रकार हैं:—

१. आवाज बनाने की अपनी स्वतन्त्र शैली
२. खुली आवाज का गायन
३. गीत की संक्षिप्त बन्दिश
४. वक्र तानें तथा आलाप की छोटी-छोटी तालों से बढ़त
५. खयाल-गायन की विशेष बन्दिश

किराना-घराना

इस घराने का सम्बन्ध प्रसिद्ध बीनकार बन्देअली खाँ से बताया जाता है। स्व० अब्दुलकरीम खाँ तथा अब्दुलवहीद खाँ ने इस घराने की ख्याति बढ़ाकर इसे प्रतिष्ठित किया। अब्दुलकरीम खाँ साहब की आवाज लगाने की एक विचित्र शैली थी, जिसका दर्शन वर्तमान संगीत-प्रेमी उनके रेकार्डों द्वारा अब भी कर सकते हैं।

स्व० सवाई गंधर्व, स्व० सुरेश बाबू आदि इसी घराने के कलाकार थे। वर्तमान समय में किराना-घराने के प्रतिनिधियों में गंगूबाई हंगल, उस्ताद रजबअली खाँ, उस्ताद अमीर खाँ, रोशनआरा बेगम और हीराबाई बड़ौदेकर के नाम उल्लेखनीय हैं।

किराना-घराने की विशेषताएँ इस प्रकार हैं :—

१. स्वर लगाने का अपना एक विशेष ढंग
२. एक-एक स्वर को शनैः-शनैः आगे बढ़ाते हुए गायन
३. आलापप्रधान गायकी
४. ठुमरी-अंग

आगरा-घराना

अलखदास मलूकदास से इस घराने की उत्पत्ति बताई जाती है, किन्तु वास्तव में तो इस घराने के प्रवर्तक हाजी सुजान (तानसेन के दामाद) हैं। आगे चलकर खुदाबख्श (ग गे) द्वारा इस घराने का प्रचार हुआ। आगरा-घराने की बहुत-सी बातें ग्वालियर-घराने से मेल खाती हैं। इसका एक कारण यह भी है कि खुदाबख्श ने ग्वालियरवाले नत्थन-पीरबख्श से खयाल-गायकी की तालीम पाई थी। बाद में वे फिर आगरा चले गए।

आगरा-घराने में स्व० उस्ताद फैयाज खाँ का नाम विशेष उल्लेखनीय है। यह गुलाम अब्बास के धेवते थे। इन्होंने इस घराने की गायकी का नाम खूब रौशन किया। वर्तमान समय में विलायतहुसैन खाँ आगरा-घराने के प्रतिनिधि माने जाते हैं :—
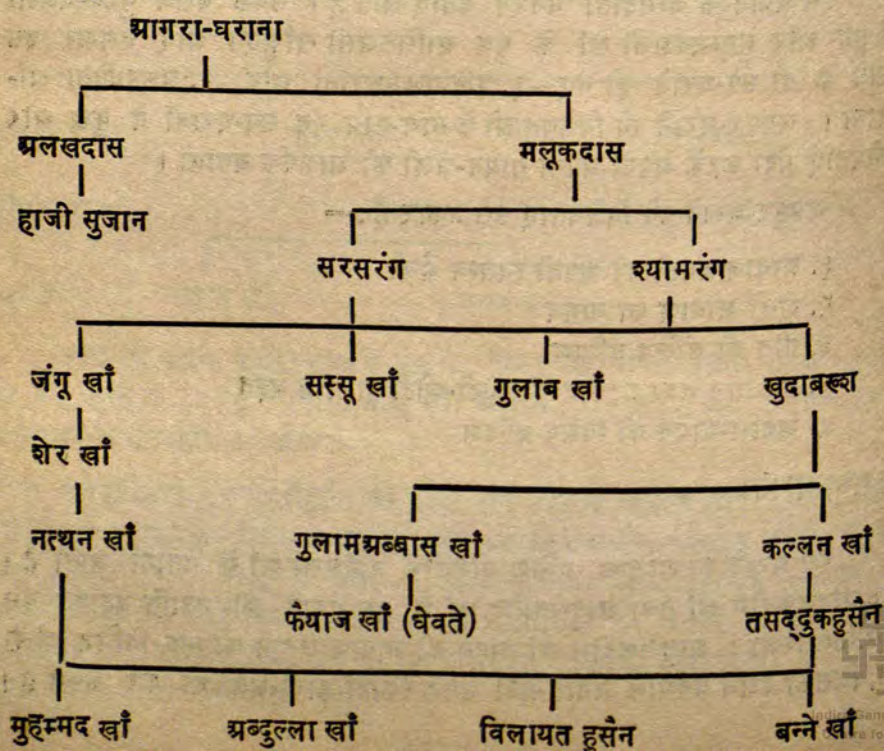
आगरा-घराने की विशेषताएँ:—

१. नोमतोम में आलाप

२. बन्दिशदार चीजों का गायन

३. खुली और जोरदार आवाज

४. खयाल-गायकी के साथ-साथ ध्रुवपद-धमार-गायन

५. बोल-तानों पर अधिकार

दिल्ली-घराना

मुगल बादशाहों के पतन के पश्चात् तानरस खाँ द्वारा इस घराने की स्थापना हुई बताई जाती है। तानरस खाँ के पुत्र उमराव खाँ ने इस घराने को आगे बढ़ाया। वर्तमान समय में इस घराने के प्रतिनिधि उस्ताद चाँद खाँ हैं। इस घराने की विशेषताएँ निम्न प्रकार हैं:—

१. तान लेने की विचित्र पद्धतियाँ; जैसे—जोड़-तोड़ की तान, झूला की तान, झकोले की तान, उखेड़ की तान, फन्दे की तान आदि।

२. द्रुत लय में तानों का प्रयोग।

३. खयालों की कलापूर्ण बन्दिशें; विलम्बित लय के खयालों में—पालकी के खयाल, सवारी के खयाल, पटरी के खयाल तथा खानापूरी के खयाल।

४. ताल और लय पर अधिकार।

५. तान, बन्धान आदि में अकार का सही प्रयोग करना तथा उनके अवगुणों से बचना।

६. गायन के अंग में सुन्दर स्वरों का मेल करके कलात्मक अंगों का दिग्दर्शन।

पाश्चात्य स्वरलिपि-पद्धति

विश्व में चार स्वरलिपि-पद्धतियों के आधार पर ही समस्त पद्धतियाँ आधारित हैं। उन चारों के नाम इस प्रकार हैं :—

१—सोल्फा-स्वरलिपि-पद्धति (Solfa Notation)
२—न्यूम्स-स्वरलिपि-पद्धति (Neumes Notation)
३—चीव-स्वरलिपि-पद्धति (CheveN otation)
४—स्टाफ-स्वरलिपि-पद्धति (Staff Notation)

सोल्फा-स्वरलिपि-पद्धति

जिस प्रकार भारतीय स्वरों के नाम सा, रे, ग, म, प, ध, नि हैं, उसी प्रकार पाश्चात्य देशों में सोल्फा-स्वरलिपि-पद्धति के अन्तर्गत स्वरों के नाम डो (Do), रे (Re), मी (Me), फा (Fa), सो (Sol), ला (La), सी (Si) हैं। अर्थात् सा, रे, ध, प, म, ग इत्यादि को इस प्रकार लिखेंगे :—

डो, रे, ला, सो, फा, मी।

सोल्फा-स्वरलिपि-प्रणाली का आधुनिक स्वरूप मिस एस० ए० ग्लोवर तथा जौन करवेन के प्रयासों का रूप है। प्रारम्भिक संगीत-शिक्षा के लिए इंगलैंड में इस पद्धति का इस्तेमाल बड़े पैमाने पर होता है। तार-सप्तक के स्वर दिखाने के लिए इस पद्धति में ऊपर खड़ी या पड़ी रेखाएँ लगादी जाती हैं। इसी प्रकार मन्द्र-सप्तक के स्वरों के नीचे पड़ी रेखाएँ होती हैं, जैसे—$\overline{d}\ \overline{r}\ \overline{m}$ या $d'\ r'\ m'$ (तार-सप्तक के स्वर) तथा $\underline{d}\ \underline{r}\ \underline{m}$ (मन्द्र-सप्तक के स्वर)।

कोमल व तीव्र स्वरों के लिए केवल उच्चारण में ही परिवर्तन कर दिया जाता है, जैसे—डो, रे (Do, Re) के स्थान पर डा, रा (Da, Ra) लिखेंगे। इसी प्रकार तीव्र स्वरों के लिए डे, रे (De, Re)। अन्य चिह्नों को दर्शाने के लिए विभिन्न रेखाओं, बिन्दुओं आदि का प्रयोग किया जाता है।

न्यूम्स-स्वरलिपि-पद्धति

यह स्वरलिपि-पद्धति धर्म की गोद में पली और रोम के चर्चों से विकसित हुई। चर्चों में गाए जानेवाले संगीत के प्रचार के लिए इस पद्धति का तीव्रता से प्रसार हुआ। धार्मिक गीतों का संकेत करने के लिए इस पद्धति का बेहद प्रचार हुआ। विराम, स्वल्प विराम तथा डैश और आड़ी-टेढ़ी रेखाओं से ही इस पद्धति में स्वर-स्थानों को इंगित किया जाता है। भारतीय संगीत में वेदकालीन ऋचाओं पर भी इसी प्रकार के चिह्न पाए जाते हैं।

चीव-स्वरलिपि-पद्धति

अठारहवीं सदी में फ्रांस के ई० चीव नामक गणितज्ञ ने इस अभिनव स्वरांकन-पद्धति को जन्म दिया, इसीलिए यह 'चीव-नोटेशन' के नाम से प्रसिद्ध हुई। इसमें

स्वरों को दिग्दर्शित करने के लिए गणित के अंक प्रयोग में लाए जाते हैं एवं ऊँचे-नीचे स्वर दर्शाने के लिए अंकों के ऊपर और नीचे बिन्दु लगा दिए जाते हैं। हमारे सामवेद के मन्त्रों पर भी १, २, ३, ४, स्वर-संकेत मिलते हैं।

स्टाफ-स्वरलिपि-पद्धति

यह न्यूम्स-नोटेशन का ही परिवर्धित रूप है। पाँच समानान्तर आड़ी लकीरों का स्तम्भ (Staff) बनाकर उसके बीच में स्वरों को अंकित किया जाता है। स्वरों के लिए इसमें ○ यह चिह्न प्रयुक्त होता है। इस पद्धति की मुख्य विशेषता यह है कि इसमें स्वर और ताल को एकसाथ दिखाया जाता है, अर्थात् एक ही चिह्न में स्वर, ताल और लय का संकेत मिल जाएगा। आजकल अधिकांश देशों में इसी पद्धति का प्रचार है। सूक्ष्मतम भावों को प्रकट करने के लिए यह पद्धति सर्वांगीण है, इसीलिए अनेक भारतीय कलाकार भी, विशेषकर फिल्म-संगीत-निर्देशक इसी को अपनाते चले आ रहे हैं।

पाश्चात्य संगीत-शास्त्र के विकास में सामूहिकता, पार्श्व-संगीत एवं साधारण प्रभाव (General Effect) मूल उपादान रहे। इन्हीं को लेकर पाश्चात्य स्टाफ-स्वरलिपि-पद्धति भी पुरःसर होती रही। गिरजाघरों के वृन्द-संगीत में समय-समय पर भिन्न-भिन्न कंठ-स्वरों का समावेश होता रहा। संगीत में शामिल होनेवाले सभी तरह के नादों का प्रतिनिधित्व करना स्टाफ-स्वरलिपि-पद्धति के लिए जरूरी था। स्त्री, पुरुष तथा बालकों के स्वाभाविक कंठ-स्वरों में परस्पर अन्तर होता है। इनको भली-भाँति दिग्दर्शित करने के लिए स्टाफ-स्वरलिपि-पद्धति में एक पंक्ति (Staff) और बढ़ा दी गई। स्टाफ में पाँच पंक्तियों के स्थान पर अब छह हो गईं, फिर भी संगीत के सम्भाव्य स्वरों की विविधता एवं मानव-कंठ की वशालता इससे प्रकट न होती थी, इसलिए स्टाफ-स्वरलिपि-पद्धति में ग्यारह पंक्तियों (Staves) के एक विशाल स्टाफ की कल्पना की गई। इसको पाश्चात्य परिभाषा में ग्राण्ड स्टाफ (Grand Staff) के नाम से सम्बोधित किया गया।

स्टाफ-स्वरलिपि-पद्धति को पढ़ने और समझने के लिए उसके स्वर-संकेतों (Symbols) से परिचित होना आवश्यक है, जो कि क्रमबद्ध दिए जाते हैं :—

शुद्ध स्वरों को लिखना

स्टाफ-नोटेशन-पद्धति में स्वरों को प्रकट करने के लिए अंडाकार जैसे गोल चिह्न का प्रयोग किया जाता है। यह क्रिया ग्यारह सीधी रेखाओं की सहायता से की जाती है। स्वरों को प्रकट करनेवाला अंडे के आकार का चिह्न इन्हीं रेखाओं के ऊपर और मध्य में रखा जाता है। जैसे :—
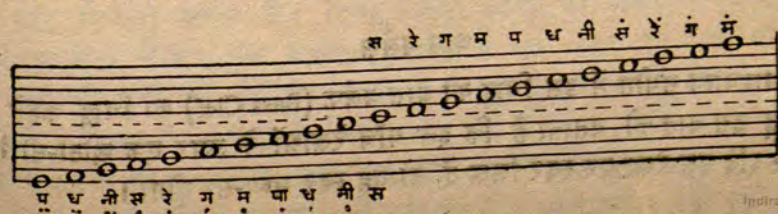
ध्यान से देखने पर मालूम होगा कि (१) यदि एक स्वर रेखा के ऊपर है, तो दूसरा दो रेखाओं के बीच में। फिर, (२) प्रत्येक स्वर को प्रदर्शित करने के लिए केवल एक ही चिह्न का आधार लिया गया है। (३) नीचे से छठी रेखा को पूरा न बनाकर बिन्दु-रेखा की भाँति बना दिया गया है। और (४) इसी चित्र में नीचे के लिखे हुए स्वरों में अन्तिम 'सा' तथा ऊपर के लिखे स्वरों में प्रारम्भ का 'सा' इसी बिन्दु-रेखा पर स्थित है।

अब यदि इस बिन्दु-रेखा पर आनेवाले स्वर को 'मध्य-सप्तक का सा' मान लें, तो मध्य-सप्तक के स्वरों को और मन्द्र-सप्तक के स्वरों को निम्न प्रकार लिखा जाएगा :—
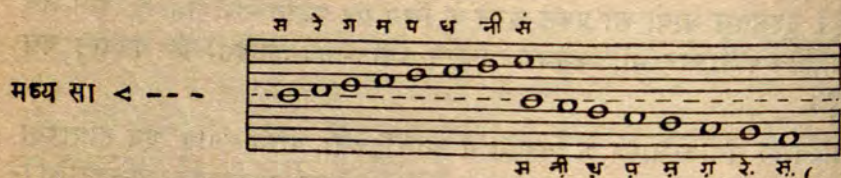
आप पूछ सकते हैं कि यदि हमें कोई ऐसी रचना लिखनी है, जिसमें सबसे नीचा स्वर मध्य-सा तक हो हो, तब भी क्या ये ग्यारहों रेखाएँ खींचनी होंगी? नहीं। उस स्थिति में हम केवल ऊपर की पाँच रेखाएँ खींच लेंगे और उन रेखाओं से पहले निम्नांकित चिह्न को लगा देंगे :—
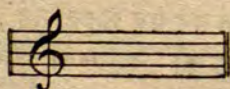
ट्रैबिल क्लैफ

पाश्चात्य संगीत में इस चिह्न को ट्रैबिल क्लैफ (Treble Clef) का चिह्न कहते हैं और यह चिह्न इस बात को बताता है कि यदि इन रेखाओं में सबसे नीचे एक छोटी-सी रेखा खींचकर, उसके ऊपर स्वर लिख दें तो वह स्वर मध्य-सप्तक का 'सा' होगा।

इसी प्रकार यदि स्वर-रचना ऐसी है कि उसमें सबसे ऊँचा स्वर मध्य-सा है तो इस चिह्न के स्थान पर निम्नांकित चिह्न को लगा देंगे :—
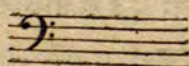
बास क्लैफ

पाश्चात्य संगीत में इस चिह्न को बास क्लैफ़ (Bass Clef) का चिह्न कहते हैं। यह चिह्न इस बात को बताता है कि इन पाँच रेखाओं के ऊपर एक छोटी-सी रेखा खींचकर यदि उस रेखा पर स्वर लिख दें, तो वह स्वर मध्य-सा होगा।

अब यदि इन दोनों चिह्नों को एक स्थान पर लिख दें और मध्य सा के स्थान पर कोई स्वर न लिखकर केवल बिन्दु-रेखा खींच दें, तो इन दोनों क्लैफ पर लिखे जाने वाले स्वर निम्न प्रकार होंगे :—

यहाँ आप पुन: यह प्रश्न कर सकते हैं कि यदि ट्रेबिल क्लैफ में या बास क्लैफ में जितने स्वर लिखे जा सकते हैं, उनके अतिरिक्त कुछ स्वर लिखने हों, तब क्या करेंगे ? इसके लिए जब हमें इन रेखाओं से अधिक ऊँचे या अधिक नीचे स्वर लिखने होते हैं, तो हम आवश्यकतानुसार छोटी-छोटी अन्य रेखाएँ खींच लेते हैं। इन रेखाओं को लैजर-लाइन्स (Leger Lines) कहते हैं। नीचे के चित्र में ट्रेबिल क्लैफ के ऊपर और नीचे बढ़ाए हुए स्वर देखिए :—

इसी आधार पर बास क्लैफ में बढ़ाए हुए स्वर देखिए :—

विकृत स्वरों को लिखना

अभी तक हमने आपको शुद्ध स्वर लिखने बताए हैं। अब हम आपको विकृत स्वर लिखना बताते हैं। किन्तु विकृत स्वरों को लिखने से पूर्व आपको यह समझ लेना चाहिए कि पाश्चात्य संगीत में एक स्वर से उससे बराबर-वाले स्वर की दूरी को सैमीटोन कहते हैं। अर्थात् सा से रे॒ या रे॒ से रे, या ग से म, अथवा नि से सां के बीच की दूरी एक-एक सैमीटोन है। और जब दो सैमीटोन की दूरी मिल जाती है तो उसे एक टोन की दूरी कहते हैं। जैसे— सा से शुद्ध रे, अथवा शुद्ध रे से शुद्ध ग की दूरी एक टोन कहलाएगी। इसी प्रकार अन्य स्वरों के बारे में भी समझना चाहिए।

पाश्चात्य संगीत में दो बातें और ध्यान में रखनी चाहिए—१. प्रत्येक स्वर अपने शुद्ध स्थान से एक टोन ऊँचा या एक टोन नीचा हो सकता है और २. भारतीय संगीत की भाँति पाश्चात्य संगीत में षड्ज और पंचम अचल नहीं होते, वरन् वे भी एक टोन ऊँचे या नीचे हो सकते हैं।

अत: जब कोई शुद्ध स्वर अपने स्थान से एक सैमीटोन नीचा होता है, तो उसे फ्लैट (Flat) कहते हैं और उससे पहले इस ♭ चिह्न को (जो कि फ्लैट का चिह्न कहलाता है) लगा देते हैं।

यदि हम इस चिह्न को मध्य-सप्तक के षड्ज से पहले लगा दें, तो फिर उसे 'सा' न कहकर 'सा-फ्लैट' कहेंगे और गाते या बजाते समय मन्द्र-सप्तक की शुद्ध नि का प्रयोग करेंगे।

इसी प्रकार यदि 'सा' से पहले हम डबल-फ्लैट का यह चिह्न ♭♭ लगा दें, तो अब 'सा' के स्थान पर मन्द्र-सप्तक की कोमल निषाद को बजाएँगे या गाएँगे।

इसके विपरीत यदि हम इस ♯ चिह्न को (जो कि शार्प के लिए प्रयुक्त होता है) सा स्वर से पहले लगा दें, तो हम इस स्वर को 'सा-शार्प' कहेंगे और कोमल रे को बजाएँगे।

परन्तु यदि सा से पहले इस × चिह्न को (जो कि डबल-शार्प के लिए प्रयुक्त होता है) लगा दें, तो अब 'सा' स्वर 'सा-डबल शार्प' कहलाएगा और बजाते समय शुद्ध रे बजेगा।

स्वरों को पुनः शुद्ध रूप देना

जब किसी डबल-फ्लैट स्वर को अथवा डबल-शार्प स्वर को पुनः शुद्ध स्वर के स्थान पर लाना होता है, तो इस ♮ ♮ चिह्न को लगा देते हैं। इस चिह्न का नाम नैचुरल (Natural) का चिह्न है। कभी-कभी केवल एक चिह्न का प्रयोग होता है। इसके अर्थ यही होंगे कि जो भी स्वर अपने स्थान से ऊँचा या नीचा किया गया है, इस चिह्न के लगने के बाद वह अपने शुद्ध रूप में (Natural) ही बजेगा। जैसे :—
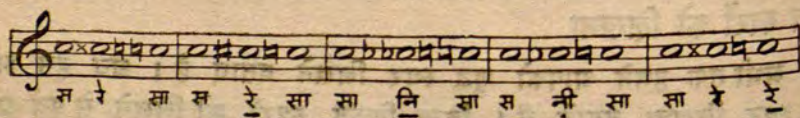
इस प्रकार आप देखेंगे कि रेखा के ऊपर आनेवाले अथवा दो रेखाओं के बीच में आनेवाले किसी स्वर को उसी स्थान पर रखते हुए भी, केवल चिह्नों द्वारा ही ऊँचा या नीचा किया जा सकता है। फिर चिह्न द्वारा ही उसे पुनः शुद्ध रूप दिया जा सकता है।

की-सिगनेचर—(Key Signature)

यहाँ तक आपने देख लिया कि यदि हमें कोई स्वरलिपि ऐसी लिखनी है, जिसमें कोई स्वर विकृत लगता हो, तो हम जब भी उस स्वर को लिखेंगे, तभी हमें उससे पहले फ्लैट या शार्प का चिह्न लगाना होगा। इस प्रकार हमें बहुत-से स्थानों पर फ्लैट या शार्प के चिह्न लगाने होंगे। स्वर से पहले हर बार इस चिह्न को लगाने की परेशानी को ध्यान में रखकर ही पाश्चात्य संगीत में इस चिह्न को क्लैफ के तुरन्त बाद ही लगा देते हैं। जैसे :—
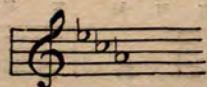
यदि आप ध्यान दें, तो देखेंगे कि जिन-जिन स्थानों पर यह चिह्न लगे हैं, वहाँ पर आनेवाले स्वर नीचे की ओर से क्रम से ध, सं और गं हैं। परन्तु चूँकि इनके स्थानों पर फ्लैट के चिह्न लगे हैं, अतः इन पाँच रेखाओं पर (चाहे ऊपर या नीचे) कहीं भी जब ध, स̄ और ग̄ बजेंगे तो उन्हें क्रम से ध॒, नि और ग॒ बजाना होगा। अर्थात् प्रत्येक स्वर अपने नियत स्थान से एक-एक सैमीटोन नीचा बजेगा।

बार-लाइन्स—(Bar Lines)

भारतीय संगीत की भाँति ही पाश्चात्य संगीत में भी रचना को कुछ खंडों में विभाजित कर देते हैं, किन्तु पाश्चत्य संगीत में प्रत्येक विभाग के अन्दर मात्राओं का समान होना आवश्यक है। जैसे यदि एक खंड में तीन स्वर लिए गए हैं, तो अब प्रत्येक खंड (Bar) में तीन-तीन ही स्वर होंगे। इसी प्रकार यदि पहले खंड में चार, पाँच या छह स्वर हैं, तो जिस रचना में पहले खंड में चार स्वर हैं, तो आगे भी उस रचना के प्रत्येक विभाग में चार-चार स्वर ही (समान मात्रा-काल के) होंगे। इसी प्रकार अन्य खंडों के विषय में भी समझना चाहिए।

उदाहरण के लिए हम कल्याण राग के नि ध प मं, प ध नि सं स्वरों को लिखना चाहते हैं। तो सबसे पहले पाँच रेखाएँ खींचकर, क्लैफ का चिह्न लगाएँगे। उसके बाद मध्यम स्वर के स्थान पर शार्प का चिह्न लगाएँगे, जिसे 'की-सिगनेचर' कहेंगे, और तब स्वरों को इस प्रकार लिख देंगे :—
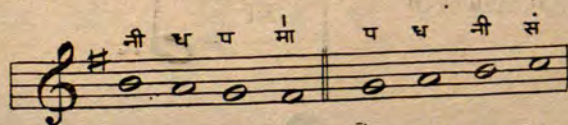
यहाँ देखने पर प्रकट होगा कि सबसे ऊपर की रेखा पर 'मा' स्वर आएगा। साथ-साथ इन्हीं रेखाओं में गा और पा की रेखाओं के बीच में भी 'मा' स्वर आएगा। अतः इस क्लैफ में अन्त तक जहाँ कहीं 'मा' स्वर बजेगा, वह तीव्र ही बजेगा। इस

प्रकार जो फ्लैट या शार्प के चिह्न क्लैफ के तुरन्त बाद लगाए जाते हैं, उन्हें आवश्यक (Essential) की-सिगनेचर कहते हैं और वे जिस स्वर के लिए प्रयोग किए गए हैं, वह स्वर जब भी आएगा, उससे प्रभावित होगा।

आकस्मिक (Accidental) की-सिगनेचर

परन्तु यदि यह चिह्न क्लैफ के तुरन्त बाद न आकर किसी भी 'बार' (Bar) या 'खंड' के बीच में ही आ जाए, तो उसका अर्थ होगा कि वह स्वर केवल उसी खंड (Bar) में उस चिह्न से प्रभावित रहेगा; जैसे :—
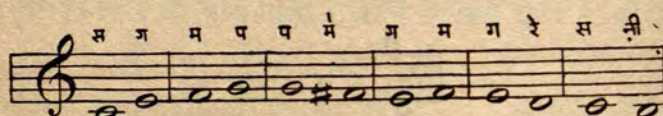
इस प्रकार किसी भी खंड (Bar) के बीच में 'फ्लैट', शार्प' या 'डबल फ्लैट' या 'डबल-शार्प' के आनेवाले चिह्न को ऐक्सीडैण्टल (Accidental) की-सिगनेचर कहते हैं। यदि एक ही (Bar) के अन्दर वही स्वर एक बार से अधिक प्रयोग किया जाएगा, तो उस खंड (Bar) के अन्दर केवल एक ही ऐक्सीडैण्टल काम दे देगा।

मात्राएँ

ध्वनियों के समय को लिखना

एक मात्रा पर कितने काल तक ठहरा जाए, इसके लिए हमारे संगीत में पूज्य भातखंडेजी ने तो प्रत्येक स्वर को ही एक मात्रा के बराबर मानकर स्वरलिपि लिख दी। जब एक मात्रा में एक से अधिक जितने भी स्वर लिखने हुए, तो उन समस्त स्वरों के नीचे एक चन्द्र का चिह्न लगा दिया।

पूज्य विष्णुदिगम्बरजी ने मात्राओं के लिए अपने अलग-अलग चिह्न बनाकर उन्हें प्रत्येक स्वर के नीचे रख दिया। परन्तु पाश्चात्य पद्धति में अक्षर न होने के कारण उन्होंने मात्राओं के अनुसार ही उनके रूप में थोड़ा-थोड़ा परिवर्तन कर दिया; जैसे :—

१ मात्रा को प्रकट करने के लिए

१/२ " " " " या

१/४ " " " " या

$\frac{१}{८}$ मात्रा को प्रकट करने के लिए

$\frac{१}{१६}$ " " " "
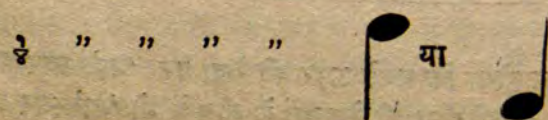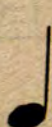
$\frac{१}{३२}$ " " " "

यहाँ आप देखेंगे कि मात्रा को प्रकट करनेवाला स्वर बीच में से खाली है। आधी मात्रा का बनाते समय उसमें एक रेखा जोड़ दो गई है। ये रेखाएँ ऊपर या नीचे, जिधर भी सुन्दर लगें, लगाई जा सकती हैं। चौथाई मात्रा का स्वर लिखते समय, उसी आधी मात्रावाले बिन्दु को स्याही से भर दिया गया है। $\frac{१}{८}$ मात्रावाले में एक रेखा, $\frac{१}{१६}$ मात्रावाले में दो रेखाएँ और $\frac{१}{३२}$ मात्रावाले में तीन रेखाएँ सीधे हाथ की ओर और जोड़ दी गई हैं।

अँग्रेजी में इस चिह्न का नाम सैमी-ब्रीव (Semi breve) है।

या चिह्न को मिनिम (Minim); या चिह्न को क्रोशे (Crotchet); चिह्न को क्वेवर (Quaver); चिह्न को सैमी-क्वेवर (Semi Quaver); और चिह्न को डैमी-सैमी-क्वेवर (Demi Semi Quaver) कहते हैं।

विविध मात्राओं को लिखना

जब दो या दो से अधिक $\frac{१}{८}$ या $\frac{१}{१६}$ या $\frac{१}{३२}$ मात्रावाले स्वरों को जोड़ा जाता है, तो उनमें सीधे हाथ की ओर लगाई हुई रेखाएँ आपस में जोड़ दी जाती हैं; जैसे :—

इसके अर्थ होंगे कि ये समस्त स्वर १/८ मात्रा के ही हैं।

इसी प्रकार नीचे के चित्र में समस्त स्वर १/१६ मात्रा को प्रकट करते हैं :—

इसी आधार से नीचे के चित्र में समस्त स्वर १/३२ मात्रा को प्रकट करते हैं :—
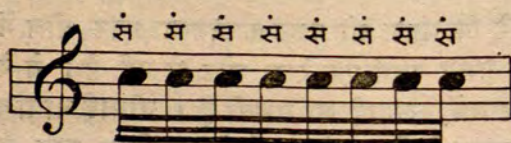
कभी-कभी ऐसा भी होता है कि १/८ मात्रा के स्वर बजाते समय कोई-कोई स्वर बीच-बीच में १/१६ मात्रा का भी आ जाता है। उस समय उसी विशेष स्वर में एक रेखा अधिक जोड़कर काम ले लिया जाता है। जैसे :—

इसी प्रकार बीच-बीच में यदि कोई स्वर १/३२, १/१६ या १/८ मात्रा का आ जाए, तो उनमें तीन या दो रेखाएँ जोड़ देते हैं। जैसे :—

पाश्चात्य संगीत में यदि आप विष्णुदिगम्बर-पद्धति की भाँति ही आधी मात्रा को एक मात्रा मानकर चलें, तो आपको स्वरलिपि पढ़ने में अधिक सुविधा रहेगी।

स्वरों को बढ़ान

यहाँ तक आपने नाद की ऊँचाई-नीचाई तथा स्वरों को बराबर, दुगुन, चौगुन आदि में लिखने के चिह्नों को समझ लिया। परन्तु स्वरों को कभी-कभी बढ़ाना भी पड़ता है, जैसे—ग रे ग म। ग - रे सा

अब यदि प्रत्येक स्वर को चौथाई-चौथाई मात्रा में लिखें तो पाँचवें स्वर को आधी मात्रा में लिखने से यह काम हो जाएगा। जैसे :—
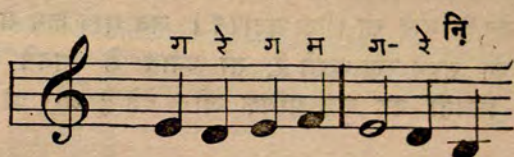
इसी आधार पर हम एक यमन की सरगम लिखकर दिखाते हैं :—
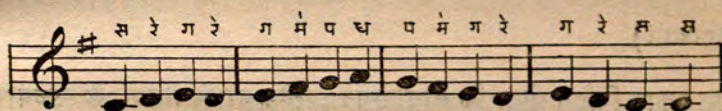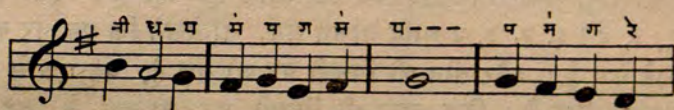
अब यहाँ पर प्रश्न उपस्थित होता है कि आखिर यह कैसे समझा जाए कि कौन रचना किन मात्राओं के आधार पर पढ़ी अथवा लिखी जाएगी। इसे ठीक प्रकार समझने से पूर्व पाश्चात्य ताल-पद्धति पर थोड़ा प्रकाश डालना उचित होगा। अतः अगले अध्याय को पढ़िए।

सरल ताल-चिह्न

पाश्चात्य संगीतज्ञों का विश्वास है कि संगीत में ताल के भाग बराबर-बराबर ही होने चाहिए। ऐसा न हो कि किसी एक खंड में दो मात्राएँ हों, तो दूसरे में तीन। जैसा कि भारतीय संगीत के झपताल आदि में १, २। १, २, ३। आदि के क्रम से स्वरों का विभाजन होता रहता है। उनके विचार से यदि एक खंड में दो स्वर आते हैं, तो प्रत्येक खंड में सदैव दो ही रहने चाहिए। यदि ये तीन या चार हैं, तो सदैव तीन या चार ही रखने चाहिए। अर्थात् प्रत्येक ताल के विभाग में स्वरों का वजन बराबर रहना चाहिए।

अब यहाँ फिर प्रश्न उपस्थित होता है कि यह किस भाँति समझा जाए कि कौनसी रचना कितनी गिनतियों के खंड में लिखी जाएगी। इसके लिए एक बात जो बड़े महत्त्व की है, वह है नाद का छोटा-बड़ापन। जब आप क्रम से १, २। १, २। १, २। १, २। का उच्चारण करते हैं, तो ध्यान से सुनने पर आप देखेंगे कि आप एक की गिनती पर कुछ अधिक जोर देते हैं और दो की गिनती पर कुछ कम।

यदि आप १, २ के स्थान पर १, २, ३। १, २, ३। १, २, ३ आदि बोलते हैं, तो एक पर कुछ अधिक जोर है, दो पर उससे कम और तीन की गिनती पर दो से भी कम, क्योंकि गिनती तीन पर समाप्त हो रही है। इसी प्रकार जब आप १, २, ३, ४। १, २, ३, ४ आदि बोलने लगें, तो देखेंगे कि एक पर जो जोर है, दो पर उससे कम है। और तीन की गिनती पर जो बल है, वह एक से तो कम है, पर दो से कुछ अधिक है। फिर चार की गिनती पर जो बल है, वह दो से भी कुछ कम है।

बल (Accent)

इस प्रकार विदित होगा कि साधारणत: प्रत्येक दो गिनतियों के उच्चारण में प्रथम गिनती पर जो बल या जोर रहता है, दूसरी पर उससे कुछ कम हो जाता है। इसी प्रकार यदि आप एक ही साँस में कुछ गिनतियाँ बोलते चले जाएँ, तो यही क्रम आता रहेगा, परन्तु सबसे अधिक बल एक की गिनती पर ही रहेगा। इस प्रकार के बल का नाम एक्सैन्ट (Accent) कहलाता है। अत: अब आप स्वयं ही यह देखें कि किस रचना को किस प्रकार की स्वरलिपि में लिखने में सुन्दरता रहेगी, उसी के अनुसार दो, तीन या चार स्वरों के अनुसार उनकी स्वरलिपि लिखी जा सकती है। साथ-साथ उन मात्राओं के जो भी भाग किए जाएँगे, उनका संकेत 'की-सिगनेचर' के साथ ही 'समय का संकेत' अर्थात् टाइम-सिगनेचर (Time Signature) के द्वारा भी दे देंगे।

टाइम-सिगनेचर

टाइम-सिगचनेर को प्रकट करने के लिए दो गिनतियों का प्रयोग किया जाता है। जिसमें ऊपर की संख्या प्रत्येक खंड (Bar) में दिए गए स्वरों की गिनती को प्रकट करती है और नीचे की संख्या यह प्रकट करती है कि कितनी-कितनी मात्राओं के स्वर प्रयोग किए गए हैं। उदाहरण के लिए आगे के चित्र देखिए :—

इसका अर्थ हुआ कि एक खंड में दो-दो स्वर आधी-आधी मात्रा के हैं। इसके ही यदि चार-चार स्वरों के खंड करने हों तो टाइम-सिगनेचर को बदलना पड़ेगा, जो इस प्रकार होगा :—
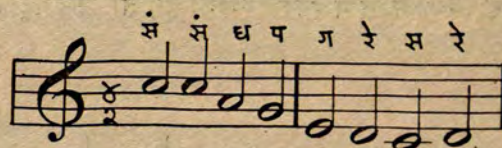
स्वरों को विभाजित करते समय इस बात की ओर ध्यान रखा जाता है कि बार-लाइन (Bar Line) में सबसे प्रथम स्वर पर कुछ अधिक बल रहेगा और उससे अगले स्वरों पर कुछ कम।

बार-लाइन्स (Bar Lines)

ये रेखाएँ स्टाफ की रेखाओं के स्वरों को समानता से विभाजित करनेवाली सीधी खड़ी रेखाएँ होती हैं।

मैजर (Measure)

जो विभाग इन बार-लाइनों के द्वारा बनते हैं, उन्हें मैजर्स (Measures) कहते हैं, और एक मैजर में जितने स्वर रखे जाते हैं, उन्हें बीट्स (Beats) कहते हैं।

साधारण काल (Simple Time)

जब प्रत्येक बीट में सैमी-ब्रीव के साधारण भाग, मिनिम, क्रॉशे या क्वेवर आदि हों, तो उसे सिम्पिल टाइम कहते हैं। इसके तीन प्रकार होते हैं, जो इस प्रकार हैं :—

ड्यूपिल टाइम (Duple Time)

जब एक 'बार' (Bar) में दो स्वर (Beats) हों, तो उसे ड्यूपिल टाइम कहते हैं; जैसे :—

ट्रिपिल टाइम (Triple Time)

जब एक 'बार' (Bar) में तीन स्वर (Beats) हों, तो उसे 'ट्रिपिल टाइम' कहते हैं। जैसे :—
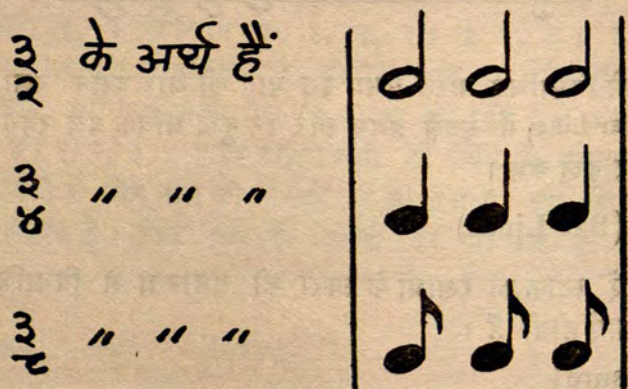
क्वाड्रुपिल् टाइम (Quadruple Time)

जब एक 'बार' (Bar) में चार स्वर (Beats) हों, तो उसे 'क्वाड्रुपिल् टाइम' कहते हैं। जैसे :—

₵ या ४/२ के अर्थ हैं

C या ४/४ " " "

४/८ " " "
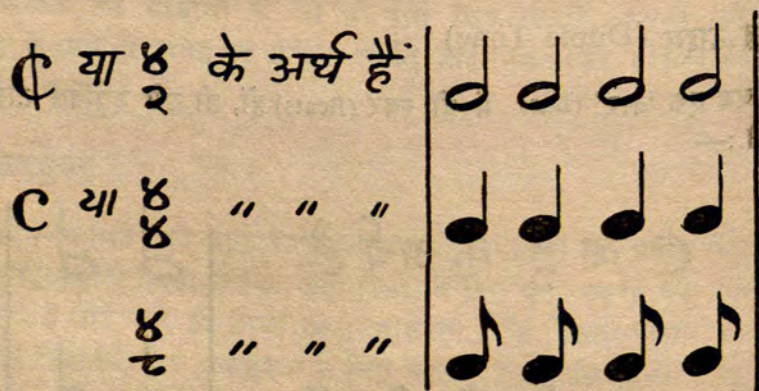
कॉमन टाइम (Common Time)

जब एक 'बार' (Bar) में चार क्रॉशे बीटस हों (जैसे ४/४ में) तो उसे 'कॉमन टाइम' कहते हैं।

यौगिक काल अर्थात् 'कम्पाउण्ड टाइम'

अब तक आपने एक 'बार' (Bar) में एक-एक स्वर रखना सीख लिया; जैसे स स स, परन्तु यदि आपको एक बार (Bar) में सा ऽ ऽ को इस प्रकार लिखना है कि सा एक बजे और दो मात्रा के काल तक उसे लम्बा किया जाए, तो ऊपर के क्रम को बदलना पड़ेगा। ऐसा करने के लिए पाश्चात्य संगीत में बिन्दुओं का उपयोग किया जाता है। यदि किसी स्वर के आगे एक बिन्दु (Dot) लगा दिया जाए, तो उस स्वर का काल ड्योढ़ा हो जाता है। यदि उसी बिन्दु के आगे एक बिन्दु और रख दिया जाए, तो उसमें पहले बिन्दु से आधा काल और जुड़ जाता है। अथवा यों कहो कि उस स्वर में $\frac{3}{4}$ स्वर और जुड़ जाता है। निम्नलिखित तालिका इसे स्पष्ट कर देगी :—

𝅝. *बराबर होगा* 𝅝 + 𝅗𝅥

𝅝.. " " 𝅝 + 𝅗𝅥 + ♩

𝅗𝅥. " " 𝅗𝅥 + ♩

𝅗𝅥.. " " 𝅗𝅥 + ♩ + ♪

♩. " " ♩ + ♪

♩.. " " ♩ + ♪ + 𝅘𝅥𝅯

जब प्रत्येक स्वर (Beat) एक बिन्दु-सहित (Dotted) स्वर के बराबर हो, तो उसे कम्पाउण्ड टाइम (Compound Time) कहते हैं।

यौगिक काल (Compound Time) के भी तीन प्रकार होते हैं, जो आगे दिए जा रहे हैं।
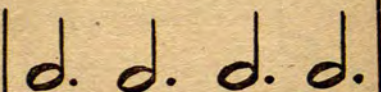
कम्पाउन्ड ड्यूपिल टाइम (Compound Duple Time)

६/४	के अर्थ हैं	𝅗𝅥. 𝅗𝅥.
६/८	" " "	♩. ♩.
६/१६	" " "	♪. ♪.

कम्पाउन्ड ट्रिपिल टाइम (Compound Triple Time)

९/४	के अर्थ हैं	𝅗𝅥. 𝅗𝅥. 𝅗𝅥.
९/८	" " "	♩. ♩. ♩.
९/१६	" " "	♪. ♪. ♪.

कम्पाउन्ड क्वाड्रुपिल टाइम (Compound Quadruple Time)

१२/४	के अर्थ हैं	𝅗𝅥. 𝅗𝅥. 𝅗𝅥. 𝅗𝅥.
१२/८	" " "	♩. ♩. ♩. ♩.
१२/१६	" " "	♪. ♪. ♪. ♪

इस आधार से हम यह कह सकते हैं कि यदि टाइम-सिगनेचर में ऊपर की संख्या छह से कम है, तो सिम्पिल टाइम (Simple Time) है। यदि यह छह या इससे अधिक है, तो कम्पाउन्ड टाइम (Compound Time) है।

जैसा कि हम पिछले अध्याय में बतला आए हैं कि 'बल' (Accent) 'बार' लाइन (Bar) के प्रत्येक प्रारम्भिक स्वर पर होता है, यह सिम्पिल डयूपिल और सिम्पिल ट्रिपिल टाइम में ही लागू है। सिम्पिल क्वाडरुपिल टाइम में प्रत्येक 'बार'(Bar) के

प्रथम स्वर (Beat) पर अधिक 'बल' रहता है और तीसरे स्वर (Beat) पर यह 'बल' कुछ कम हो जाता है। यौगिक काल में प्रथम स्वर पर अधिक बल देकर, शेष प्रत्येक 'बार' (Bar) के प्रथम स्वर पर मध्य 'बल' दिया जाता है।

रिद्म (Rhythm)

जब रचना में स्वरों पर 'बल' एक निश्चित क्रम से आता रहता है, तो उसे 'रिद्म' कहते हैं।

सिन्कोपेशन (Syncopation)

अभी तक आपने देखा कि 'बार' (Bar) के तुरन्त बाद में आनेवाले स्वर पर ही नाद कुछ बड़ा होता है। परन्तु यदि इस प्रारम्भिक स्वर के अतिरिक्त किसी अन्य स्वर का नाद बड़ा कर दें, तो आप देखेंगे कि गति में कुछ वैचित्र्य-सा आ जाता है। इसे ही सिन्कोपेशन (Syncopation) कहते हैं। उदाहरण के लिए नीचे लिखे स्वरों पर जो मोटे टाइप में लिखे हैं, बड़ा नाद कर दीजिए। देखिए, कैसा प्रतीत होता है।

(क) **नि़** सा **नि़** रे **सा** रे **नि़** सा

(ख) नि़ **सा** नि़ सा **रे** नि़ **सा**

इस प्रकार आप देखेंगे कि जिन स्वरों पर बल नहीं होता, उन स्वरों पर बल दे देने से 'सिन्कोपेशन' होता है। ऊपर (ख) उदाहरण में यह स्पष्ट करके दिखाया गया है। इसको प्रकट करने के लिए > या < या ∧ चिह्नों का प्रयोग किया जाता है। चन्द्र (Tie) चिह्न ‿ के द्वारा भी यही क्रिया की जाती है। उदाहरण के लिए भैरवी के स्वरों की एक रचना देखिए :—
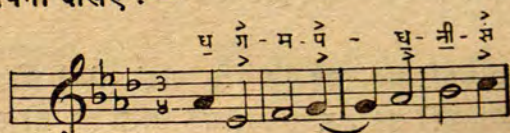
यहाँ जिन-जिन स्वरों पर यह > चिह्न है, उन सब पर नाद कुछ बड़ा करना है। साथ में पा स्वर को दूसरी और तीसरी 'बार' (Bar) में एक चन्द्र के द्वारा जोड़ दिया है। इस चन्द्र का अर्थ है कि प्रथम स्वर को उतने ही काल तक और रोकना है। चन्द्र का चिह्न सदैव दो या दो से अधिक समान नाद के स्वरों पर ही लगाया जाता है।

स्लर (Slur)

जब ⁀ यह चिह्न किसी ऐसे दो या दो से अधिक स्वरों पर लगी हुआ हो, जिनका कि नाद ऊँचा-नीचा हो, तो उसके अर्थ होंगे कि वह सारे स्वर मीड़ की भाँति ही निकलेंगे, अर्थात् बीच में क्रम टूटेगा नहीं। इस चिह्न को 'स्लर' (Slur) कहते हैं। यह सदैव दो-दो स्वरों के ऊपर अलग-अलग लगाना पड़ेगा; जैसे :—

(ठीक तरीका)

(गलत तरीका)

टिकाव (Rest)

यहाँ तक हमने स्वरों को हर प्रकार से लिखने का ढंग बता दिया। इनके अतिरिक्त पाश्चात्य पद्धति में एक विशेष चिह्न और होता है, जो भारतीय पद्धति में नहीं है। वह चिह्न है, बिलकुल शान्त हो जाने का। अर्थात् जितने काल का वह चिह्न है, उतने समय तक न तो कुछ गाना ही है और न बजाना। किन्तु पूर्ण रूप से शान्त रहना है। यह चिह्न कुल छह प्रकार के होते हैं, जो इस प्रकार हैं:—
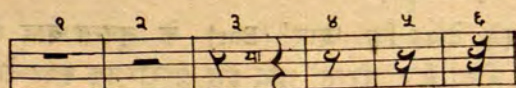
नं० १ को सैमीब्रीव के काल की शान्ति के लिए प्रयोग करते हैं। यह रेखा के नीचे की ओर होता है।

नं० २ को मिनिम के लिए प्रयोग करते हैं। यह रेखा के ऊपर की ओर होता है।

नं० ३ क्रॉशे के लिए है। इसमें एक रेखा के सीधी ओर एक हुक्क-सा (मुड़ी हुई रेखा) होता है।

नं० ४ क्वेवर के लिए है। इसमें रेखा के बाईं ओर एक हुक्क-सा होता है।

नं० ५ सैमीक्वेवर के लिए है। इसमें रेखा के बाईं ओर दो हुक्क-से होते हैं।

नं० ६ डैमी-सैमी-क्वेवर के लिए है। इसमें रेखा के बाईं ओर तीन हुक्क-से होते हैं।

इसमें सैमीब्रीव का टिकाव सदव एक पूरी 'बार' (Bar) की शान्ति के लिए प्रयोग किया जाता है। यदि उसके ऊपर कोई अंक लिखा हो, तो उतनी ही 'बार्स' (Bars) की शान्ति के लिए भी प्रयोग किया जाता है। जैसे:—

टिकाव (Rest) को लम्बा करने के लिए उसके आगे भी बिन्दु रख देते हैं। जैसे यदि हम क्रॉशे के आगे एक बिन्दु रख देंगे, तो उसका मान तीन क्वेवर के टिकाव के बराबर हो जाएगा। आवश्यकता पड़ने पर किसी टिकाव के चिह्न के आगे दो बिन्दु भी रखे जा सकते हैं। इस प्रकार करने से उस टिकाव का काल ३/४ और बढ़ जाता है। अर्थात् प्रथम बिन्दु लगाने से आधा और दूसरे बिन्दु के लग जाने से चौथाई काल और बढ़ जाएगा।

लम्बा करना (Pause)

जब किसी स्वर अथवा टिकाव (Rest) के ऊपर 𝄐 या नीचे 𝄑 लम्बा टिकाव (Pause) का चिह्न लगा हो, तो उसका अर्थ है कि उस स्वर अथवा टिकाव को

कुछ काल तक स्थिर रखना है। कितनी देर तक स्थिर करना है, यह संगीतज्ञ की इच्छा पर निर्भर है।

अधिक लम्बा टिकाव (Lunga Pause)

इसी प्रकार कभी-कभी जब अधिक काल के लिए स्वर अथवा टिकाव को लम्बा करना होता है, तो उसके लिए 'लंगा पौज़'(Lunga Pause) भी लिख देते हैं।

स्टैकैटो (Staccato) अथवा झटके से बजाना

जब एक स्वर को दूसरे स्वर से पृथक् करके बजाया जाए, जैसे एक स्वर को बजाते समय आधी मात्रा में शान्त रहें और आधी मात्रा में उसे बजाएँ, तो इसे 'स्टैकैटो' कहेंगे। इसको तीन प्रकार से बजाया जाता है। एक तो स्वरों के ऊपर डैश (Dash) लगाकर जैसे इसका अर्थ है कि स्वरों को बहुत छोटा करना, दूसरे

न्दु (Dot) लगाकर जैसे इसका अर्थ है कि डैश जितना छोटा नहीं

करना है। और जब एक चन्द्र के नीचे बिन्दु हों, जैसे तो इसका अर्थ है कि लगभग आधा स्वर बजाना है। इसीलिए इसे 'मैज़ो-स्टैकैटो' (Mezzo Staccato) या (Half Staccato) भी कहते हैं।

अब आप नीचे लिखे स्वरों को पढ़िए। प्रत्येक 'बार' (Bar) में केवल पाँच सीधे स्वर 'प ध नि सां रें' हैं। देखिए, केवल टिकाव से ही अथवा उनके काल को बदल-बदल कर कैसे-कैसे सुन्दर रूप बन सकते हैं।
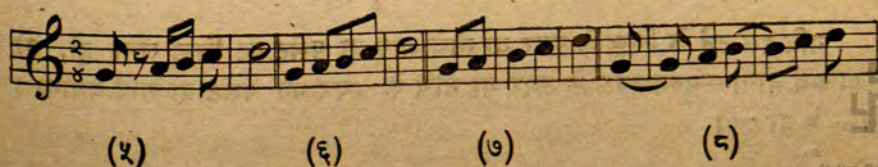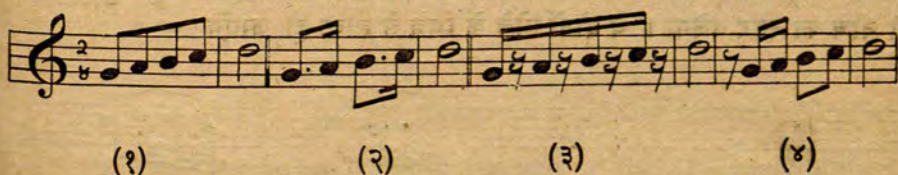
कण स्वर और उनके प्रकार

जो छोटे-छोटे स्वर मुख्य स्वरों के अतिरिक्त उनके ऊपर लिखे रहते हैं, उन्हें कण-स्वर कहते हैं। उनके प्रयोग से स्वर में अधिक मिठास प्रतीत होता है। इनमें मुख्य-मुख्य निम्नांकित हैं :—

एपोगिएचरा (Appo giatura) स्वर, मुख्य स्वर के पहले छोटा-सा लिखा रहता है। यह प्राय: मुख्य स्वर का आधा काल स्वयं ले लेता है। यदि इस स्वर के आगे बिन्दु होता है, तो यह मुख्य स्वर का दो तिहाई काल ले लेता है। यही नहीं, यह मुख्य स्वर से नाद का बड़प्पन भी ले लेता है। अर्थात् इसका नाद मुख्य स्वर से कुछ बड़ा होता है; जैसे :—
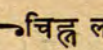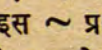
(लिखने का प्रकार) (बजाने का प्रकार) (लिखने का प्रकार) (बजाने का प्रकार)

जब इस छोटेसे स्वर में एक रेखा का चिह्न और लगा दिया जाए, अथवा इस छोटे स्वर का रूप यह ♪ कर दिया जाए, तो इसे एक्कीएकैचुरा (Acciaccatura) कहते हैं। इसका अर्थ है कि इस स्वर को जितनी भी जल्दी हो सके, बजा देना चाहिए। यह स्वर एपोगिएचरा की भाँति मूल स्वर से उनके नाद को भी नहीं लेता। अर्थात् इस स्वर पर नाद बड़ा नहीं किया जाता।

टर्न (Turn)

जब किसी स्वर के ऊपर यह ∽ चिह्न लगा हो, तो इसका अर्थ होगा कि मुख्य स्वर से ऊपर का स्वर, मुख्य स्वर, इससे नीचे का स्वर और मुख्य स्वर (जैसे नि का अर्थ है कि सा नि़ ध़ नि) बजेगा। इसे टर्न (Turn) कहते हैं। जब यह उलटा (Inverted) अर्थात् इस ~ प्रकार का होता है, तो उसका अर्थ है कि पहले मुख्य स्वर से नीचे का स्वर बजेगा। ये दोनों नीचे के चित्र से स्पष्ट हो जाएँगे —

लिखे जाएँगे परन्तु बजेंगे

यदि इस टर्न के चिह्न के ऊपर या नीचे शार्प या फ्लैट का चिह्न लगा हो, तो इसका अर्थ होगा—मुख्य स्वर के ऊपर या नीचे के स्वर को फ्लैट या शार्प बनाना। जैसे—♭ या ~ ।
~ #

जब एक स्वर के बाद दूसरे स्वर को शीघ्रता से बजाना हो, तो उसे ट्रिल या शेक (Trill या Shake) कहते हैं। इसमें लिखा हुआ स्वर तथा उससे ऊपर का स्वर बजेगा; जैसे :—

लिखा जाएगा परन्तु बजेगा

जब यह ट्रिल ऊपर के स्वर से प्रारम्भ होगा, तो ऊपरवाला स्वर छोटा-सा ऊपर लिखा होगा। जैसे :—

लिखा जाएगा परन्तु बजेगा

जब एक लम्बी ट्रिल बजाकर समाप्त की जाती है, तो वह मौरडैन्ट (Mordent) से समाप्त होती है। मौरडैन्ट में चार के स्थान पर जल्दी से तीन स्वर बजाए जाते हैं। यह उलटा (Inverted) भी होता है। इसमें (उलटे में) लिखा स्वर, नीचे का स्वर और फिर मुख्य स्वर बजाया जाता है। इसका चिह्न W यह है। इनवरटैड मौरडैन्ट का चिह्न W यह है। जैसे :—

लिखा जाएगा परन्तु बजेगा

जब किसी एक कॉर्ड के स्वर नीचे से ऊपर की ओर शीघ्रता से एक क्रम बजाए जाएँ, तो उसे चन्द्राकार रेखा से प्रदर्शित करते हैं और इसे आरपाइजिओ (Arpeggio) कहते हैं; जैसे :—
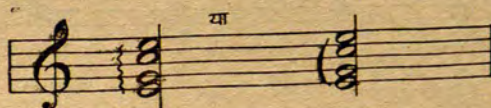
इन चिह्नों के अतिरिक्त जब दुहरी बार-रेखाएँ (Double Bar Lines) आती हैं, तो यह उस संगीत को दो भागों में विभाजित करती हैं; जैसे :—

यदि इन दुहरी बार्स (Double Bars) के किसी ओर

बिन्दु रख दिए जाएँ तो जिस ओर बिन्दु होंगे, उधर की ओर के संगीत को पुनः बजाना है। जैसे :— इसके अतिरिक्त जिस टुकड़े को दो बार बजाना होता है, उसके ऊपर कभी-कभी फर्स्ट-टाइम (1st. Time) और सैकिंड-टाइम (2nd. Time) भी लिख देते हैं। जैसे :—
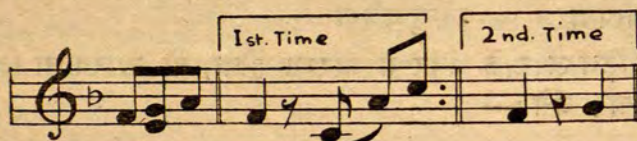
यहाँ जब इस टुकड़े को दुबारा बजाएँगे, तो जिस भाग पर (1st. Time) लिखा है, उसे न बजाकर, उसके स्थान पर उस भाग को, जिस पर (2nd. Time) लिखा है, बजाएँगे।

जब किसी भाग की प्रारम्भ से हो पुनरावृत्ति करनी होती है, तो 'डो० सी०' या 'डा-कैपो' (D.C. या Da Capo) लिख देते हैं।

इसी प्रकार जब 'डी. एस.' या 'डाल-सैगनो' (D.S. या Dal Segno) लिखा हो, तो उसका अर्थ है कि जिस स्थान पर :$: चिह्न है, उस स्थान से पुनरावृत्ति करनी है।

कभी-कभी दो बार्स (Bars) के अन्त में समाप्त (Time) शब्द लिखा रहता है। उसका अर्थ है कि गीत का भाग यहाँ समाप्त हो गया।

कभी-कभी दाहिने हाथ से बजनेवाले संगीत के आगे R. H. या M. D. और बाएँ हाथ से बजनेवाले के आगे L. H. या M. S. लिखा रहता है।

इनके अतिरिक्त कुछ चिह्न नीचे और दिए जा रहे हैं :—

यह निम्न प्रकार से लिखे जाएँगे :—
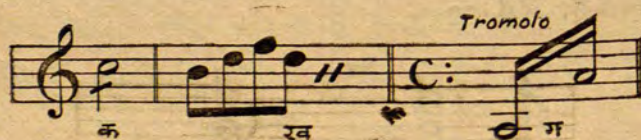
किन्तु निम्न प्रकार से बजेंगे :—
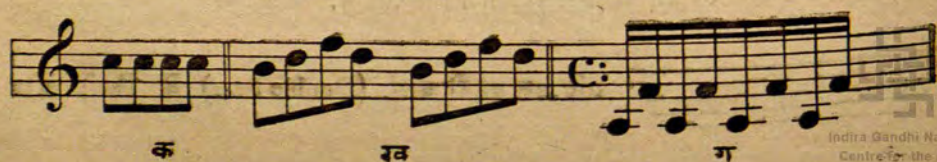
स्वरान्तर

अब तक आप यह अनुभव कर चुके हैं कि पाश्चात्य संगीत में एक स्वर से दूसरे स्वर की छोटी-से-छोटी दूरी को सैमीटोन कहते हैं। जैसे नि़ – सा या ग – म। इसी प्रकार किसी भी एक स्वर से, किसी भी अन्य स्वर तक की दूरी को स्वरान्तर या इण्टरवल (Interval) कहते हैं।

सबसे समीप का स्वरान्तर सैमीटोन है। सैमीटोन दो प्रकार का होता है। एक तो वह, जो भिन्न स्वरों के नाम द्वारा लिखा जाता है, जैसे ग – म। दूसरा वह, जो एक ही स्वर-स्थान पर चिह्न द्वारा लिखा जाए, जैसे ग और ग-शार्प। उदाहरण के लिए नीचे के चित्र में बार (Bar) 'क' में सैमीटोन दो स्थानों पर, दो स्वरों के नाम द्वारा प्रकट किया गया है, जबकि 'ख' बार (Bar) में एक ही स्थान पर उसी स्वर को शार्प के चिह्न द्वारा बदल दिया गया है। नीचे का चित्र देखिए :—

डायटॉनिक सैमीटोन (Diatonic Semitone)

जब सैमीटोन दो रेखाओं अथवा स्थानों के द्वारा प्रकट किया जाए (जैसे 'क' बार में) तो उसे डायटॉनिक सैमीटोन कहते हैं।

क्रोमैटिक सैमीटोन (Chromatic Semitone)

जब किसी एक स्थान पर ही उस स्वर को किसी चिह्न द्वारा बदल दें (जैसे 'ख' बार में) तो उसे क्रोमैटिक (Chromatic) सैमीटोन कहते हैं। क्रोमैटिक का अर्थ है, 'रंगा हुआ' अर्थात् उसी स्वर को शार्प या फ्लैट के चिह्न द्वारा हमने दूसरा स्वर बना दिया।

स्वरान्तर (Interval) सदैव नीचे के स्वर से ऊपर की ओर ही गिना जाता है, जैसे 'सा' से 'रे' दूसरा स्वरान्तर है। इसी प्रकार 'सा' से 'ग' तीसरा और 'सा' से 'म' चौथा स्वरान्तर है। इसी प्रकार प्रत्येक को समझना चाहिए। इन गिनतियों को डिगरी (Degree) भी कहते हैं। कौन स्वर कितनी डिगरी ऊपर है, यह कंठस्थ होना चाहिए, क्योंकि इसी के आधार पर हारमॉनी चलती है।

यह ध्यान रखना चाहिए कि यदि किसी भी एक स्वर को अथवा दोनों को शार्प या फ्लैट कर दिया जाए, तो उनकी गिनतियों में कोई अन्तर नहीं आता। जैसे 'सा'

से 'रे'; 'सा' शार्प से 'रे'; 'सा' से 'फ्लैट रे' अथवा 'सा 'फ्लैट' से 'रे'; यद्यपि समस्त भिन्न स्वर हैं, परन्तु कहलाएँगे सब द्वितीय स्वरान्तर पर ही।

इनमें पहली डिगरी को 'की-नोट' (Key-note) या टॉनिक (Tonic) कहते हैं। कारण कि इसी स्वर के द्वारा स्केल (सप्तक) का नामकरण किया जाता है। जिस प्रधान स्वर से संगीत लिखा गया है, उसे टॉनिक-की (Tonic Key) कहते हैं।

दूसरी डिगरी, जो टॉनिक से आगे की है, उसे सुपर-टॉनिक (Super Tonic) कहते हैं।

इस अगली, अर्थात् तीसरी डिगरी को मीडीएन्ट (Mediant) अर्थात् बीच की कहते हैं। कारण कि यह स्वर टॉनिक (प्रथम स्वर) और डौमीनैन्ट (Dominant) अर्थात् पाँचवें के मध्य में होता है।

चौथे स्वर को सब-डौमीनैन्ट (Sub-dominant) कहते हैं। क्योंकि यह स्वर डौमीनैन्ट से नीचा होता है। इस स्वर का महत्त्व सप्तक में तृतीय है।

पाँचवें स्वर को डौमीनैन्ट (Dominant) अर्थात् राज्य करनेवाला स्वर कहते हैं। यह स्वर टॉनिक स्वर से द्वितीय महत्त्व रखता है।

छठे स्वर को सब-मीडीएन्ट (Sub-mediant) कहते हैं। क्योंकि मीडीएन्ट तो प्रथम (टॉनिक) और पाँचवें के बीच का स्वर था, और यह सब-मीडीएन्ट ऊपर के षड्ज अर्थात् आठवें और पाँचवें स्वर के मध्य का स्वर है।

सातवें स्वर को लीडिंग-नोट (Leading note) कहते हैं। कारण कि इस स्वर का स्वभाव ऊपर की ओर तार षड्ज से मिलने को उत्सुक-सा दिखाई देता है।

यह स्वरान्तर कुल पाँच प्रकार के होते हैं, जो निम्नलिखित हैं :—

परफ़ैक्ट (Perfect) इन्टरवल

चौथा, पाँचवाँ, आठवाँ और यूनीसॉन (Unison) को परफ़ैक्ट इन्टरवल कहते हैं। चौथे, पाँचवें और आठवें स्वरान्तर को ऊपर समझा दिया गया है। जब दो क्लैफ के ऊपर कोई एक ऐसा स्वर आ जाए, जिसके नाम और नाद की ऊँचाई-नीचाई में कोई अन्तर न हो, तो उसे यूनीसॉन कहते हैं। जैसे कोई ऐसा स्वर, जो ट्रैबिल और एल्टी दोनों पर आ जाए। उसे ○◯ या ♮ लिखा जाता है।

मेजर इन्टरवल (Major Interval)

दूसरा, तीसरा, छठा और सातवाँ, मेजर-स्वरान्तर कहलाता है।

माइनर-इन्टरवल (Minor Interval)

जब मेजर इन्टरवल (दूसरे, तीसरे, छठे या सातवें) में एक सैमीटोन की कमी कर दी जाती है, तो वह माइनर इन्टरवल कहलाता है। ऐसा करने के लिए या तो आगेवाले स्वर को एक सैमीटोन गिरा देते हैं, या पहले स्वर को एक सैमीटोन बढ़ा देते हैं। जैसे :—
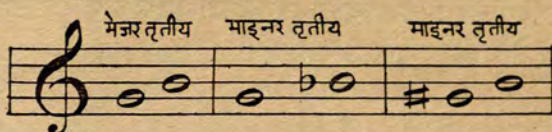
डिमिनिश्ड (Diminished) इन्टरवल

जब माइनर-इन्टरवल या परफैक्ट-इन्टरवल को एक सैमीटोन से कम कर दिया जाए (चाहे नीचे के स्वर को बढ़ाकर या ऊपर के स्वर को घटाकर), तो उसे डिमिनिश्ड-इन्टरवल कहते हैं; जैसे :—
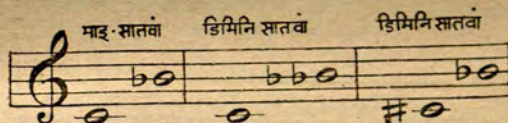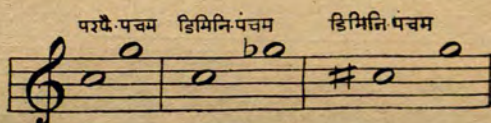
ऑगमैन्टैड (Augmented) इन्टरवल

जब मेजर या परफैक्ट स्वरान्तर को एक सैमीटोन से बढ़ा दें (चाहे नीचे के स्वर को फ्लैट करके या ऊपर के स्वर को शार्प करके), तो यह ऑगमैन्टैड (Augmented) इन्टरवल कहलाता है; जैसे :—
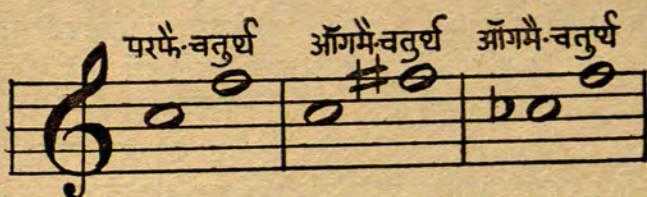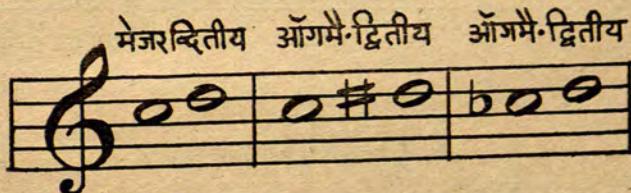
अब हम शुद्ध स्वरों के स्वरान्तर नीचे देते हैं। इन्हें ध्यान से देखिए :—
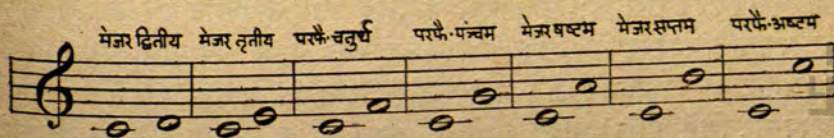
पूर्व-पृष्ठ पर दिए हुए प्रत्येक स्वरान्तर के जो-जो प्रकार बन सकते हैं, नीचे दे रहे हैं। इनका ध्यान से अध्ययन करना चाहिए।
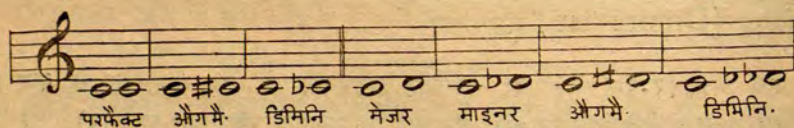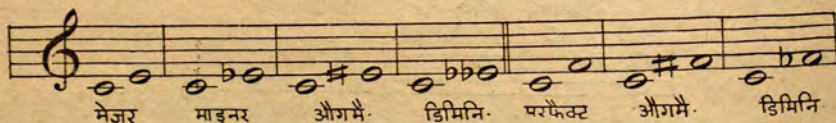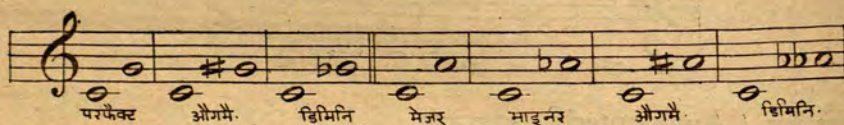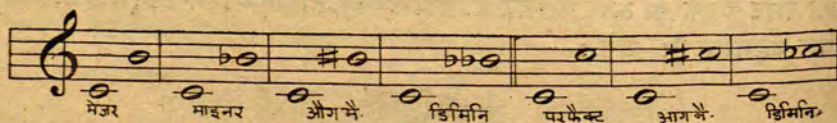
स्वरान्तर

अब तक आप देख चुके हैं कि १. परफैक्ट इन्टरवल को ऑगमैन्टैड या डिमिनिश्ड, दोनों किया जा सकता है। मेजर इन्टरवल को केवल ऑगमैन्टैड किया जाता है, डिमिनिश्ड नहीं, कारण कि यदि उन्हें एक सैमीटोन से कम कर दें तो वे माइनर-इन्टरवल बन जाते हैं। और माइनर इन्टरवल को केवल डिमिनिश्ड ही किया जा सकता है, ऑगमैन्टैड नहीं, क्योंकि उन्हें एक सैमीटोन से बढ़ा देने पर मेजर बन जाते हैं। २. माइनर-द्वितीय का स्वरान्तर वही है, जो डायाटॉनिक स्केल में एक सैमीटोन का है। ३. कोई-कोई स्वरान्तर भिन्न-भिन्न स्वरों के होते हुए भी सैमीटोन की संख्या को बराबर ही रखते हैं; उदाहरण के लिए 'सा' से 'फ्लैट प' तक जो एक डिमिनिश्ड पंचम है, कारण कि उसके बीच में सा, रे, ग, म, प पाँच स्वर आते हैं, यहाँ छह सैमीटोन का अन्तर है। यही छह सैमीटोन का अन्तर ऑगमैन्टैड चतुर्थ अर्थात् 'शार्प-म', जिसे 'फ्लैट' प भी कहते हैं, तक है। क्योंकि 'सा' से 'म' तक सा, रे, ग, म चतुर्थ गिनती पर है।

साधारण (Simple) और कम्पाउन्ड (Compound) इन्टरवल

जब यह स्वरान्तर एक ही सप्तक के अन्दर होते हैं, तो उन्हें सिम्पल इन्टरवल (Simple Interval) कहते हैं। जब यह दूरी एक सप्तक से अधिक की हो जाती है, तो उसे यौगिक (Compound) इन्टरवल कहते हैं। कारण कि उसमें एक सप्तक और जोड़ दिया जाता है। कम्पाउन्ड इन्टरवल में से सात की संख्या घटा देने पर, उसी सप्तक का स्वर मालूम हो जाता है। उदाहरण के लिए ग्यारहवें स्वरान्तर का आशय है (११-७) चौथा। इसी प्रकार तेरहवें का अर्थ है (१३-७) छठा। इसी प्रकार पन्द्रहवें का अर्थ है (१५-७) आठवाँ, अर्थात् तार षड्ज या सप्तक का दुगुना ऊँचा स्वर।

उलटे हुए (Inverted) इन्टरवल

जब किन्हीं दो स्वरों के स्वरान्तर को उलटा कर दिया जाए; अर्थात् ऊपर के स्वर को नीचे के स्वर के नीचे रखकर, या नीचेवाले स्वर को ऊपर के स्वर से ऊपर रखकर, तो इन्हें इनवरटैड (Inverted) इन्टरवल कहते हैं। जैसे; नीचे के चित्र में:—

बिना उलटा उल्टा हुआ उल्टा हुआ
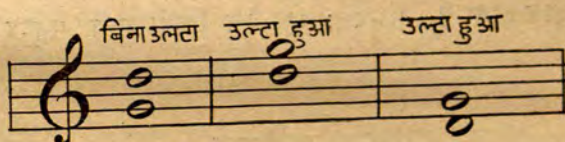
यहाँ इस बात की ओर ध्यान रखना चाहिए कि जिन दो स्वरों के स्वरान्तर ा टना है, उन दोनों उलटे हुए स्वरों का योग नौ होना चाहिए। उदाहरण के लिए 'सा' से 'म' के स्वरान्तर की संख्या चार है। अतः जब इन्हें उलटा करेंगे, तो संख्या (९-४) पाँच हो जाएगी। इसका अर्थ हुआ कि जिस संख्या के स्वर को उलटा किया गया है, उसे नौ में से घटा देने पर उलटे स्वर का इन्टरवल आ जाता है। इसी आधार पर तीसरा स्वर छठा हो जाएगा।

यहाँ यह भी ध्यान रखना चाहिए कि परफैक्ट इन्टरवल उलटने पर भी परफैक्ट ही रहता है। शेष को निम्न प्रकार समझना चाहिए:—

१. मेजर इन्टरवल उलटने पर माइनर बन जाता है।

२. माइनर इन्टरवल उलटने पर मेजर बन जाता है।

३. डिमिनिश्ड इन्टरवल उलटने पर ऑगमैन्टैड बन जाता है।

४. ऑगमैन्टैड इन्टरवल उलटने पर डिमिनिश्ड बन जाता है।

कॉन्सोनैन्स (Consonance)

जब कोई इन्टरवल सुनने में पूर्ण प्रतीत हो और उसे किसी अन्य इन्टरवल की आवश्यकता न हो, तो उसे कॉन्सोनैन्स (Consonance) कहते है।

डिस्सोनैन्स (Dissonance)

जब इन्टरवल सुनने में अपूर्ण-सा सुनाई दे और उसे किसी अन्य स्वर की आवश्यकता प्रतीत हो, तो उसे डिस्सोनैन्स कहते हैं।

इस आधार पर यूनीसॉन, ऑक्टेव, पाँचवाँ और चौथा जो कि परफैक्ट हैं और तीसरा और छठा मेजर तथा माइनर इन्टरवल को पूर्ण (Consonant Interval) कहा जाता है। इनके अतिरिक्त समस्त ऑगमैन्टैड, डिमिनिश्ड और द्वितीय तथा सप्तम मेजर व माइनर इन्टरवल को डिस्सोनैन्ट इन्टरवल (Dissonant Interval) कहा जाता है।

कॉन्सोनैन्ट इन्टरवल उलटने पर कॉन्सोनैन्ट ही और डिस्सोनैन्ट इन्टरवल उलटने पर डिस्सोनैन्ट ही रहते हैं।

यहाँ पूर्णता और अपूर्णता की बात को स्पष्ट समझ लेना चाहिए। उदाहरण के लिए जब आप एकदम 'सा' और 'प' को बजाएँगे, तो सुनने में वह पूर्ण से प्रतीत होंगे। परन्तु इनके स्थान पर यदि आप 'नि' और 'सा' को एक, साथ बजाएँगे, तो ऐसा प्रतीत होगा कि इन दोनों ध्वनियों में कुछ कमी है और यह पूर्ण नहीं हैं। फिर भी यह बात पूर्णतः सत्य नहीं समझी जानी चाहिए। कारण कि जो मेल एक मनुष्य को अपूर्ण प्रतीत होता है, संभवतः वही मेल किसी अन्य मनुष्य को सम्पूर्ण प्रतीत हो रहा हो।

मेजर-स्केल

स्केल (Scale)

स्वरों के रखने के ढंग को 'स्केल' कहते हैं। आप इस क्रम से आरोही अथवा अवरोही, दोनों कर सकते हैं।

स्केल दो प्रकार के होते हैं १. डायाटॉनिक (Diatonic) और २. क्रोमैटिक (Chromatic)। यह दोनों स्केल दो प्रकार के सैमीटोन के आधार से बनाए गए हैं। डायाँटनिक स्केल में टोन और सैमीटोन दोनों का प्रयोग होता है, जबकि क्रोमैटिक म केवल सैमीटोन ही प्रयुक्त होते हैं।

डायाटॉनिक स्केल में भी दो भाग हो जाते हैं, जिनमें एक को मेजर और दूसरे को माइनर स्केल कहते हैं। प्रत्येक स्केल में (हमारे मेल अथवा ठाठ की भाँति) सातों स्वरों का होना आवश्यक है। इसमें स्वर रेखाओं के ऊपर अथवा उनके मध्य में लिखे जाते हैं। सात स्वरों के उपरान्त भी यही क्रम चालू रहता है। परन्तु जब तक इस क्रम में आठवाँ स्वर भी न जोड़ दिया जाए, यह क्रम पूर्ण प्रतीत नहीं होता। इस प्रकार यह आठवाँ स्वर, प्रथम षड्ज का ही दुगुना ऊँचा होता है। इसी प्रकार दसवें स्वर का अर्थ है कि प्रथम सप्तक के (१०-७) तीसरे स्वर का दूना ऊँचा स्वर।

मेजर स्केल (Major Scale)

इसमें टोन और सैमीटोन का क्रम एक विशेष प्रकार से निश्चित होता है। तीसरे और चौथे व सातवें और आठवें स्वरों के बीच में सैमीटोन होता है, तथा शेष स्वरों के बीच में टोन।

'सा' (सी-C) के मेजर स्केल के स्वर शुद्ध-स्वर कहलाते हैं। निम्नांकित चित्र को देखने पर विदित होगा कि इस स्केल के शुद्ध स्वरों में समस्त स्वर सफेद, अर्थात् हारमोनियम के नीचे के ही स्वर प्रयोग में आते हैं।

टैट्राकॉर्ड (Tetra Chord)

यदि इस सप्तक के 'सा रे गा मा' और 'पा धा नी सां' दो भाग कर दें, तो इन टुकड़ों को क्रम से लोअर (Lower) और अपर (Upper) टैट्राकॉर्ड (Tetra Chord) कहेंगे।

अत: 'सा' का मेजर स्केल निम्न प्रकार होगा :—

ज्ञातव्य :

ध्यान रखिए कि भारतीय संगीत के विद्यार्थी को जल्दी समझाने के उद्देश्य से हमने मेजर स्केल का अर्थ 'शुद्ध-स्वर' कर दिया है। जब किसी भी स्वर का मेजर स्केल कहा जाए, तो आप जल्दी समझने के लिए उसी स्वर को 'सा' मानकर उसके शुद्ध स्वर खोज लीजिए।

इस प्रकार जब आप सा (सी-C) मेंजर स्केल देखना चाहें तो अपने सा (सी-C) के शुद्ध स्वर देख लीजिए। इसी प्रकार जब आप से पा (जी-G) के मेजर स्केल के स्वर बजाने को कहा जाए, तो तुरन्त 'पा' को 'सा' मानकर, सम्पूर्ण शुद्ध स्वर बजा डालिए। बस यही आपका पा (जी-G) का मेजर स्केल होगा।

इसी प्रकार यदि आपसे कहा जाए कि ई-फ्लैट (अर्थात् कोमल गान्धार का मेजर स्केल बजाइए। तो आप तुरन्त कोमल गान्धार को 'सा' मानकर जो शुद्ध स्वर हों, बजा दीजिए। बस यही आपके ई-फ्लैट के मेजर स्केल के स्वर होंगे। इसी प्रकार प्रत्येक स्वर के मेजर स्केल को समझिए। इस प्रकार स्वरों को बजाते समय उनमें जो-जो परिवर्तन होते हैं, आप प्राय: उनकी ओर ध्यान नहीं देते। जबकि पाश्चात्य संगीतज्ञ एक सिद्धान्त के आधार पर उन्हें नियम में जकड़ देते हैं।

'सा' (सी-C) का मेजर स्केल इस प्रकार होगा : —
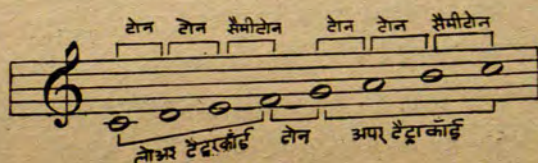
इस प्रकार आप देखेंगे कि लोअर टैट्राकॉर्ड और अपर टैट्राकॉर्ड की बनावट टोन, टोन, सैमीटोन और टोन, टोन, सैमीटोन एक जैसी ही है, जिसमें दोनों टैट्राकॉर्ड्स को एक टोन द्वारा जोड़ दिया गया है। बस इसी आधार पर आपके समस्त स्वरों के मेजर स्केल बनेंगे।

अब यदि हम ऊपर के टैट्राकॉर्ड को नीचे के स्थान पर रख दें और फिर दूसरा टैट्राकॉर्ड इसी प्रकार का बनाकर (उनमें भी टोन, टोन, सैमीटोन हों) टोन द्वारा जोड़ दें, तो यही हमारा दूसरा नया मेजर स्केल होगा।

अब, यदि हम इसी स्केल में अपर टैट्राकॉर्ड को लोअर और लोअर टैट्राकॉर्ड को अपर कर दें, तो इसमें हमारे 'सी-स्केल' के पा-धा-नी-सां तो सा-रे-गा-मा बन जाएँगे, रे स्वर पा बन जाएगा; गा स्वर धा बनेगा और शुद्ध मा कोमल निषाद। परन्तु हमें मेजर स्केल में सात और डिगरी (नम्बर) के स्वरों के बीच में टोन के स्थान पर सैमीटोन की आवश्यकता है। चूँकि कोमल निषाद और षड्ज के बीच की दूरी एक टोन की है, अतः मध्यम स्वर को एक सैमीटोन से शार्प करना पड़ेगा, तभी वह शुद्ध निषाद का काम करेगा। जिसे पाश्चात्य संगीत में इस प्रकार लिखेंगे :—

'जो' का मेजर स्केल
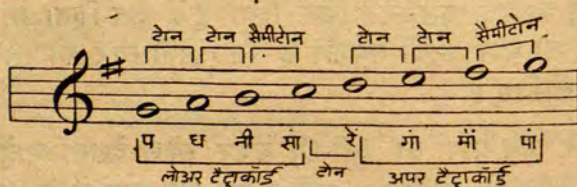
इस प्रकार आप देखेंगे कि इस स्केल का प्रथम स्वर पा (जी-G) है। जैसा कि आप जानते हैं कि प्रथम डिग्री को की-नोट (Key Note) भी कहते हैं। अतः इस स्केल को भी पा (जी-G) का ही मेजर स्केल कहेंगे। दूसरी बात यह ध्यान देने की है कि 'पा' स्वर प्रथम स्केल का पाँचवाँ स्वर है। और तीसरे, इसमें ऊपरवाले टैट्राकॉर्ड को तो ज्यों का त्यों नीचे का टैट्राकॉर्ड बना दिया गया है, और नीचेवाले टैट्राकॉर्ड में तीसरे स्वर को (जो इस स्केल का सातवाँ स्वर बन गया है) एक सैमीटोन से ऊँचा करना पड़ा है, ताकि उस भाग में भी टोन, टोन, सैमीटोन ही रहा आए।

चूँकि इस स्केल में प्रत्येक स्थान पर आनेवाले सातवें स्वर को एक टोन ऊँचा ही बजाना है। अतः शार्प का चिह्न क्लैफ के तुरन्त बाद ही लगाना पड़ेगा, जिसे की-सिगनेचर (Key Signature) कहेंगे और जो आवश्यक (Essential) होगा। क्योंकि आकस्मिक (Accidental) चिह्न तो केवल उसी बार (Bar) और उसी सप्तक में स्वर को फ्लैट या शार्प करता है, जिसमें कि वह लगा हुआ है।

अन्य स्वरों के मेजर स्केल

पहले बताए विवरण के आधार पर अब यदि हम पा (जी-G) के मेजर स्केल के पाँचवें स्वर का मेजर स्केल बनाएँ, तो हमें दो स्वर शार्प करने पड़ेंगे। कारण कि जब पा के मेजर स्केल के अपर टैट्राकॉर्ड को नए स्केल का नीचेवाला (लोअर) टैट्राकॉर्ड बनाएँगे, तो उसमें एक स्वर शार्प किया हुआ तो पहले से ही होगा। फिर सातवें स्वर को एक सैमीटोन से ऊँचा करने के लिए एक शार्प का चिह्न और बढ़ाना पड़ेगा। ध्यान रखिए कि पा के मेजर स्केल का पाँचवाँ स्वर रे (डी-D) है, इसलिए रे (डी-D) का मेजर स्केल इस प्रकार होगा :—

'रे' (डी-D) का मेजर स्केल
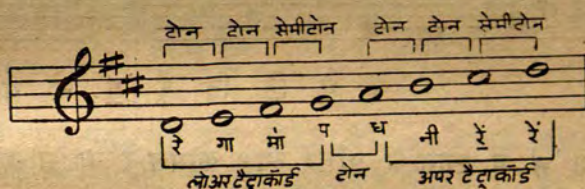
इसी आधार पर इसके पाँचवें स्वर ध (ए-A) का मेजर स्केल बनाते हैं। अब इसमें दो के स्थान पर तीन शार्प हो जाएँगे; जैसे:—

'ध' (ए-A) का मेजर स्केल
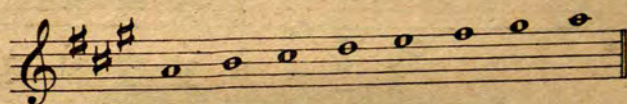
ध नि रे़ रें गं मं धृ धं

इसी प्रकार अब इसके पाँचवें स्वर अर्थात् ग (ई-E) का मेजर स्केल देखिए। इसमें एक स्वर और सातवाँ शार्प करना पड़ेगा। इस प्रकार कुल चार शार्प होंगे।

'ग' (ई-E) का मेजर स्केल
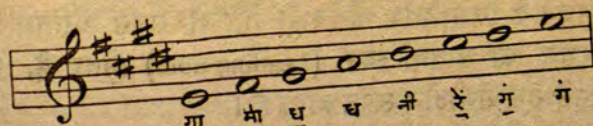
अब इसका पाँचवाँ स्वर नि (बी-B) है। जब इसका मेजर स्केल बनाएँगे, तो एक और शार्प बढ़ जाएगा; जैसे:—

'नि' (बी-B) का मेजर स्केल
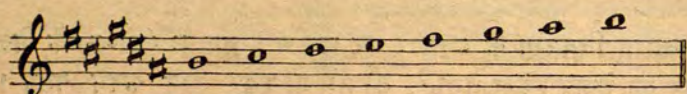
नि रें गं गं मं धं निं निं

अब इस 'नि' के पाँचवें स्वर मं अर्थात् एफ-शार्प (F-Sharp) का मेजर स्केल देखिए। इसमें एक शार्प और बढ़ जाएगा; जैसे :—

तीव्र 'म' (F-Sharp) का मेजर स्केल
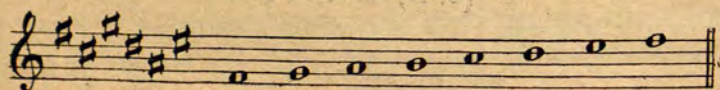
अब इस मं के स्केल के पाँचवें स्वर कोमल रे या सी-शार्प (C-Sharp) का मेजर स्केल देखिए; इसमें एक शार्प और बढ़ेगा।

कोमल 'रे' (C-Sharp) का मेजर स्केल
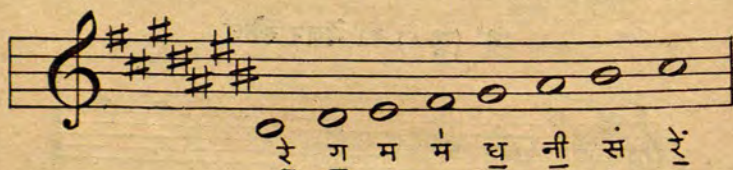
इसी प्रकार से प (जी-G) शार्प; रे (डी-D) शार्प आदि के भी मेजर स्केल बनाए जा सकते हैं। परन्तु इनमें आठ या आठ से भी अधिक शार्प के चिह्नों की आवश्यकता की-सिगनेचर में पड़ेगी जो क्रियात्मक रूप से कभी काम में नहीं लाया जाता। अतः अब हम इसे यहीं समाप्त करते हैं।

यदि आपने ध्यान दिया हो, तो की-सिगनेचर से शार्प-स्केल का की-नोट (Key-note) खोजने के लिए। शार्प के चिह्नों में, जो सबसे अन्तिम चिह्न होता है, वही स्वर उस स्केल का सातवाँ स्वर (Leading note) होता है, अर्थात् की-नोट (Key-note) उससे एक सैमीटोन ऊपर होता है।

अब तक आपने शार्प-चिह्नों के आधार से मेजर स्केल का बनाना सीखा। अब फ्लैट (Flat) के चिह्नों की सहायता से मेजर स्केल बनाना प्रारम्भ करते हैं। यहाँ एक

बात ध्यान देने की है कि अब तक तो हमने सा के शुद्ध (Natural) स्केल में ऊपर के चार स्वरों को अर्थात् प-ध-नि-सां को नीचे का टैट्राकॉर्ड बनाकर और ऊपर एक नवीन प्रकार का टैट्राकॉर्ड जोड़कर नया मेल अर्थात् स्केल बनाया था। परन्तु अब हम इसका उलटा करेंगे अर्थात् 'सी' मेजर स्केल के नीचे के स्केल टैट्राकॉर्ड को ही ऊपर जोड़ देंगे और नीचे के टैट्राकॉर्ड में नवीन स्वर रखकर फिर मेजर स्केल बनाना प्रारम्भ करते हैं। इस प्रकार अब हम सा-रे-ग-म से प-ध-नि-सां का काम लेंगे, जबकि अब तक प-ध-नि-सां से सा-रे-ग-म का काम लिया था। अतः अब सर्व-प्रथम म अर्थात् एफ (F) का मेजर स्केल बनाते हैं:—
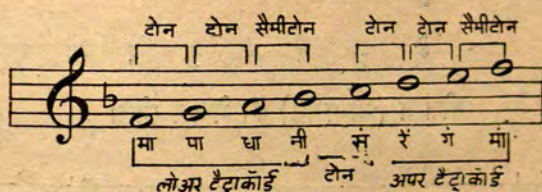
ध्यान देने पर यहाँ दो बातें विशेष रूप से दिखाई देती हैं—१. पुराने स्केल का प्रारम्भिक स्वर अर्थात् 'की-नोट' इस स्केल का पाँचवाँ स्वर बन गया और २. तीसरे और चौथे स्वरों के मध्य में सैमीटोन का अन्तर रखने के लिए तथा अपर व लोअर टैट्राकॉर्ड के मध्य में टोन लाने के लिए चतुर्थ स्वर को एक सैमीटोन से नीचा करना पड़ा, जो कि 'की-सिगनेचर' में सम्मिलित हो गया। अब इसी क्रम से बी-फ्लैट (कोमल नि); ई-फ्लैट (कोमल ग); ए-फ्लैट (कोमल ध); डी-फ्लैट (कोमल रे); जी-फ्लैट (तीव्र म) और सी-फ्लैट (नि शुद्ध) के मेजर स्केल इस प्रकार बनेंगे :—

कोमल नि (बी-फ्लैट) का मेजर स्केल
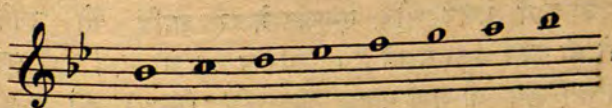
नि सां रें गं मं पं धं निं

कोमल ग (ई-फ्लैट) का मेजर स्केल
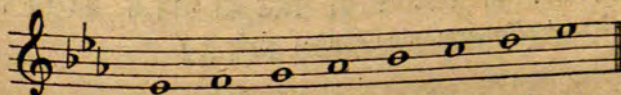
ग म प ध नि सां रें गं

कोमल ध (ए-फ्लैट) का मेजर स्केल
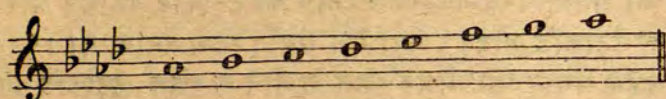
ध॒ नि॒ सां रें॒ गं॒ मं पं धं॒

कोमल रे (डी-फ्लैट) का मेजर स्केल
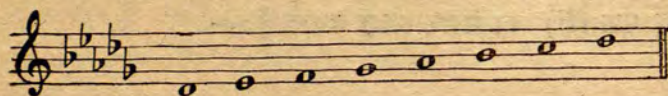
रे॒ ग॒ म मं ध॒ नि॒ सां रें॒

तीव्र म (जी-फ्लैट) का मेजर स्केल
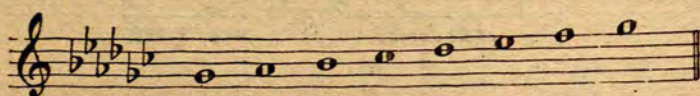
मं ध॒ नि॒ नि रें॒ गं॒ मं मंं

शुद्ध नि (सी-फ्लैट) का मेजर स्केल

नि़ रे॒ ग॒ ग मं ध॒ नि॒ नि

इसी प्रकार एफ-फ्लैट, बी-डबल-फ्लैट आदि का मेजर स्केल बनाया जा सकता है। किन्तु चूँकि उसमें आठ या आठ से अधिक फ्लैट के चिह्नों की 'की-सिगनेचर' में आवश्यकता होगी, अतः उनको प्रयोग में नहीं लाया जाता।

यदि हम जी-शार्प मेजर और ए-फ्लैट मेजर आदि को उनके दूसरे रूपों में बदल लें, तो भी काम चला सकते हैं। कारण कि जी-शार्प वही स्वर है, जो ए-फ्लैट है। इसलिए हम जी-शार्प मेजर की 'की' (Key) को ए-फ्लैट मेजर में परिवर्तित करके काम चला सकते हैं। ऐसा करने पर हमारी स्वरलिपि तो भिन्न ही दिखाई देगी, परन्तु स्वरों में कोई अन्तर न होगा। ठीक इसी प्रकार 'एफ-फ्लैट मेजर' को 'ई-मेजर' में या 'सी-फ्लैट मेजर को 'बी-मेजर' आदि में परिवर्तित करके काम निकाल सकते हैं।

इस प्रकार शार्प को फ्लैट में या फ्लैट को शार्प में बदलने की क्रिया को 'एनहारमॉनिक चेञ्ज' (Enharmonic change) कहते हैं।

आगे हम इन एनहारमॉनिक स्वरों की तालिका दे रहे हैं। इसे कंठस्थ करने की आवश्यकता नहीं, वरन् साधारण दृष्टि से देख लेना ही पर्याप्त है।

(क)				(ख)
एफ-मेजर का एनहारमॉनिक (१ फ्लैट)		....	....	ई-शार्प मेजर है (११ शार्प)
बी-फ्लैट (२ फ्लैट)	"	....	....	ए-शार्प मेजर (१० शार्प)
ई-फ्लैट (३ फ्लैट)	"	....	....	डी-शार्प मेजर (९ शार्प)
ए-फ्लैट (४ फ्लैट)	"	....	....	जी-शार्प मेजर (८ शार्प)
डी-फ्लैट (५ फ्लैट)	"	....	....	सी-शार्प मेजर (७ शार्प)
जी-फ्लैट (६ फ्लैट)	"	....	....	एफ-शार्प मेजर (६ शार्प)
सी-फ्लैट (७ फ्लैट)	"	....	....	बी-मेजर (५शार्प)
एफ-फ्लैट (८ फ्लैट)	"	....	....	(ई-मेजर) (४ शार्प)

दूसरे शब्दों में इसे ऐसे समझिए कि तालिका 'क' और 'ख' में आए हुए स्वरों में कोई अन्तर नहीं है, वरन् पाश्चात्य संगीत के अनुसार उनके नामों में अन्तर है।

आप ऊपर यह भी देखेंगे कि यदि किसी भी 'की-सिगनेचर' (Key Signature) में दी हुई शार्प-स्वरों की संख्या को बारह में से घटा दें, तो जो संख्या बचेगी, उसके एनहारमॉनिक स्वर के 'की-सिगनेचर' में वही संख्या फ्लैट स्वरों की होगी। ठीक यही बात फ्लैट के विषय में भी समझनी चाहिए। उदाहरण के लिए डो-फ्लैट मेजर में पाँच फ्लैट स्वर हैं, तो उसके एनहारमॉनिक स्वर में जो कि सी-शार्प' है, शार्प-स्वरों की संख्या (१२-५=७) सात होगी।

यहाँ दो बातें और ध्यान देने की हैं—१. किसी स्केल का चौथा स्वर आनेवाले स्केल का की-नोट (Key Note) होगा; २. 'की-सिगनेचर' में फ्लैट के लगे हुए जो चिह्न हैं, उनमें सबसे अन्तिम से पहला फ्लैट के चिह्नवाला स्वर, उस स्केल का की-नोट (Key Note) होगा।

माइनर स्केल

जैसा कि हम पिछले अध्याय में बतला आए हैं कि जब किसी भी मेजर स्वरान्तर को एक सैमीटोन कम कर देते हैं, तो वह माइनर स्वरान्तर (Minor Semitone) हो जाता है। चूंकि इस स्केल (मेल) में 'की-नोट' (अर्थात् सा) से तृतीय स्वर का अन्तर 'माइनर' होता है, अतः इस स्केल को माइनर स्केल कहते हैं।

यद्यपि मेजर स्केल दो शताब्दी से एक ही रूप में चला आ रहा है, परन्तु इस स्केल में कई बार परिवर्तन हो चुका है। इसका सबसे प्राचीन रूप यूनानियों में 'चर्च-स्केल' या 'मोड्स' (Modes) के नाम से प्रचलित है, जिसका स्वरूप इस प्रकार था :—

ए-माइनर का प्राचीन स्केल
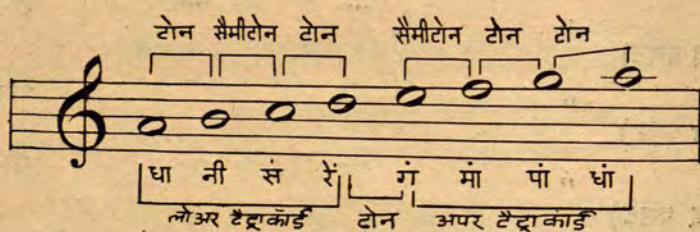
यहाँ आप यदि प्रारम्भिक स्वर को अपनी पद्धति का 'सा' मान लें, तो हमारी दृष्टि से यह आसावरी ठाठ के स्वर हैं। यहाँ पर एक बात विशेष रूप से देखने की है कि 'धा को प्रारम्भ का स्वर मानकर, समस्त शुद्ध स्वर अर्थात् हारमोनियम के सफेद-सफेद स्वरों (पर्दों) का ही उपयोग किया गया है। साथ-साथ आप यह भी देखेंगे कि सातवें और आठवें स्वर के बीच का अन्तर एक टोन है। जबकि अब तक के समस्त मेल (Scale) बनाते समय वह अन्तर सैमीटोन था, और आधुनिक मेली के अनुसार भी एक सैमीटोन ही होना चाहिए। अतएव प्राचीन माइनर स्केल को आधुनिक रूप देने के लिए उसमें सातवें और आठवें स्वर के अन्तर को एक सैमीटोन करके उसका नाम हारमॉनिक माइनर स्केल (Harmonic Minor Scale) रख दिया। इसे दो प्रकार से किया जा सकता है। सबसे सरल विधि तो यही है कि सातवें स्वर को एक सैमीटोन से ऊँचा कर दिया जाए; जैसे:—

ए-माइनर का हारमॉनिक स्केल
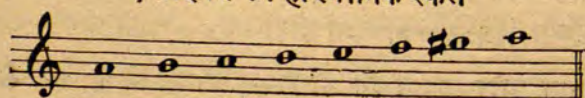
परन्तु सातवें स्वर को एक सैमीटोन से बढ़ा देने पर यहाँ छठे और सातवें स्वरों के मध्य की दूरी डेढ़ टोन हो गई। प्राचीन संगीत में यह क्रम गायन में कुछ कठिन होने के कारण छोड़ दिया गया था, अत: इसे वर्जित रखा। किन्तु जब वाद्यों पर बजाने में इसमें अधिक असुविधा उत्पन्न न हुई, तो हारमॉनिक माइनर स्केल का भी खूब प्रचार बढ़ा और यह अब भी खूब प्रचलित है।

साथ-साथ छठे और सातवें स्वर के अन्तर के डेढ़ टोन की कठिनाई को दूर करने के लिए मैलॉडिक माइनर स्केल (Melodic Minor Scale) बनाना पड़ा। इसका नाम मैलॉडिक इस कारण से रखा कि इसका प्रयोग मुख्यतया मैलॉडी बनाने में

ही किया जाता है। जबकि हारमॉनिक का कार्ड बनाने में, अर्थात् इसका हारमॉनी में ही अधिक प्रयोग होता है।

इस प्रकार मैलॉडिक-माइनर-स्केल में यह विशेषता हो गई कि सातवें और आठवें स्वरों के मध्य में सैमीटोन लाने के लिए केवल आरोही में, छठे और सातवें स्वरों को एक-एक सैमीटोन से ऊँचा करना पड़ा और अवरोही में उन्हें पुनः शुद्ध स्थान पर ले आए। इस प्रकार इस स्केल के आरोही के स्वर अवरोही से भिन्न हो गए; जैसे :—

ए-माइनर का मैलॉडिक स्केल
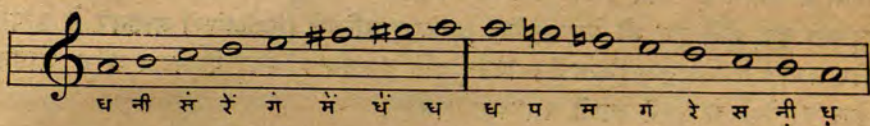
इस स्केल में आप देखेंगे कि आरोही में तो द्वितीय व तृतीय और सप्तम व अष्टम के मध्य में सैमीटोन है (यदि आप इस धा को अपना सा मान लें, तो ये स्वर सा रे ग॒ म प ध नि सां होंगे) और अवरोही में सैमीटोन का अन्तर द्वितीय व तृतीय और पंचम व षष्ठ के मध्य होगा। (यदि आप 'ध' को 'सा' मान लें तो अवरोही में यही स्वर सां नि॒ ध॒ प म ग॒ रे सा होंगे) इस प्रकार माइनर-मैलॉडिक स्केल की अवरोही का रूप वही होगा, जो कि प्राचीन माइनर स्केल का था।

हमने यहाँ यह भी देखा कि 'ए' माइनर का प्राचीन स्केल समस्त शुद्ध स्वरों पर ही बना हुआ है। अर्थात् इसमें फ्लैट या शार्प नहीं हैं। चूँकि हारमॉनिक अथवा मैलॉडिक रूप हमने इसी प्राचीन स्केल के आधार पर बनाए हैं। अतः हारमॉनिक स्केल के सातवें स्वर पर, और मैलॉडिक स्केल के छठे व सातवें स्वर पर, आरोही में शार्प करने के लिए जिन चिह्नों का प्रयोग किया गया है, उन्हें आकस्मिक रूप से अर्थात् एक्सीडैन्टल शार्प (Accidentally Sharpened) किए गए कहेंगे। इस प्रकार इन चिह्नों को एक्सीडैन्टल कहेंगे और इन्हें की-सिगनेचर (Key Signature) में नहीं लगाएँगे। इसी तरह मैलॉडिक स्केल की अवरोही में जो शुद्ध रूप देने वाले चिह्न हैं, उनको भी एक्सीडैण्टल की भाँति ही प्रयोग करेंगे।

अब चूँकि प्राचीन ए-माइनर का स्केल और सी-मेजर का स्केल दोनों की रचना इस प्रकार की है कि उनके 'की-सिगनेचर' में न तो फ्लैट का चिह्न है और न शार्प का। अतः इस प्रकार के स्केलों में 'ए-माइनर' को 'सी-मेजर' का रिलेटिव-माइनर (Relative Minor of C Major) और 'सी-मेजर' को 'ए-माइनर' का रिलेटिव मेजर (Relative Major of A Minor) कहते हैं।

यहाँ तनिक ध्यान देने से आपको विदित होगा कि 'सी-मेजर' का छठा स्वर 'ए-माइनर' का की-नोट (Key Note) अर्थात् प्रारम्भिक स्वर है। इसी सिद्धान्त के अनुसार किसी भी मेजर स्केल का छठा स्वर, उसके रिलेटिव-माइनर का प्रारम्भिक स्वर अर्थात् की-नोट (Key-note) होता है।

इसी प्रकार आप यह भी देखेंगे कि किसी भी माइनर स्केल का तृतीय स्वर उसके रिलेटिव-मेजर का प्रारम्भिक स्वर (Key-note) होता है।

अतएव इससे हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि उन समस्त मेजर और माइनर स्केलों के 'की-सिगनेचर' (Key Signaturs) के चिह्न एक समान ही होंगे, जो आपस में इस प्रकार सम्बन्धित हैं :—

रिलेटिव मेजर अथवा माइनर स्केल के अर्थ केवल इतने ही समझने चाहिए कि जो स्केल इस प्रकार आपस में सम्बन्धित हैं, उनमें अन्य स्केलों की अपेक्षा स्वर अधिक संख्या में समान हैं और उनके 'की सिगनेचर' के चिह्न भी एक-जैसे ही हैं। परन्तु यह सब कुछ होते हुए भी मेजर-स्केल उसके सम्बन्धित (Relative) माइनर से उत्पत्ति और प्रभाव में बिलकुल भिन्न हैं। किन्तु यदि हम एक ही स्वर के मेजर और माइनर स्केल को देखें तो उनमें काफी समानता पाएँगे।

उदाहरण के लिए यदि 'सी' के माइनर और मेजर स्केल की तुलना करेंगे, तो देखेंगे कि प्रारम्भिक स्वर (Key-note) को मिलाकर पाँच स्वर समान हैं।

जब एक माइनर स्केल का प्रारम्भिक स्वर वही हो, जो एक मेजर स्केल का, तो उसे उस स्केल का टॉनिक-माइनर (Tonic Minor) कहते हैं। यद्यपि इसमें 'की-सिगनेचर' (Key Signature) समान नहीं होते। माइनर स्केल के 'की-सिगनेचर' में उसी के टॉनिक-मेजर (Tonic Major) स्केल के स्वरों में या तो तीन शार्प कम होते हैं, या तीन फ्लैट अधिक।

उदाहरण के लिए 'सी-शार्प-मेजर' के स्केल में सात शार्प हैं। अतः 'सी-शार्प-माइनर' में सात के स्थान पर (७–३=४) चार शार्प स्वर होंगे। इसी प्रकार 'ई-फ्लैट-मेजर' में तीन फ्लैट हैं, तो 'ई-फ्लैट-माइनर' (३+३=६) छह स्वर फ्लैट होंगे।

पिछले अध्यायों में हमने मेजर स्केल बनाने का क्रम विस्तार से दिया है। अधिकांश रूप में माइनर स्केल भी उसी प्रकार बनाए जाते हैं। अब तक हमने शार्प-स्वरों के मेजर स्केल बनाने के लिए एक स्केल के ऊपर के टैट्राकॉर्ड को लेकर उसके ऊपर एक अन्य टैट्राकॉर्ड जोड़ा था। फ्लैट का क्रम बनाते समय नीचेवाले टैट्राकॉर्ड को लेकर, उनके नीचे एक और टैट्राकॉर्ड जोड़ा था। यहाँ पर दो बातें विशेष रूप से ध्यान देने की हैं। प्रथम यह कि मेजर स्केल की भाँति माइनर स्केल के दोनों टैट्राकॉर्ड समान नहीं हैं। अतः नवीन स्केल बनाते समय हम जो भी टैट्राकॉर्ड लेंगे, उसमें कुछ परिवर्तन करना ही पड़ेगा। और द्वितीय यह कि हारमॉनिक माइनर स्केल बनाते समय सातवें स्वर को एक सेमीटोन से आकस्मिक रूप से (Accidentally) शार्प करना पड़ेगा और मैलॉडिक स्केल बनाते समय छठे और सातवें स्वर को एक-एक सैमीटोन से आरोही में शार्प करना पड़ेगा और अवरोही में उन्हें पुनः शुद्ध रूप में रखना होगा।

इसे और अधिक स्पष्ट करने के लिए हम ई-माइनर का स्केल बनाते हैं। इसके लिए हम प्राचीन ए-माइनर का ऊपर का टैट्राकॉर्ड लेते हैं। इसके ऊपर एक नया टैट्राकॉर्ड जिसमें सैमीटोन, टोन और टोन हों और जोड़ देते हैं। अब चूँकि 'ई' (गा), जी (पा) मेजर का छठा स्वर है, अतः दोनों एक-दूसरे से सम्बन्धित स्केल हैं। इसलिए इनके 'की-सिगनेचर' में एक शार्प होगा। यह शार्प दूसरे नम्बर (डिगरी) के स्वर को एक सैमीटोन बढ़ा देगा, या यह कहें कि नवीन स्केल बनाने के लिए ऊपर के टैट्राकॉर्ड को उपयुक्त बना देगा। इस प्रकार ई-माइनर का प्राचीन स्केल इस प्रकार होगा :—

ई-माइनर स्केल का प्राचीन रूप
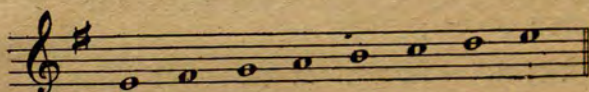
इस प्रकार जब हमने 'ई-माइनर' का प्राचीन स्केल बना लिया, तो अब इसी में सातवें स्वर को आकस्मिक रूप से (Accidentally) शार्प करके इसका हारमॉनिक रूप बनाया जा सकता है, जो इस प्रकार होगा :—

ई-माइनर स्केल का हारमॉनिक रूप
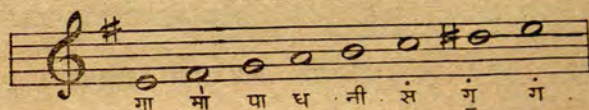
जब इसी का मैलॉडिक स्केल बनाएँगे, तो आरोही में छठे और सातवें स्वरों को आकस्मिक रूप से शार्प कर देंगे और अवरोही में उन्हें पुनः शुद्ध रूप में परिवर्तित कर देंगे; जैसे :—

ई-माइनर स्केल का मैलॉडिक रूप
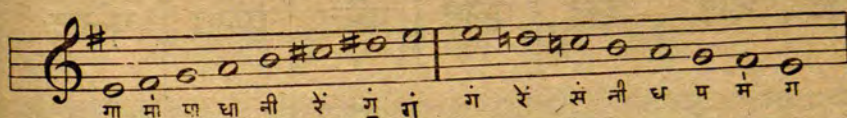
यदि इस सिद्धान्त को याद कर लिया जाए, तो इसी प्रकार 'की-सिगनेचर' में शार्प स्वरों के क्रम से माइनर स्केल बनाए जा सकते हैं।

अब पुनः माइनर स्केल के फ्लैट के स्वरों के आधार से प्रत्येक स्वर के माइनर स्केल बनाने के उदाहरण के लिए पुराने स्केल का नीचे का टैट्राकॉर्ड लेते हैं; जिसमें नीचे की ओर एक और टैट्राकार्ड (टोन, सैमीटोन, टोन का बना हुआ) मिलाते हैं। देखिए :—

डी-माइनर स्केल का प्राचीन रूप
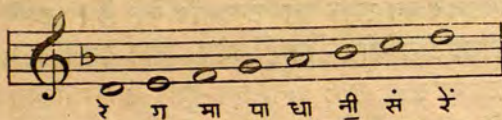
चूंकि डी (रे) स्वर एफ (म) मेजर स्केल का छठा स्वर है। अतः डी-माइनर का स्केल उससे सम्बन्धित है। अतः दोनों के 'की-सिगनेचर' में केवल एक ही फ्लैट का चिह्न होगा। यह फ्लैट का चिह्न डी-माइनर स्केल के दूसरे टैट्राकॉर्ड में छठे स्वर को एक सैमीटोन नीचा कर देगा।

नीचे का चित्र प्रत्येक मेजर स्केल से सम्बन्धित माइनर स्केल के 'की-सिगनेचर' की समानता को प्रकट कर देगा; देखिए :—

मेजर और उससे सम्बन्धित माइनर 'की' (Keys)

जी-मेजर	डी-मेजर	ए-मेजर	ई-मेजर	बी-मेजर	एफ# मेजर	सी# मेजर
१ शार्प	२ शार्प	३ शार्प	४ शार्प	५ शार्प	६ शार्प	७ शार्प
ई-माइनर	बी-माइनर	एफ# माइनर	सी# माइनर	जी# माइनर	डी# माइनर	ए# माइनर

अब इसी प्रकार फ्लैट के क्रम को भी देखिए :—

क्रोमैटिक स्केल (Chromatic Scale)

इसमें समस्त स्वर एक-एक ही सैमीटोन की दूरी पर रखे जाते हैं। चूंकि एक सप्तक में कुल बारह ही स्वर होते हैं, अतः उसी क्रम से रखने की क्रिया को क्रोमैटिक स्केल कहते हैं। इसमें एक ही नाम के दो-दो स्वर भी

आ जाते हैं। जैसे 'सी' और 'सी-शार्प' या 'डी' और 'डी-शार्प' आदि। यदि इस स्केल को बारह स्वरों से अधिक ऊपर ले जाना हो, तो आगे आनेवाले स्वर पहले-से ही स्वरों के ठीक दुगुने ऊँचे होंगे। जैसे पन्द्रहवाँ स्वर तृतीय स्वर का ठीक दुगुने ऊँचे-वाला स्वर होगा।

क्रोमैटिक स्केल को प्राय: मेजर स्केल के स्वरों के आधार पर ही बनाते हैं। मेजर स्केल के स्वरों में जो भी स्थान बाकी रहते हैं, उन्हें आरोही में शार्प अथवा शुद्ध स्वरों के चिह्नों द्वारा एक-एक सैमीटोन की दूरी पर कर दिया जाता है। अवरोही में भी फ्लैट अथवा शुद्ध स्वरों के चिह्नों के द्वारा स्वरों की दूरी को एक-एक सैमीटोन कर दिया जाता है। उदाहरण के लिए 'सी' के मेजर स्केल में 'सी' से अगला स्वर एक टोन की दूरी पर 'डी' स्वर है। क्रोमैटिक स्केल बनाते समय 'सी' से 'डी' की दूरी में आरोही में 'सी' को शार्प कर देंगे और अवरोही में 'डी' को फ्लैट। नीचे के चित्र से यह स्पष्ट हो जाएगा। इसमें खाली स्वर 'सी' के मेजर स्केल के हैं और भरे हुए स्वर सैमीटोन की दूरी करने के लिए बढ़ाए गए हैं।

'सी-मेजर-की' का क्रोमैटिक स्केल
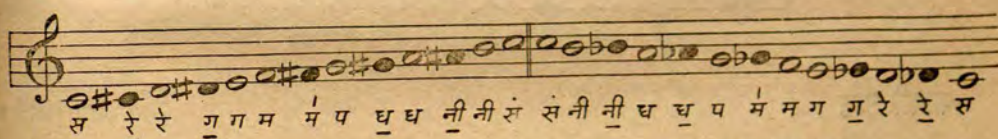
यदि 'की-सिगनेचर' (Key Signature) में शार्प या फ्लैट के चिह्न न दिए गए हों, तो टोन के बीच में सैमीटोन करने के लिए आरोही में शार्प तथा अवरोही में फ्लैट के चिह्न लगाकर ही क्रोमैटिक स्केल बनाते हैं। परन्तु यदि 'की-सिगनेचर' में कुछ चिह्न दिए गए हैं, तो उन चिह्नों को उसी प्रकार रखते हैं; अर्थात् उनमें कोई परिवर्तन नहीं करते। जैसे बी-फ्लैट-मेजर का क्रोमैटिक स्केल देखिए :—
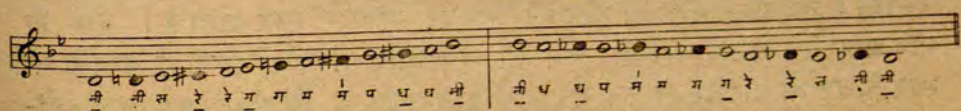
ठाठ व रागों का स्वरांकन

अब तक आपने वे समस्त बातें जो पाश्चात्य संगीत में आवश्यक थीं, समझ लीं। अब भारतीय संगीत को पाश्चात्य पद्धति में लिखना तथा पाश्चात्य संगीत को भारतीय पद्धति में लिखने के क्रम को और स्पष्ट करते हैं। चूँकि पाश्चात्य पद्धति में हिन्दुस्तानी संगीत-पद्धति की भाँति ठाठ नहीं हैं, अतएव जो भी गीत-रचना अथवा धुन जिस स्वर से प्रारम्भ होती है, उस धुन का 'की-नोट' प्रारम्भ में देते हैं। परन्तु हमारे यहाँ षड्ज को ही प्रत्येक धुन-रचना अथवा गीत के लिए प्रारम्भिक स्वर मानते हैं, अत: हम उसी आधार से अपने ठाठों की रचना करेंगे। सर्व प्रथम बिलावल ठाठ को ही लीजिए; इसे इस प्रकार लिखेंगे :—

बिलावल ठाठ
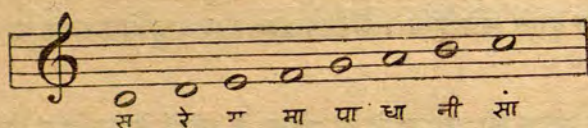
खमाज ठाठ

जब इन्हीं स्वरों में कोमल निषाद आ जाता है, तो यह खमाज ठाठ बन जाएगा। ऐसा करने के लिए जिस स्थान पर निषाद का स्वर है, वहीं 'की-सिगनेचर' में कोमल का चिह्न कर देंगे। ऐसा करने से उस समस्त रचना में जहाँ भी निषाद स्वर आएगा, वही एक सैमीटोन नीचा अर्थात् कोमल बजेगा; जैसे :—

खमाज ठाठ
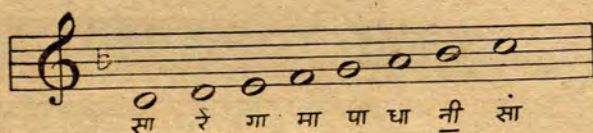
काफी ठाठ

आप सोचते होंगे कि बिलावल में कभी-कभी कोमल निषाद और खमाज की आरोही में तीव्र निषाद का प्रयोग होता है, फिर उन्हें कैसे लिखा जाएगा ? इसके लिए जब हम इन रागों की रचनाएँ लिखना सिखाएँगे, तब इसे स्पष्ट कर देंगे। अभी आप केवल ठाठों के स्वर लिखना सीख लीजिए। पहले खमाज में ही एक स्वर 'गा' और कोमल करके काफी ठाठ बना लीजिए। ऐसा करने के लिए जिस स्थान पर गान्धार का स्वर है, आप फ्लैट का चिह्न लगा दीजिए। आप देखेंगे कि इन पाँच रेखाओं में सर्व प्रथम नीचे की ओर की रेखा पर गान्धार स्वर आता है। साथ ही यदि आप नीचे से ऊपर की ओर चलें, तो चौथी और पाँचवीं रेखाओं के मध्य में जो स्वर है, वह भी गान्धार ही है। अब यहाँ प्रश्न उठता है कि फ्लैट का चिह्न नीचे-वाली प्रथम रेखा पर लगाएँ या नीचे से ऊपर की ओर चौथी और पाँचवीं रेखाओं के मध्य में। आप देखेंगे कि दृष्टि ऊपर की ओर सरलता से जाती है। अतः पाश्चात्य विद्वानों ने चौथी और पाँचवीं रेखाओं के मध्य में ही इस चिह्न को लगाना उचित समझा। परन्तु यदि आप चाहें, तो इसे नीचे की रेखा पर भी लगा सकते हैं, अस्तु।

काफी ठाठ
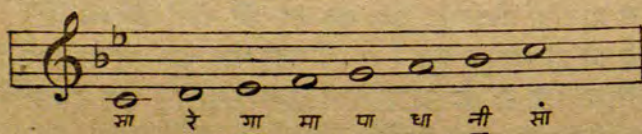
इस प्रकार इस सम्पूर्ण बार (Bar) में जहाँ-कहीं भी (मध्य अथवा तार-सप्तक में) गान्धार स्वर आएगा, वह कोमल बजेगा।

आसावरी ठाठ

अब यदि नीचे से दूसरी और तीसरी रेखाओं के मध्य के स्वर को और कोमल कर दें, तो इसी प्रकार का एक फ्लैट का चिह्न 'की-सिगनेचर' में और लगा देंगे। यही हमारा आसावरी ठाठ होगा; जैसे :—

आसावरी ठाठ
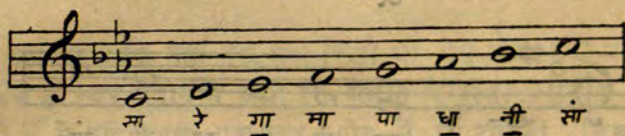
भैरवी ठाठ

इन्हीं स्वरों में जब ऋषभ को भी कोमल कर देंगे, तो यह हमारा भैरवी ठाठ बनेगा। ऐसा करने के लिए नीचे से चौथी रेखा पर फ्लैट का चिह्न लगा देंगे; जैसे :—
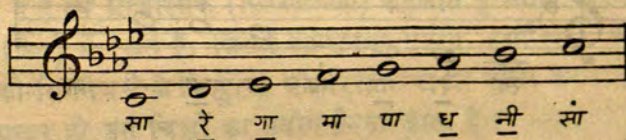
भैरवी ठाठ

भैरव ठाठ

अब इसी क्रम से भैरव ठाठ को लेते हैं। चूँकि भैरव ठाठ में रे और ध कोमल हैं, अतः नीचे से दूसरी और तीसरी रेखाओं के मध्य में आनेवाले 'ध' स्वर को एक सैमीटोन नीचा करने के लिए उस स्थान पर और 'रे' को कोमल करने के लिए नीचे से चौथी लाइन के ऊपर फ्लैट के चिह्न लगा देंगे; जैसे :—

भैरव ठाठ
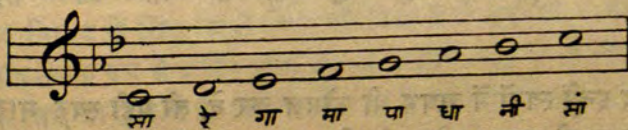
पूर्वी ठाठ

अब यदि इसी ठाठ में मध्यम को तीव्र कर दें, तो यही हमारा पूर्वी ठाठ होगा। देखने पर मालूम होगा कि इन रेखाओं में मध्यम भी दो स्थानों पर आता है। एक नीचे से ऊपर की ओर चलने पर पहली और दूसरी रेखाओं के मध्य में और फिर नीचे से ऊपर की ओर जाने पर हो सबसे ऊपर की रेखा पर। अतएव तुरन्त दिखाई देने के उद्देश्य से सबसे ऊपर की रेखा पर ही शार्प का चिह्न लगा देंगे। इस प्रकार मध्य या तार-सप्तक में जहाँ-कहीं भी मध्यम स्वर आएगा, वह तीव्र ही होगा। देखिए :—

पूर्वी ठाठ
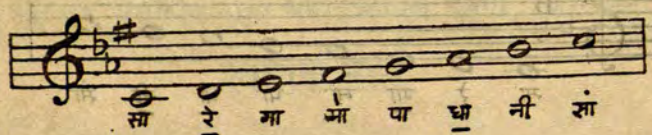
तोड़ी ठाठ

अब इन्हीं स्वरों में यदि नीचे से चौथी और पाँचवीं रेखाओं के स्वर को कोमल कर दें (जो गान्धार का स्वर होगा), तो यही स्वर तोड़ी-ठाठ के हो जाएँगे; जैसे :—

तोड़ी ठाठ
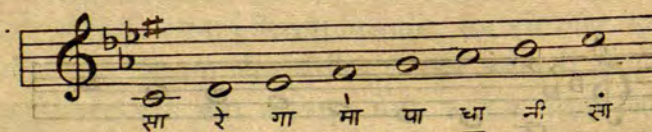
कल्याण ठाठ

कल्याण ठाठ के स्वर लिखने के लिए बिलावल ठाठ के स्वरों में ही मध्यम स्वर के स्थान पर अर्थात् सबसे ऊपर की रेखा पर शार्प का चिह्न लगाना पड़ेगा; जैसे :—

कल्याण ठाठ
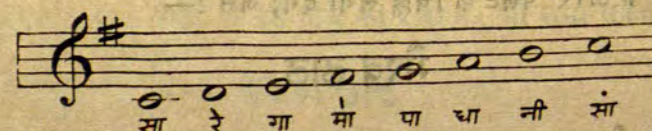
मारवा ठाठ

अब यदि इन्हीं स्वरों में ऋषभ भी कोमल कर दें, तो यही स्वर मारवा ठाठ के होंगे। जैसा कि आपने अब तक देखा है कि ऋषभ को कोमल करने के लिए नीचे से

ऊपर की ओर चलने पर चौथी रेखा के ऊपर फ्लैट का चिह्न लगाना पड़ा था। अतः यहाँ भी वही करना है; जैसे :—

मारवा ठाठ
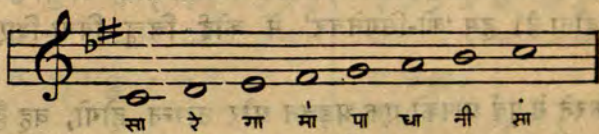
स्वरलिपि-लेखन

हम समझते हैं कि यहाँ तक आप किसी भी ऐसे राग की स्वरलिपि, जिसमें सदैव एक-जैसे ही स्वर प्रयोग में आते हों, अर्थात् हिन्दुस्तानी संगीत के शुद्ध अथवा विकृत स्वरों में से यदि केवल एक स्वर प्रयोग में आ रहा हो, लिख सकेंगे। किन्तु आप सोचते होंगे कि जिन रागों में एक ही स्वर के दोनों रूप (शुद्ध और विकृत) प्रयुक्त होते हों; जैसे अल्हैया में दोनों निषाद, विहाग में दोनों मध्यम, खमाज, पीलू और जैजैवन्ती आदि अनेक रागों में दोनों निषाद, तब आप क्या करेंगे ?

जैसा कि पहले बताया जा चुका है, वे चिह्न जो किसी स्वर को फ्लैट, शार्प अथवा शुद्ध रूप देने के लिए प्रयोग किए जाते हैं, दो प्रकार के होते हैं। इनमें एक तो वे होते हैं जो 'क्लैफ' के साथ 'की-सिगनेचर' में दिए होते हैं, जिन्हें आवश्यक (Essential) चिह्न कहते हैं। यह अपना प्रभाव समस्त बार (Bar) में रखते हैं। दूसरे चिह्न वे हैं जो आकस्मिक (Accidental) कहलाते हैं। ये अपना प्रभाव केवल उसी बार (Bar) में रखते हैं, जिसमें कि उनका प्रयोग हुआ हो। अतः जब किसी स्वर को 'की-सिगनेचर' के चिह्नों के अतिरिक्त ऊँचा या नीचा करना होता है, तो बार (Bar) के अन्दर ही उन चिह्नों का प्रयोग किया जाता है।

उदाहरण के लिए एक रचना जैजैवन्ती की लीजिए। आप देखेंगे कि इस राग में दोनों गान्धार व निषाद का प्रयोग होता है, अतः उन्हें लिखने के लिए हमें आवश्यक और आकस्मिक, दोनों प्रकार के चिह्नों का सहारा लेना पड़ेगा।

चूँकि यह गीत विलम्बित एकताल में है और हमारी एकताल में दो-दो मात्राओं के खंड होते हैं, अतएव हम इसके 'की-सिगनेचर' में $\frac{2}{4}$ लिखेंगे। इसका अर्थ होगा कि प्रत्येक खंड (Bar) में एक-एक मात्रा के दो स्वर होंगे।

इसे भी दो प्रकार से किया जा सकता है। एक तो 'की-सिगनेचर' में कोमल गान्धार व निषाद के लिए किसी चिह्न को बिना दिए हुए ही व आश्यकता पड़ने पर उनका आकस्मिक रूप से प्रयोग कर लिया जाए। दूसरे, कोमल गान्धार और निषाद के लिए प्रारम्भ में ही 'की-सिगनेचर' में फ्लैट के चिह्न लगाकर। जब जिस

बार (Bar) में इन्हें तीव्र करना हो, तो वहीं आकस्मिक रूप से उन्हें शुद्ध स्वर बनाने के लिए ♮ इस चिह्न का प्रयोग कर लेंगे।

सरलता के विचार से (क्योंकि इस राग में प्राय: तीव्र गान्धार व तीव्र निषाद का ही प्रयोग होता है) हम 'की-सिगनेचर' में कोई चिह्न बिना दिए हुए ही इसे लिखते हैं।

ऐसा करने से पूर्व आपको एक अड़चन और उत्पन्न होगी, वह है 'सम' की। पाश्चात्य संगीत में ताल का उतना अधिक महत्त्व नहीं है, जितना कि भारतीय संगीत में। उनके यहाँ किसी धुन को सुन्दर रूप देने के लिए ही ताल को आवश्यकता होती है। फिर प्रत्येक खंड (Bar) में सम की भाँति प्रारम्भिक स्वर पर 'बल' देना होगा। इसलिए इसी एकताल को $\frac{१२}{१}$ के सिगनेचर में भी लिखा जा सकता है। जिसका अर्थ यह होगा कि एक 'बार' (Bar) में एक-एक मात्रा के बारह स्वर हैं।

इसी विभाग-पद्धति को स्व० विष्णुदिगम्बरजी पलुस्कर ने भी अपनाया प्रतीत होता है। उन्होंने मात्राओं के चिह्नों को दक्षिण की ताल-पद्धति से लिया प्रतीत होता है। क्योंकि जो चिह्न दक्षिण-ताल-पद्धति में चार मात्रा के लिए है, उसे चौथाई करके स्वर के नीचे लिटाकर एक मात्रा का कर दिया। जो गोल बिन्दु दो मात्रा के लिए है, उसे चौथाई करके आधी मात्रा का चिह्न बना दिया। इसी प्रकार जो चन्द्र का चिह्न एक मात्रा का है, उसे चौथाई मात्रा का कर दिया। अस्तु, यहाँ तो आप पाश्चात्य स्वरलिपि को लिखना सीखिए; जैसे:—

राग जैजैवन्ती, एकताल (विलम्बित)

अब इसी आधार पर एक अन्य उदाहरण मालकोश के गीत की स्वरलिपि का देखिए :—
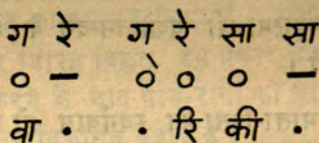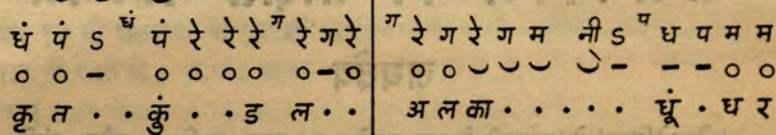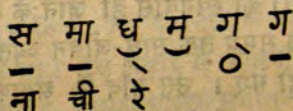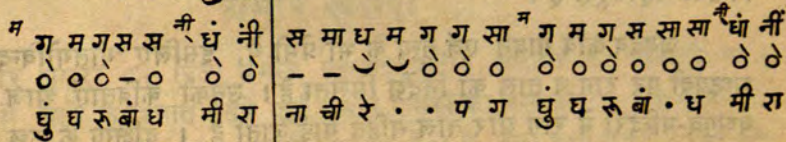
संगीतकारों का संक्षिप्त परिचय

जयदेव

'गीतगोविन्द' के यशस्वी लेखक जयदेव का नाम साहित्य और संगीत-जगत् में आदर के साथ लिया जाता है। आप उच्च कोटि के कवि होने के साथ-साथ वाग्गेयकार और संगीतज्ञ भी थे। भारतीय संगीत में आपको उच्च स्थान प्राप्त है।

जयदेव कवि का जन्म बंगाल के केण्डुला ग्राम में ईसा की बारहवीं शताब्दी में हुआ था। आपके पिता का नाम श्री मजीयदेव था। उस युग के वैष्णव-सम्प्रदाय के सुप्रसिद्ध महात्मा श्री यशोदानन्दन के आप शिष्य थे। आपके गुरुजी व्रज में निवास करते थे।

बाल्य-काल में माता-पिता का स्वर्गवास हो जाने के कारण अल्पायु में ही जयदेव घर-बार छोड़कर जगन्नाथपुरी चले गए और वहाँ के पुरुषोत्तम धाम में निवास करने लगे। इसके पश्चात् आपने अन्य प्रसिद्ध-प्रसिद्ध तीर्थ-स्थानों की यात्रा की और कुछ समय व्रज-भूमि में भी भ्रमण किया। कुछ समय बाद आपका विवाह हो गया और अपनी पत्नी के साथ आपने देश का पर्यटन किया। तत्पश्चात् आपने 'गीतगोविन्द' नामक प्रसिद्ध संस्कृत-ग्रन्थ की रचना की।

'गीतगोविन्द' जयदेव की एक अमर कलाकृति है। इसके अनुवाद विभिन्न भारतीय भाषाओं में तो हो ही चुके हैं, साथ ही लेटिन, जर्मन और अँग्रेजी भाषाओं में भी इसके भाषान्तर हो गए हैं। इससे भली-भाँति विदित होता है कि यह ग्रन्थ कितना महत्त्वपूर्ण है।

जयदेव कवि गायन एवं नृत्य के भी प्रेमी थे, इसलिए 'गीतगोविन्द' में प्रत्येक अष्टपदी पर राग व ताल का निर्देश मिलता है। उनकी कविताएँ आज भी अनेक वैष्णव-मन्दिरों में राग और ताल-सहित गाई जाती हैं। दक्षिण के कुछ मन्दिरों में तो नृत्य के साथ आपकी अष्टपदियाँ अभिनीत की जाती हैं, जिनमें ताल और लय के साथ-साथ भाव-प्रदर्शन भी होता है। 'गीतगोविन्द' की मूल रचना संस्कृत में करके आपने कुछ संगीत-प्रबन्ध हिन्दी भाषा में भी रचे, इसका प्रमाण आपके बनाए हुए कुछ ध्रुवपदों द्वारा अब भी मिलता है।

कहा जाता है कि आप एक राज-दरबार में सम्मानपूर्वक रहते थे, किन्तु अपनी पत्नी (पद्मावती) का स्वर्गवास हो जाने के बाद, राजाश्रय छोड़कर अपने गाँव में चले आए और कुछ समय तक साधु-जीवन व्यतीत करते-करते अपनी जन्म-भूमि में ही परलोकवासी हो गए। उस गाँव में आपकी एक समाधि है, जहाँ प्रति वर्ष मकर-संक्रान्ति के दिन अब भी मेला लगता है।

शार्ङ्गदेव

भारतीय संगीत के प्राचीन एवं प्रसिद्ध ग्रन्थ 'संगीतरत्नाकर' के रचयिता श्री शार्ङ्गदेव १३ वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध (१२१०–१२४७) में देवगिरि (दक्षिण) के बादशाह के दरबार में रहते थे। आपके बाबा कश्मीरी ब्राह्मण थे, जो बाद में आकर देवगिरि में बस गए।

इनके पिता श्री सोढला, यादव राजा भिल्लमा (११८७–११९१ ई०) और सिंहना (१२१०–१२१७ ई०) के दरबार में उच्च कर्मचारी थे। शार्ङ्गदेव के प्रति राजा का भी प्रेम था। इससे प्रतीत होता है कि आपकी शिक्षा-दीक्षा राजाश्रय में ही हुई।

आपने 'संगीतरत्नाकर' नामक ग्रन्थ में नाद, श्रुति, स्वर, ग्राम, मूर्च्छना, जाति इत्यादि का भली-भाँति विवेचन किया है। अनेक पूर्व-लिखित ग्रन्थों की सामग्री लेकर तत्कालीन उत्तरी-दक्षिणी संगीत का समन्वय किया है। आपने कुल बारह विकृत स्वर माने हैं तथा सात शुद्ध और ग्यारह विकृत, इस प्रकार अठारह जातियाँ मानी हैं। इन जातियों का विस्तृत वर्णन करने के बाद ग्राम-रागों को जातियों से उत्पन्न बताया है और ग्राम-रागों से ही अन्य राग विकसित बताए हैं।

शार्ङ्गदेव के स्वर और राग आधुनिक स्वर और रागों से मेल नहीं खाते। कारण यह है कि उन्होंने जो श्रुत्यन्तर कायम किए थे, वे आज के श्रुत्यन्तरों से भिन्न हैं। यद्यपि 'संगीत-रत्नाकर' में वर्णित राग आज उपयोग में नहीं आ सकते, तथापि पुस्तक के अन्य भागों में जो विस्तृत विवरण इस विद्वान् ने दिया है, उससे आधुनिक समय में बड़ी सहायता मिलती है। कुछ विद्वानों ने शार्ङ्गदेव का शुद्ध ठाठ 'मुखारी', जिसे आधुनिक कर्नाटक-संगीत में 'कनकांगी' भी कहते हैं, स्वीकार किया है।

अमीर खुसरो

अमीर खुसरो का पिता अमीर मुहम्मदसैफुद्दीन बलबन का निवासी था। हिन्दुस्तान में आने के पश्चात् इसके यहाँ अमीर खुसरो का जन्म हुआ। एक लेखक के मतानुसार खुसरो का जन्म ६५३ हिजरी (१२३४ ई०) है तथा अन्य लेखक १२५३ ई० मानते हैं। खुसरो का जन्म-स्थान एटा जिले में 'पटियाली' नामक स्थान माना जाता है। वह अत्यन्त चतुर और बुद्धिमान् था। उस काल के मान से योग्य शिक्षा पाने के पश्चात् अमीर खुसरो गुलाम-घराने के दिल्लीपति गयासुद्दीन बलबन के आश्रय में रहा। किन्तु कुछ दिनों बाद गुलाम-घराने का अन्त हो गया और सल्तनत खिलजी वंश के कब्जे में आ गई, अतः खुसरो भी खिलजी वंश का नौकर हो गया।

अलाउद्दीन खिलजी ने १२९४ ई० में जब देवगिरि के राजा पर चढ़ाई की, उस समय अमीर खुसरो भी उसके साथ था। इस लड़ाई में देवगिरि के राजा की पराजय हुई। देवगिरि में उस समय गोपाल नायक नामक संगीत का एक उत्कृष्ट विद्वान् रहता था। खुसरो ने एक छलपूर्ण प्रस्ताव रखकर राज-दरबार में उससे

संगीत-प्रतियोगिता माँगी और उसे अपने चातुर्य-बल से पराजित कर दिया। किन्तु वह गोपाल नायक की कला का हृदय से आदर करता था, इसलिए दिल्ली लौटते समय गोपाल नायक को भी उसके साथ आना पड़ा।

दिल्ली आकर खुसरो ने संगीत-कला में अपूर्व क्रान्ति पैदा की। उसने दक्षिण के शुद्ध स्वर-सप्तक की योजना कर उसे प्रचलित किया। लोक-रुचि के अनुकूल नए-नए रागों की रचना की। राग-वर्गीकरण का एक नवीन प्रकार राग में गृहीत स्वरों से निकाला। उसने रागों में गाने-योग्य तद्देशीय भाषा में नए-नए गीतों की रचना की। यही गीत आगे चलकर 'खयाल' के नाम से प्रसिद्ध हुए, अतः खयाल का जन्मदाता भी खुसरो को मानते हैं।

इसके पश्चात् अमीर खुसरो ने वाद्य-यन्त्रों में भी काफी परिवर्तन किया। दक्षिणी वीणा में चार तार की बजाए तीन तार कर दिए, तारों का क्रम उलटकर उसमें अचल परदे लगा दिए। इसके अतिरिक्त द्रुत लय में बजाने को आसानी पैदा करने के लिए इसकी गतें स्थिर कीं और उन्हें ताल में निबद्ध किया। प्राचीन वीणा की अपेक्षा यह परिवर्तित वाद्य अधिक लोकप्रिय हो गया। इस वाद्य में तीन तार होने के कारण इसका फारसी नाम सेहतार (सितार) रखा गया। वर्तमान 'सितार' इसी वाद्य का परिष्कृत रूप कहना चाहिए।

अमीर खुसरो ने संगीत-विषय पर फारसी में कई पुस्तकें भी लिखीं। भारत और फारस के संगीत के मिश्रण से कई राग भी ईजाद किए, जिनमें साजगिरी, उश्शाक, जिला, सरपरदा आदि स्मरणीय हैं। खुसरो ने गाने की एक नवीन प्रणाली को भी जन्म दिया, जिसे कव्वाली कहते हैं। इस प्रकार संगीत के क्षेत्र में चिरस्मरणीय कार्य करके, लगभग ७२ वर्ष की आयु में अमीर खुसरो स्वर्ग-वासी हो गए।

गोपाल नायक

अलाउद्दीन खिलजी ने सन् १२९४ ई० में देवगिरि (दक्षिण) पर चढ़ाई की थी। उस समय वहाँ रामदेव यादव नामक राजा राज्य करता था। इसी राजा के आश्रय में गोपाल नायक दरबारी गायक रहता था। इसी समय गोपाल नायक और अमीर खुसरो की संगीत-प्रतियोगिता हुई। खुसरो के छल और चातुर्य द्वारा गोपाल नायक को पराजित होना पड़ा और उसने अपनी हार स्वीकार कर ली। किन्तु अमीर खुसरो हृदय से इसकी विद्वत्ता का लोहा मानता था, अतः दिल्ली वापस आते हुए उसने नायक को भी साथ ले लिया। दिल्ली में गोपाल नायक को गायक के रूप में पूर्ण सम्मान प्राप्त हुआ। गोपाल नायक के विषय में एक किंवदन्ती अबतक चली आ रही है कि जब यह दिल्ली से बाहर जाते थे, तब अपनी गाड़ी के बैलों के गले में समयानुसार, रागवाचक ध्वनि पैदा करनेवाले घंटे बाँध दिया करते थे। चतुर कल्लिनाथ ने भी 'रत्नाकर' ग्रन्थ के तालाध्याय की टीका में ताल-व्याख्या के अन्तर्गत गोपाल नायक के नाम का उल्लेख किया है। इससे प्रमाणित होता है कि उस समय के संगीत-विद्वानों में गोपाल नायक का काफी सम्मान था।

इतिहास के संकेतानुसार गोपाल नायक सन् १२९४ और १२९५ ई० के बीच दिल्ली पहुँचे। उस समय के उपलब्ध संस्कृत-ग्रन्थों में 'ध्रुवपद' नामक प्रबन्ध का उल्लेख नहीं मिलता। इससे सिद्ध होता है कि गोपाल नायक ध्रुवपद नहीं गाते थे। उनके समय में सम्भवत: अन्य प्रबन्ध प्रचलित थे, जो संस्कृत, तमिल, तेलगू आदि भाषाओं में थे।

गोपाल नायक जाति के ब्राह्मण थे। देवगिरि के पश्चात् आपके जीवन का शेष भाग दिल्ली में ही व्यतीत हुआ और वहीं इनकी मृत्यु भी हो गई।

स्वामी हरिदास

जिस प्रकार गोस्वामी तुलसीदास को हिन्दी-साहित्य का संक्रान्तिकालीन माधव कहा जाता है, उसी प्रकार स्वामी हरिदास को भी भारतीय संगीत का रक्षक कहना पड़ेगा। स्वामी हरिदास का जन्म भाद्रपद शुक्ला अष्टमी, संवत् १५६९ में, उत्तर-प्रदेश के अलीगढ़ जिले में, खैर वाली सड़क पर एक छोटे-से गाँव में हुआ था। इसी कारण उस गाँव का नाम भी हरिदासपुर हो गया। आपके पिता का नाम श्री आशुधीर था, जोकि मुलतान जिले के उच्च ग्राम-निवासी थे। आप सारस्वत ब्राह्मण-कुल के प्रतिष्ठित व्यक्ति थे। श्री हरिदासजी की माता का नाम गंगा था।

बाल्य-काल से ही संगीत के संस्कार स्वाभाविक रूप से आपके अन्दर विद्यमान थे। आगे चलकर ये संस्कार एकदम विकसित हुए और कृष्ण-भक्ति में लीन हो गए। २५ वर्ष की तरुण अवस्था में ही आप वृन्दावन आ गए और निधिवन-निकुंज की एक झोंपड़ी में निवास करने लगे। यहाँ पर एक मिट्टी का बर्तन और एक गुदड़ी, यही स्वामीजी की सम्पत्ति थी।

ब्रज-रेणु के कण-कण में, यमुना के नीर में, गगन-मंडल के चाँद-तारों में आप भगवान् कृष्ण की लीलाओं की मनोरम झाँकियाँ करने लगे। चारों ओर से गुंजित होनेवाले मुरली के मधुर नाद ने स्वामीजी को आत्मविभोर कर दिया।

वृन्दावन में निवास करके स्वामीजी ने ब्रज-भाषा में अनेक ध्रुवपद-गीतों की रचना की एवं उन्हें शास्त्रोक्त राग तथा तालों में गाकर जिज्ञासुओं को तृप्त किया।

यों तो स्वामीजी का संगीत-प्रसाद अनेक व्यक्तियों को मिला होगा, किन्तु इनके मुख्य शिष्यों के नाम 'नादविनोद' नामक ग्रन्थ में इस प्रकार पाए जाते हैं:—

बैजू, गोपाललाल, मदनराय, रामदास, दिवाकर पंडित, सोमनाथ पंडित, तन्ना मिश्र (तानसेन) और राजा सौरसेन।

मद्रास प्रान्त को छोड़कर समस्त देश में वर्तमान प्रचलित शास्त्रीय संगीत स्वामीजी एवं उनके शिष्यों की ही विभूति है। 'संगीत-कल्पद्रुम' में बहुत-सी रचनाएँ

स्वामीजी की ही रची हुई प्रतीत होती हैं । आजकल ब्रज में जो रास-लीला प्रचलित है, उसको स्वामी हरिदास की ही देन समझना चाहिए । रास के पदों की गायन-युक्त परिपाटी के प्रवर्तक आप ही थे, जो आज तक लोकप्रिय होकर धार्मिक भावनाओं को कलात्मक रूप दे रही है ।

नाभादासजी के एक छप्पय से प्रतिध्वनित होता है कि स्वामी हरिदास के संगीत को सुनने के लिए बड़े-बड़े राजा-महाराजा उनके द्वार पर खड़े रहते थे । एक बार सम्राट अकबर ने भी तानसेन के साथ आकर गुप्त रूप से स्वामीजी का गायन सुना था।

अन्त में संवत् १६६४ वि० में अर्थात् ६५ वर्ष की अवस्था पाकर, आप इस भौतिक शरीर को त्यागकर सदैव के लिए निधिवन के कुंजों में विलीन हो गए।

तानसेन

निस्सन्देह, संगीत शब्द से जिन व्यक्तियों को थोड़ा भी प्रेम होगा, वे तानसेन के नाम से भली-भाँति परिचित होंगे। यद्यपि इस महापुरुष का मृत्यु हुए लगभग चारसौ वर्ष हो चुके हैं, फिर भी संगीत-संसार में इसकी विमल कीर्ति आकाश के सूर्य के समान प्रदीप्त हो रही है । नीचे की पंक्तियों में हम इस महान् संगीतकार का संक्षिप्त जीवन-परिचय पाठकों के समक्ष प्रस्तुत कर रहे हैं:—

सन् १५०० ई० के लगभग की बात है, ग्वालियर में मुकन्दराम पांडे नामक ब्राह्मण निवास करते थे । कोई-कोई इन्हें मकरन्द पांडे के नाम से भी पुकारता था। पांडित्य और संगीत-विद्या में लोकप्रिय होने के साथ-साथ आपको धन-धान्य भी यथेष्ट रूप में प्राप्त था । यदि कोई चिन्ता थी, तो सन्तान होने की। आपकी पत्नी पूर्ण साध्वी एवं कर्मनिष्ठा थीं। दम्पति को सन्तान की चिन्ता हर समय व्यग्र बनाए रहती। आखिरकार वह समय भी आ गया, जबकि इनकी चिन्ता एक दिन हमेशा के लिए समाप्त हो गई। मुहम्मद गौस नामक एक सिद्ध फकीर के आशीर्वाद से सन् १५३२ ई० में, ग्वालियर से सात मील दूर एक छोटे-से गाँव 'बेहट' में, इन्हें पुत्र-रत्न की प्राप्ति हुई। बालक का नाम 'तन्ना' मिश्र रखा गया ।*

बच्चे का पालन-पोषण बड़े लाड़-प्यार से हुआ । एकमात्र सन्तान होने के कारण माँ-बाप ने किसी प्रकार का कठोर नियन्त्रण भी नहीं रखा। फलस्वरूप दस वर्ष की अवस्था तक बालक 'तन्ना' मिश्र पूर्णरूपेण स्वतन्त्र, सैलानी एवं नटखट प्रकृति का हो गया । इस बीच इसके अन्दर एक आश्चर्यजनक प्रतिभा देखी गई । वह थी आवाजों की हू-ब-हू नकल करना । किसी भी पशु-पक्षी की आवाज की नकल कर लेना इसका खेल था । शेर की बोली बोलकर अपने बाग की रखवाली करने में इसे बड़ा मजा आया करता था ।

* तानसेन की जन्म-तिथि तथा सन् के बारे में विविध मत पाए जाते हैं। कुछ लेखक तो इनका जन्म सन् १५०६ ई० और कुछ १५२० ई० बताते हैं।

एक दिन वृन्दावन के महान् संगीतकार संन्यासी स्वामी हरिदासजी अपनी शिष्य-मंडली के साथ उक्त बाग में होकर गुजरे, तो बालक 'तन्ना' ने एक पेड़ की आड़ में छुपकर शेर- जैसी दहाड़ लगाई। डर के मारे सब लोगों के दम फूल गए। स्वामीजी को उस स्थान पर शेर रहने का विश्वास नहीं हुआ और तुरन्त खोज की। दहाड़ता हुआ बालक मिल गया। बालक के इस कौतुक पर स्वामीजी बड़े प्रसन्न हुए। उन्होंने जब अन्य पशु-पक्षियों की आवाज भी बालक से सुनी, तो मुग्ध हो गए और उसके पिताजी से बालक को संगीत-शिक्षा देने के निमित्त माँगकर अपने साथ ही वृन्दावन ले आए।

गुरु-कृपा से १० वर्ष की अवधि में ही बालक तन्ना धुरन्धर गायक बन गया और यहीं इसका नाम 'तन्ना' की बजाए 'तानसेन हो गया। गुरुजी का आशीर्वाद पाकर तानसेन ग्वालियर लौट आए। इसी समय इनके पिताजी की मृत्यु हो गई। मृत्यु से पूर्व पिता ने तानसेन को उपदेश दिया कि तुम्हारा जन्म मुहम्मद गौस नामक फकीर की कृपा से हुआ है, इसलिए तुम्हारे शरीर पर पूर्ण अधिकार उसी फकीर का है। अपनी जिन्दगी में उस फकीर की आज्ञा की कभी अवहेलना मत करना।

पिता का उपदेश मानकर तानसेन मुहम्मद गौस फकीर के पास आ गए। फकीर साहब ने तानसेन को अपना उत्तराधिकारी बनाकर अपना अतुल वैभव आदि सब-कुछ उन्हें सौंप दिया और अब तानसेन ग्वालियर में ही रहने लगे। थोड़े दिनों बाद राजा मानसिंह की विधवा पत्नी रानी मृगनयनी से तानसेन का परिचय हुआ। रानी मृगनयनी भी बड़ी मधुर एवं विदुषी गायिका थीं, वह तानसेन का गायन सुनकर बहुत प्रभावित हुई। उन्होंने अपने संगीत-मन्दिर में शिक्षा पानेवाली हुसेनी ब्राह्मणी नामक एक सुमधुर गायिका लड़की के साथ तानसेन का विवाह कर दिया।

विवाह के पश्चात् तानसेन पुनः अपने गुरुजी के आश्रम वृन्दावन में शिक्षा प्राप्त करने पहुँचे। इसी समय फकीर मुहम्मद गौस का अन्तिम समय निकट आ गया। फलस्वरूप गुरुजी के आदेश पर तानसेन को तुरन्त ग्वालियर वापस आना पड़ा। फकीर साहब की मृत्यु हो गई और अब तानसेन एक विशाल सम्पत्ति के अधिकारी बन गए। अब यह ग्वालियर में रहकर आनन्दपूर्वक गृहस्थ जीवन व्यतीत करने लगे। इनके चार पुत्र और एक पुत्री का जन्म हुआ। पुत्रों का नाम—सुरतसेन, तरंगसेन, शरतसेन और बिलास खाँ तथा लड़की का नाम सरस्वती रखा गया। तानसेन की सभी सन्तान संगीत-कला के संस्कार लेकर पैदा हुई। सभी बच्चे उत्कृष्ट कलाकार हुए।

संगीत-साधना पूर्ण होने के बाद सर्वप्रथम तानसेन को रीवा-नरेश रामचन्द्र (राजाराम) अपने दरबार में ले गए। इन्हीं दिनों तानसेन का सौभाग्य-सूर्य चमक उठा। महाराज ने तानसेन-जैसे दुर्लभ रत्न को बादशाह अकबर की भेंट कर दिया। सन् १५५६ ई० में तानसेन अकबर के दरबार में दिल्ली आ गए. बादशाह ऐसे अमूल्य रत्न को पाकर अत्यन्त प्रसन्न हुआ और तानसेन को उसने अपने नवरत्नों में सम्मिलित कर लिया।

यह तानसेन का शौर्य-काल था। बादशाह के अटूट स्नेह और कला का यथेष्ट सम्मान पाकर तानसेन की यश:-पताका उन्मुक्त होकर लहराने लगी। अकबर तानसेन के संगीत का गुलाम बन गया। कलापारखी अकबर तानसेन की संगीत-माधुरी में डूब गया। बादशाह पर तानसेन का ऐसा पक्का रंग सवार देखकर दूसरे दरबारी गायक जलने लगे और एक दिन उन्होंने तानसेन के विनाश की योजना बना ही डाली। ये सब लोग बादशाह पास के पहुँचकर कहने लगे कि हुजूर, हमें तानसेन से 'दीपक' राग सुनवाया जाए और आप भी सुनें। इसको ठीक-ठीक तानसेन के अलावा और कोई नहीं गा सकता। बादशाह राजी हो गए। तानसेन द्वारा इस राग का अनिष्ट-कारक परिणाम बताए जाने और लाख मना करने पर भी अकबर का राज-हठ नहीं टला और उसे दीपक राग गाना ही पड़ा। राग जैसे ही शुरू हुआ, गर्मी बढ़ी और धीरे-धीरे वायुमंडल अग्निमय हो गया। सुनानेवाले अपने-अपने प्राण बचाने को इधर-उधर छुप गए, किन्तु तानसेन का शरीर अग्नि की लपटों से जल उठा। उसी समय तानसेन अपने घर भागे। वहाँ उनकी लड़की तथा एक गुरु-भगिनी ने मेघ राग गा-कर उनके जीवन की रक्षा की। उस घटना के कई मास पश्चात् तानसेन का शरीर स्वस्थ हुआ। अकबर भी अपनी गलती पर बहुत पछताया।

तानसेन के जीवन में पानी बरसाने, जंगली पशुओं को बुलाने, रोगियों को ठीक करने आदि की अनेक चमत्कारपूर्ण घटनाएँ हुईं। यह निर्विवाद सत्य है कि गुरु-कृपा से उसे बहुत-से राग-रागिनियाँ सिद्ध थे और उस समय देश में तानसेन-जैसा दूसरा कोई संगीतज्ञ नहीं था। तानसेन ने व्यक्तिगत रूप से कई रागों का निर्माण भी किया, जिनमें दरबारीकान्हड़ा, मियाँ की सारंग, मियाँमल्लार आदि उल्लेखनीय हैं।

इस प्रकार अमर संगीत की सुखद त्रिवेणी बहाता हुआ यह महान् संगीतज्ञ मृत्यु के निकट भी आ पहुँचा। दिल्ली में ही तानसेन ज्वर से पीड़ित हुए। अन्तिम समय जानकर इन्होंने ग्वालियर जाने की इच्छा प्रकट की, परन्तु बादशाह के मोह और स्नेह के कारण तानसेन फरवरी, सन् १५८५ ई० में दिल्ली में ही स्वर्गवासी हुए। इच्छानुसार तानसेन का शव ग्वालियर पहुँचाकर फकीर मोहम्मद गौस की कब्र के बराबर समाधि बना दी गई। तानसेन की मृत्यु के पश्चात् उनका कनिष्ठ पुत्र बिलास खाँ, तानसेन के संगीत को जीवित रखने और उसकी कीर्ति को प्रसारित करने में समर्थ हुआ।

बैजू बावरा

यह सुप्रसिद्ध गायक तानसेन का मित्र और एक दृष्टि से तानसेन का प्रतिद्वन्द्वी भी था, और अकबर बादशाह के समय (१५५६–१६०५ ई०) में दिल्ली में रहता था। यह उसी काल के प्रसिद्ध गायक गोपाललाल का भी मित्र था। बैजू ने अनेक ध्रुवपद बनाए हैं, जिनमें गोपाललाल, तानसेन और बादशाह अकबर का नामोल्लेख किया हुआ मिलता है। विद्यार्थियों को यह भी मालूम होना चाहिए कि 'नायक बैजू' और 'बैजू बावरा', ये दो भिन्न-भिन्न गायक थे और भिन्न-भिन्न कालों में हुए। बैजू बावरा

ने कभी बादशाह की नौकरी स्वीकार नहीं की। यह १६-वीं शताब्दी में अकबर के राज्यकाल में ही स्वर्गवासी हो गए।

सदारंग-अदारंग

खयाल की बहुत-सी चीजों में 'सदारँगीले मोंमद सा' ऐसा नाम कई बार देखने में आता है। १८-वीं शताब्दी में न्यामत खाँ नाम के प्रसिद्ध बीनकार हो गए हैं। यह अपनी बनाई हुई चीजों में उस समय के बादशाह मोहम्मद शाह का नाम डाल दिया करते थे। बादशाह को प्रसन्न करने के लिए ही वह ऐसा किया करते थे। न्यामत खाँ अपना उपनाम 'सदारँगीले' रखकर साथ में बादशाह का नाम भी जोड़ दिया करते थे। 'सदारँगीले' को ही 'सदारंग' भी कहा जाता था। न्यामत खाँ (सदारंग) के खानदान के बारे में बताया जाता है कि यह तानसेन की पुत्री के खानदान में दसवें व्यक्ति थे। इनके पिता का नाम लाल खाँ सानी और बाबा का नाम खुशाल खाँ था।

यद्यपि खयाल-रचना का काय सवप्रथम अमीर खुसरो ने शुरू किया था, किन्तु उस समय खयाल-रचना विशेष लोकप्रिय न हो सकी। इसके बाद सुल्तानहुसैन शर्की, बाजबहादुर, चंचलसेन, चाँद खाँ, सूरज खाँ ने भी यह कार्य करने की चेष्टा की, किन्तु उन्हें भी विशेष सफलता न मिल सकी। न्यामत खाँ ने उनकी इन असफलताओं का कारण ढूँढ़ निकाला। इन्होंने अनुभव किया कि जब तक कविताओं में बादशाह का नाम न डाला जाएगा, तब तक वे अच्छी तरह प्रचलित नहीं हो सकेंगी। साथ ही इन्हें रूठे हुए बादशाह को भी खुश करना था, क्योंकि वेश्याओं को तालीम न देने पर एक बार बादशाह इनसे नाराज हो गए थे, अत: वह उपनाम 'सदारँगीले' के साथ बादशाह का नाम तो डालने लगे, किन्तु इसकी खबर बादशाह को न होने दी कि यह कविता किसकी बनाई हुई है और सदारंग कौन है। इस प्रकार बहुत-सी कविताएँ न्यामत खाँ ने तैयार करके अपने शागिर्दों को भी याद कराईं। जब बादशाह को ये कविताएँ खयाल में गाकर सुनाई गईं, तो वह बड़े प्रभावित हुए और यह जानने की इच्छा प्रकट की कि यह 'सदारँगीले' कौन हैं? न्यामत खाँ के शागिर्दों ने जवाब दिया कि हमारे उस्ताद, जिनका असली नाम न्यामत खाँ है, उनका तखल्लुस (उपनाम) 'सदारँगीले' है। बादशाह ने कहा—'अपने उस्ताद को बुलाकर लाओ।' न्यामत खाँ दरबार में उपस्थित हुए, तो मोहम्मदशाह ने उनके पुराने अपराधों को क्षमा करके, उन्हें पुन: आदरपूर्वक अपने दरबार में रख लिया और वह वीणा बजाकर गायकों का साथ करने के लिए स्थायी रूप से दरबार में रहने लगे। इस प्रकार सदारंग ने पुन: अपना रंग जमा लिया और गुणियों में आदर प्राप्त कर लिया।

सदारंग के खयालों में विशेष रूप से शृंगार-रस पाया जाता है। कहा जाता है कि सदारंग ने स्वयं अपनी ये चीजें महफ़िलों में नहीं गाईं। उनका कहना था कि खुद अपने लिए या अपने खानदान के लिए मैंने ये चीजें नहीं बनाई हैं, बल्कि बादशाह सलामत को खुश करने के उद्देश्य से ही इनकी रचना की गई है। इतना होते हुए भी इनकी रचनाएँ समाज में काफी फैल गईं। खयाल-गायक और गायिकाओं ने इनकी चीजें खूब अपनाईं।

सदारंग के साथ-साथ कुछ चीज़ों में अदारंग का नाम भी पाया जाता है। इसके बारे में एक इतिहासकार का कथन है कि न्यामत खाँ के दो पुत्र थे, जिनका नाम फीरोज खाँ और भूपत खाँ था। 'अदारंग' फीरोज खाँ का ही उपनाम था। भूपत खाँ का उपनाम 'महारंग' था। इस प्रकार पिता के साथ-साथ दोनों पुत्र भी संगीत के क्षेत्र में अपना नाम सर्वदा के लिए अमर बना गए।

बालकृष्ण बुआ इचलकरंजीकर

श्री बालकृष्ण बुआ इचलकरंजीकर अखिल-भारतीय संगीत-कला-कोविदों में एक उच्च श्रेणी के गायक हो गए हैं। प्रसिद्ध संगीताचाय पं० विष्णुदिगम्बर पलुस्कर इन्हीं के शिष्य थे। बालकृष्ण बुआ का जन्म सन् १८४९ ई० (शाके १७७१) में कोल्हापुर के पास चन्दूर नामक ग्राम में हुआ था। इनके पिता रामचन्द्र बुआ स्वयं एक अच्छे गायक थे, इस कारण बाल्य-काल से ही इनके अन्दर भी संगीत की अभिरुचि उत्पन्न हो गई। भाऊ बुआ, देवजी बुआ, हद्दू खाँ, हस्सू खाँ आदि विद्वान से इन्होंने ध्रुवपद-धमार, खयाल और टप्पा की शिक्षा पाई। अतः इन चारों अंगों के आप कलावन्त थे।

कुछ समय बाद इन्हें जोशी बुआ नामक प्रसिद्ध संगीतज्ञ से भी संगीत-शिक्षा प्राप्त हुई और अपने परिश्रम तथा रियाज के द्वारा थोड़े समय में ही बालकृष्ण बुआ गायनाचार्य बन गए। आपने समस्त हिन्दुस्तान व नेपाल का भ्रमण किया। अनेक संगीत-सम्मेलनों में भाग लिया। बम्बई में आपने 'गायन-समाज' की स्थापना की और 'संगीत-दर्पण' नाम का एक मासिकपत्र भी चलाया; किन्तु श्वास रोग के कारण आपको बम्बई छोड़नी पड़ी। कुछ समय बाद आप औंध स्टेट के गायक हो गए। वहाँ प्रातःकाल अपना रियाज करते और फिर शिष्यों को पढ़ाते थे।

कुछ समय बाद आपने इचलकरंजी नामक रियासत में स्थायी रूप से राजगायक की पदवी स्वीकार कर ली, तभी से आप इचलकरंजीकर के नाम से प्रसिद्ध हो गए और पुनः समस्त भारत का भ्रमण करके आपने संगीत का प्रचार किया। इसी बीच आपके एकमात्र सुपुत्र का निमोनिया से यकायक देहान्त हो गया और फिर एक सुपुत्री भी चल बसी। इन आघातों से आपके स्वास्थ्य को विशेष धक्का पहुँचा, फलस्वरूप सन् १९२६ ई० में इचलकरंजी में ही आप स्वर्गवासी हो गए।

पं० रामकृष्ण वझे

आपका जन्म सन् १८७१ ई० में सावन्तवाड़ी के ओंका नामक ग्राम में हुआ था। १० मास की शिशु-अवस्था में ही आपको छोड़कर आपके पिताजी स्वर्गवासी हो गए, अतः इनका पालन-पोषण माता के द्वारा हुआ। ४ वर्ष की अवस्था में इनकी माताजी इन्हें लेकर 'कागल' नामक स्थान में आकर अन्ना साहब देशपांडे के यहाँ रहने लगीं।

बाल्य-काल में विद्याध्ययन के समय आपका रुचि-प्रवाह संगीत की ओर मुड़ गया। अध्यापकों के अनुरोध पर आपकी माताजी ने आर्थिक दशा प्रतिकूल होने पर

भी, किसी प्रकार आपको संगीत-शिक्षा दिलाने का प्रबन्ध किया। स समय भाग्य से इन्हीं के गाँव में बलवन्तराव पोहरे नामक दरबारी गायक रहते थे। उनसे आपने दो वर्ष तक संगीत-शिक्षा ग्रहण की। तत्पश्चात् मालवन में विठोवा अन्ना हड़प के पास रहकर उनकी गायकी सीखी।

बारह वर्ष की अवस्था में ही आपका विवाह कर दिया गया। विवाह होते ही आपके सामने आर्थिक समस्या खड़ी हो गई और इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए आप पूना होते हुए पैदल ही बम्बई जा पहुँचे। बम्बई में गा-गाकर दस-बारह रुपए कमाए। वहाँ से आप नाना साहब पानसे के पास संगीत सीखने के उद्देश्य से इन्दौर पहुँचे। वहाँ आपको बन्देअली तथा चुन्ना के गाने और उनकी वीणा सुनने का अवसर भी मिला।

तत्पश्चात् आपने ग्वालियर में रहकर अनेक कष्ट उठाते हुए भी अपनी संगीत-शिक्षा जारी रखी। खाँ साहब निसारहुसैन पर आपकी काफी श्रद्धा थी। उनकी फटकारें खाकर भी आपने बहुत-कुछ संगीत-शिक्षा उन्हीं से प्राप्त की। इस बीच इन्हें प्राचीन उस्तादों की संकीर्ण मनोवृत्तियों के बड़े कटु अनुभव हुए। फलस्वरूप आपने संगीत-शिक्षा देने एवं संगीत-सम्बन्धी पुस्तकें प्रकाशित करने का संकल्प कर लिया।

अन्त में आपका आर्थिक जीवन भी सुखमय हो गया था। शारीरिक गठन सुन्दर एवं स्वास्थ्य अच्छा होने के कारण आपका व्यक्तित्व भी प्रभावशाली था, किन्तु अन्तिम दिनों में आपको मधुमेह-जैसी दुष्ट बीमारी ने निर्बल बना दिया। फलस्वरूप आप शनैः-शनैः अधिक निर्बल होते गए और ५ मई, सन् १९४५ ई० को पूना में आपका देहावसान हो गया।

अब्दुलकरीम खाँ

खाँ साहब अब्दुलकरीम खाँ किराना के निवासी थे। इनके घराने में प्रसिद्ध गायक, तन्तकार व सारंगी-वादक हुए हैं। इन्होंने अपने पिता काले खाँ व चाचा अब्दुल्ला खाँ से संगीत-शिक्षा प्राप्त की थी। यह बचपन से ही बहुत अच्छा गाने लगे थे। कहा जाता है कि पहली बार जब इन्हें एक संगीत-महफिल में पेश किया गया, तब इनकी उम्र केवल ६ वर्ष की थी। पन्द्रहवें वर्ष में प्रवेश करते-करते इन्होंने संगीत-कला में इतनी उन्नति कर ली कि आपका तत्कालीन बड़ौदा-नरेश ने अपने यहाँ दरबार-गायक नियुक्त कर लिया। बड़ौदा में तीन वर्ष तक रहने के पश्चात् १९०२ ई० में प्रथम बार आप बम्बई आए और फिर मिरज गए। मधुर और सुरीली आवाज एवं हृदयग्राही गायकी के कारण दिनों-दिन इनकी लोकप्रियता बढ़ती गई।

सन् १९१३ ई० के लगभग पूना में आपने 'आर्य-संगीत-विद्यालय' की स्थापना की। विविध संगीत-जल्सों के द्वारा धन इकट्ठा करके आप इस विद्यालय को चलाते थे। गरीब विद्यार्थियों का सभी खर्च विद्यालय उठाता था। इसी विद्यालय की एक शाखा १९१७ ई० में खाँ साहब ने बम्बई में स्थापित की और स्वयं तीन वर्ष तक बम्बई में आपको रहना पड़ा। इन दिनों आपने एक कुत्ते को बड़े विचित्र ढंग से स्वर देने के लिए

सिखा लिया था। बम्बई में अब भी ऐसे व्यक्ति मौजूद हैं, जिन्होंने अमरौली-हाउस, बम्बई के जल्से में इस कुत्ते को स्वर देते हुए सुना था। कई कारणों से सन् १९२० में यह विद्यालय उन्हें बन्द कर देना पड़ा। फिर खाँ साहब मिरज जाकर बस गए और अन्त तक वहीं रहे।

खाँ साहब गोबरहारी वाणी की गायकी गाते थे। महाराष्ट्र में मींड़ और कण-युक्त गायकी के प्रसार का श्रेय खाँ साहब को ही है। इनके आलापों में अखंडता एवं एक प्रवाह-सा प्रतीत होता है। सुरीलेपन के कारण आपका संगीत अन्तःकरण को स्पर्श करने की क्षमता रखता था। 'पिया बिन नाहीं आवत चैन' आपकी यह ठुमरी बहुत प्रसिद्ध हुई। इसे सुनने के लिए कला-मर्मज्ञ विशेष रूप से फरमाइश किया करते थे। यद्यपि आप शरीर से कमजोर थे, किन्तु आपका हृदय बड़ा विशाल और उदार था। आपका स्वभाव अत्यन्त शान्त और सरस था। आप एक फकीरी वृत्ति के गायक थे।

खाँ साहब की शिष्य-परम्परा बहुत विशाल है। प्रसिद्ध गायिका हीराबाई बड़ोदेकर ने खाँ साहब से ही किराना-घराने की गायकी सीखी है। इनके अतिरिक्त सवाई गन्धर्व, रोशनआरा बेगम आदि अनेक शिष्य एवं शिष्याओं द्वारा आपका नाम रोशन हो रहा है।

एक बार वार्षिक उर्स के अवसर पर आप मिरज आए थे। कुछ लोगों के आग्रह से एक जल्से में वहाँ से मद्रास जाना पड़ा, वहाँ पर आपका एक संगीत-कार्यक्रम में गायन इतना सफल रहा कि उपस्थित जनता ने आपकी भूरि-भूरि प्रशंसा की। फिर एक संस्था की सहायतार्थ जल्से करने के लिए वहाँ से पांडिचेरी जाने का निश्चय हुआ। इस यात्रा में ही खाँ साहब की तबीयत खराब हो गई, और रात्रि के ११ बजे सिंगपोयमकोलम स्टेशन पर वह उतर गए। बेकली बढ़ती गई; कुछ देर इधर-उधर टहलने के बाद बिस्तर पर बैठ गए; नमाज पढ़ी और फिर दरबारीकान्हड़ा के स्वरों में खुदा की इबादत करने लगे। इस प्रकार गाते-गाते २७ अक्टूबर, सन् १९३७ ई० को आप हमेशा के लिए उसी बिस्तर पर लेट गए।

इनायत खाँ

इनायत खाँ का जन्म सन् १८८५ ई० में इटावा में हुआ। अपने समय में सुरबहार के आप एक प्रसिद्ध कलाकार हो गए हैं। इनके बाबा साहबदाद खाँ ध्रुवपद, खयाल और गजल-शैली के विशेषज्ञ थे; साथ ही वे जलतरंग और सारंगी-वादन में भी कुशल थे।

इनायत खाँ के पिता इमदाद खाँ हिन्दुस्तान के प्रसिद्ध सुरबहार और सितार-वादक थे। जोड़, गत, तोड़ा और शैली में वह अपना सानी नहीं रखते थे। महाराजा नौगाँव तथा महाराजा बनारस के यहाँ दरबारी गायक के रूप में रहने के पश्चात् कलकत्ता में महाराजा सर यतीन्द्रमोहन टैगोर के यहाँ रहे। इसके बाद इमदाद खाँ ३००) मासिक वेतन पर अवध के नवाब वाजिदअली शाह के कोर्ट-म्यूजीशियन नियुक्त

हुए। फिर कुछ समय बड़ौदा-दरबार में रहने के बाद अन्त में अपने दो पुत्रों के साथ इन्दौर में रहे। इनकी मृत्यु सन् १९२० ई० में, ७२ वर्ष की आयु में हो गई। आपने अपने पीछे दो पुत्र और पाँच पुत्रियाँ छोड़ीं।

इमदाद खाँ के दो पुत्रों में इनायत खाँ छोटे और वहीद खाँ बड़े थे। इनायत खाँ ने छोटी उम्र से ही ध्रुवपद, खयाल और ठुमरी आदि की तालीम अपने पिता से प्राप्त की थी, इसके पश्चात् आपने विभिन्न रागों के बारे में जानकारी हासिल की और अपने पिता से ही सुरबहार एवं सितार बजाना भी सीखते रहे। अपने सतत परिश्रम और अभ्यास के फलस्वरूप शीघ्र ही इनकी गणना अच्छे कलाकारों में होने लगी। काठियावाड़, मैसूर, बड़ौदा और इन्दौर में अपनी संगीत-सेवाएँ अर्पित करने के बाद कुछ समय तक गौरीपुर के ब्रजेन्द्रकिशोर राय चौधरी के यहाँ नौकरी में रहे।

इसके पश्चात् इनायत खाँ ने विविध संगीत-सम्मेलनों में भाग लेकर अनेक स्वर्णपदक प्राप्त किए। इनके सितार-वादन में जो मिठास थी, वह सुनते ही बनती थी। मैमनसिंह जिले के कई स्थानों में आपका शिष्य-समुदाय फैला हुआ है। सन् १९३८ ई० के लगभग आपका शरीरान्त हो गया। इनके पुत्र विलायतखाँ आजकल एक सफल सितार-वादक के रूप में गौरीपुर-घराने का नाम ऊँचा कर रहे हैं।

श्री विष्णुनारायण भातखंडे और श्री विष्णुदिगम्बर पलुस्कर

इनका संक्षिप्त परिचय इस पुस्तक में पृष्ठ ३६ व ३७ पर देखिए।

अकारादि क्रम से २०० रागों का शास्त्रीय विवरण

नोट (१) कोमल तीव्र वाले खाने में "दोनों" का अर्थ है, कोमल व तीव्र। जैसे नं० १ के राग में कोमल तीव्र का खाना देखिये, उसमें "ग ध व दोनों नि" लिखे हैं, इसका अर्थ है कि ग ध कोमल लगेंगे और निषाद कोमल व तीव्र दोनों प्रकार के लगेंगे।

(२) वर्जित स्वर वाले खाने में कोष्ठक ( ) में जो स्वर हैं, वे पूर्णतया वर्जित न होकर अल्प प्रमाण में लगेंगे।

नं०	राग नाम	थाट	जाति	वादी	संवादी	कोमल-तीव्र	वर्जित स्वर आरोह	वर्जित स्वर अवरोह	आरोह	अवरोह	गायन समय
१	अडाणा	आसावरी	षाड़व	सा	प	ग ध व दोनों नि	ग	ध	सारेमप धनिसां	सां धनिपमप गम रेसा	रात्रि तीसरा प्रहर
२	अल्हैया बिलावल	बिलावल	षाड़व संपूर्ण	ध	ग	कहीं-कहीं नि	म	०	सारेगप धनिसां	सांनिधप मगरेसा	प्रात:काल
३	अरज	भैरव	सम्पूर्ण	म	सा	रे व मनि दोनों	०	०	सारेग मपमंप धनिसां	सांरेंसांनि धपमग रेसा	"
४	अहीर भैरव	"	"	म	सा	रे नि	०	०	सा रे ग म प ध नि सां	सां नि ध प म ग रेसा	"
५	आभेरी	आसावरी	औड़व संपूर्ण	म	नि	रे ग ध नि	रे ध	०	सा ग म प नि सां	सां नि ध प म ग रे सा	"
६	आसा	बिलावल	" "	म	सा	०	ग नि	०	सा रे म प ध सां	सां नि ध प म ग रे सा	रात्रि दूसरा प्रहर
७	आसावरी	आसावरी	" "	ध	ग	ग ध नि	ग नि	०	सा रे म प ध सां	सांनिध प मग रे सा	दिन दूसरा प्रहर
८	आनन्द भैरव	भैरव	सम्पूर्ण	म	सा	रे	०	०	सा रे ग म प ध नि सां	सां नि ध प म ग रेसा	प्रात:काल
९	आनन्द भैरवी	आसावरी	"	प	सा	ग नि व दोनों ध	(नि)	०	सा रे ग म प ध सां	सां नि ध प म ग रे सा	रात्रि तीसरा प्रहर
१०	आभोगी	काफी	औड़व	सा	म	ग	प नि	प नि	सा रे ग म ध सां	सां ध म ग रे सा	प्रात:काल
११	आभोगीकान्हरा	"	"	म	सा	ग	प नि	प नि	सा रे ग म ध सां	सां ध म ग म रे सा	मध्यरात्रि
१२	उत्तरी गुणकली	भैरवी	सम्पूर्ण	सा	म	रे ग ध नि	०	०	सा रे ग म प ध नि सां	सां नि ध प म ग रे सा	प्रात:काल
१३	कलावती	खमाज	औड़व	प	सा	नि	रे म	रे म	सागपध निधप धसां	सांनिधप गप धप गसा	मध्यरात्रि
१४	कमलरंजनी	बिलावल	औड़व षाड़व	ध	ग	दोनों नि	रे म	रे	सा ग प ध नि सां	सांनिध निपमग सा	प्रात:काल
१५	ककुभ	"	सम्पूर्ण	म	सा	" "	०	०	सा रे ग म प ध नि सां	सां नि ध प म ग रे सा	"

१६	कामोद	कल्याण	"	प	रे	दोनों म	०	०	सारेप मंप धप निधसां	सांनिध प मंपधप गमरेसा	रात्रि प्रथम प्रहर
१७	काफी	काफी	"	प	सा	ग नि	०	०	सारेग म प धनिसां	सांनिध प मग रेसा	मध्यरात्रि
१८	कालिंगड़ा	भैरव	"	प	सा	रे ध	०	०	सारेगम प ध नि सां	सांनिधप मग रेसा	रात्रि अन्तिम प्रहर
१९	केदार	कल्याण	औड़व सम्पूर्ण	सा	म	दोनों म	रे ग	(ग)	साम मप धप निध सां	सां निध प मंप गमरेसा	रात्रि प्रथम प्रहर
२०	कोमल देसी	आसावरी	औड़व संपूर्ण	प	रे	निगध व दोनोंरे	ग ध	०	सारे मप निसां	सांनिधप मगरेसा	दिन दूसरा प्रहर
२१	कौंसी कान्हरा	"	सम्पूर्ण	म	सा	नि ग	०	०	सारेगम पधनिसां	सांनिधप मगरेसा	मध्यरात्रि
२२	कौंसी भैरव	भैरव	"	म	सा	रे ध नि दोनों	०	०	साम गमपम निधनिसां	रेंनिधप मग मरेसा	दिन प्रथम प्रहर
२३	खमाज	खमाज	षाड़व संपूर्ण	ग	नि	दोनों नि	रे	०	सा ग म प ध नि सां	सां नि ध प म ग रे सा	रात्रि दूसरा प्रहर
२४	खम्बावती	"	संपूर्ण षाड़व	ग	ध	" "	०	रे	सा रे ग म प नि ध सां	सांनिधप मगमसा	" " "
२५	खट	आसावरी	सम्पूर्ण	ध	ग	गध, दोनों नि	०	०	सारेगम प निधनिसां	सांनिधप मगरेसा	दिन दूसरा प्रहर
२६	खोकर	खमाज	"	रे	प	नि, दोनों ग	०	०	सारेपम निधप मपधसां	सांनिधप धनिप मगरेगरेसा	" " "
२७	गान्धारी	आसावरी	षाड़व सम्पूर्ण	ध	ग	गध, निरे दोनों	ग	०	सारेमप धनिसां	सांनिधप मगरेसा	" " "
२८	गारा	खमाज	सम्पूर्ण	ग	नि	गनि दोनों-	०	०	सारेगरे गमपध निसां	सानिधनि पमगरे गरेसा	" " "
२९	गुणकरी	भैरव	औडव	ध	रे	रे ध	गनि	गनि	सा रे म प ध सां	सां ध प म रे सा	दिन प्रथम प्रहर
३०	गुणकली	बिलावल	सम्पूर्ण	सा	प	०	०	०	सा रे ग म प ध नि सां	सां नि ध प म ग रे सा	" ." "
३१	गुर्जरी तोड़ी	तोड़ी	षाड़व	ध	रे	रे मं ग	प	प	सा रे ग मं ध नि सां	सां नि ध मं गरे गरेसा	दिन दूसरा प्रहर
३२	गोपी बसंत	आसावरी	"	सा	प	गनिध	रे	रे	सा ग म प ध नि सां	सां नि ध प म ग सा	प्रातःकाल
३३	गोरख कल्याण	खमाज	"	म	सा	नि	ग	ग	सा रे म ध नि ध सां	सां नि धपम रेसा	रात्रि दूसरा प्रहर
३४	गौड़ मल्हार	काफी	संपूर्ण	म	सा	गनि दोनों	(गनि)	०	सा रे म प ध सां	सांनिप मपगम रेसा	वर्षा ऋतु
३५	गौड़ सारंग	कल्याण	"~	ग	ध	म दोनों	०	०	सागरेमग पमंधप निधसां	सांधनिप धमंपग मरे परेसा	दिन दूसरा प्रहर
३६	गौरी (भैरव)	भैरव	औडव संपूर्ण	रे	प	रेध	गध	०	सा रे म प नि सां	सांनिधप मंगरेसा	सायंकाल
३७	गौरी (पूर्वी)	पूर्वी	" "	रे	प	रेध, दोनों म	गध	०	सारेपमं पनिसां	सांनिधप म पगरे मंगरेसा	"
३८	चन्द्रकान्त	कल्याण	षाड़व संपूर्ण	ग	नि	मं	म	०	सा रे ग प ध नि सां	सांनिधप मंगरेसा	रात्रि प्रथम प्रहर
३९	चन्द्रकौंस	काफी	औढव	म	सा	गनि	रेप	रेप	साग मध निसां	सांनिधम ग मग सा	मध्यरात्रि

१३६	मियां मल्हार	काफी	संपूर्ण षाड़व	म	सा	ग व दोनों नि	०	ध	रेमरेसा मरे प निधनिसां	सांनिप मपगम रेसा	मध्यरात्रि
१३७	मीरा मल्हार	"	संपूर्ण	म	सा	गधनि दोनों	०	०	निसा रेगमप निधनिसां	सांधनिप मपगम रेनिसा	"
१३८	मुलतानी	तोड़ी	औडव संपूर्ण	प	सा	रेगधमं	रेध	०	निसा गमंप निसां	सांनिधप मंग रेसा	दिन चौथा प्रहर
१३६	मेघरंजनी	भैरव	औडव	म	सा	रे	'पध	पध	निरेग म निसां	रेंसां निम ग मरेगरेसा	रात्रि चौथा प्रहर
१४०	मेघ मल्लार	काफी	"	सा	प	दोनों नि	धग	धग	सा मरे मप निनिसां	सांनिप मरे मनिरेसा	वर्षाकाल
१४१	यमन	कल्याण	संपूर्ण	ग	नि	मं	०	०	सारेग मंप ध निसां	सांनिध प मंग रेसा	रात्रि प्रथम प्रहर
१४२	यमनी बिलावल	बिलावल	"	सा	प	दोनों म	०	०	सारेग मग पमंध निसां	सांनिधप गमगरे गरेसा	प्रातःकाल
१४३	रसरंजनी	"	औडव	म	सा	०	गप	गप	सा रे म ध नि सां	सां नि ध म धमरेसा	मध्यरात्रि
१४४	रसचन्द्र	"	"	म	सा	दोनों म	निप	निप	सारेसा गमम मंधमंसां	रेंसां धमंम गमरेसा	प्रातःकाल
१४५	राजकल्याण	कल्याण	औडव षाडव	ग	नि	मं	प (रे)	प	निसाग मंधमंग मंधसां	सां निरेंनिध मंगरेसा	सायंकाल
१४६	राजेश्वरी	काफी	औडव	म	सा	ग	परे	परे	निसा मगम मध निसां	सांनिध मग मग सा	मध्यरात्रि
१४७	रागेश्वरी	खमाज	औडवषाडव	ग	नि	दोनों नि	परे	प	साग मधनिसां	सांनिधम गरेसा	रात्रि दूसरा प्रहर
१४८	रामकली	भैरव	संपूर्ण	प	सा	रेध व मनि दोनों	०	०	सा ग मप ध निसां	सांनिध पमं पधनिधपगमरेसा	प्रातःकाल
१४६	रामदासी मल्हार	काफी	"	म	सा	गनि दोनों	०	०	सारेप मगम पनिधनिसां	सांधनिमप मगमरेसा	वर्षाकाल
१५०	रेवती (कान्हरा)	"	औडव संपूर्ण	प	सा	ग नि	निग	०	सा रेमप धमप सां	सां धनिप मप मगमरेसा	प्रातःकाल
१५१	रेवा	पूर्वी	औडव	ग	प	रे ध	मनि	मनि	सा रे ग प ध सां	सां ध प ग रे सा	सायंकाल
१५२	लच्छासाख	बिलावल	सम्पूर्ण	ध	ग	दोनों नि	०	०	सा रे ग म प ध नि सां	सां निध पधनिधप गमरेसा	प्रातःकाल
१५३	ललित	मारवा	षाडव	म	सा	रे व दोनों म	प	प	निरेगम मंमग मंध सां	रेंनिध मंध मंमग रे सा	रात्रि अन्तिम प्रहर
१५४	ललित गौरी	पूर्वी	सम्पूर्ण	म	सा	रे व धम दोनों	०	०	सारेगम मंमग पधनिसां	सांनिधप धमं म ग मंरेसा	सायंकाल
१५५	ललित पंचम	भैरव	षाडव संपूर्ण	म	सा	धरे व दोनों म	प	०	सारेसागम मंगमध निसां	सांनिधप धमंम पग रेसा	रात्रि अन्तिम प्रहर
१५६	लक्ष्मी कल्याण	कल्याण	सम्पूर्ण	रे	प	दोनों म	०	०	सा रेगमरे मंप ध निसां	सांनिधप मं म गमरेसा	सायंकाल
१५७	लाजवन्ती	बिलावल	सम्पूर्ण	प	सा	०	०	०	निसा गरे मग पधमपसां	सांप धम पग मपरेसा	मध्यरात्रि
१५८	वराटी	मारवा	सम्पूर्ण	ग	ध	मं रे	०	०	सा रेग पमंग पधनि सां	सां निधप मंग रेसा	सायंकाल
१५६	विभास (भैरव)	भैरव	औडव	ध	ग	रे ध	मनि	मनि	सा रे ग प ध प सां	सां धप गपधप गरेसा	प्रातःकाल

१६०	विभास (मारवा)	मारवा	सम्पूर्ण	ध	ग	रे मं	०	०	सा रेग मंग पधनिधसां	सां निध मंध मंगरेसा	प्रातःकाल
१६१	वैजयन्ती	कल्याण	औडव	प	रे	मं	ग ध	गध	निसारे मं प निसां	सांनि पमंरेसा	सायंकाल
१६२	शहाना	काफी	सम्पूर्ण	प	सा	नि ग	०	०	निसा गमप निधपसां	सांनिधनि पमप गमरेसा	रात्रि तीसरा प्रहर
१६३	शहाना कान्हरा	"	षाडव संपूर्ण	प	सा	गनि	ध	०	सारेग मपनिसां	सांनिधप मप गरेसा	मध्यरात्रि
१६४	श्याम कल्याण	कल्याण	औडव संपूर्ण	सा	म	दोनों म	ध	०	निसा रे मंप धप निसां	सांनिध मंपगमरे निसा	रात्रि प्रथम प्रहर
१६५	श्याम केदार	खमाज	षाडव	म	सा	मनि दोनों	ग	ग	सारेसाम रेमं प धनिसां	सांनिधप धनिधपमरेसा	रात्रि दूसरा प्रहर
१६६	शिवरंजनी	काफी	औडव	प	सा	ग	मनि	मनि	सारेगप ध सां	सां धप ग रे सा	मध्यरात्रि
१६७	शिवमत भैरव	भैरव	सम्पूर्ण	ध	रे	रे ध, गनि दोनों	०	०	सा रे ग म प ध नि सां	सां नि ध प म ग रे सा	प्रातःकाल
१६८	शुक्ल बिलावल	बिलावल	"	म	सा	दोनों नि	(रे)	०	साग मप धनिसां	सांनिध निधप मगमरेसा	प्रातःकाल
१६९	शुद्ध कल्याण	कल्याण	औडव सम्पूर्ण	ग	ध	मं	मनि	०	सा रेग पधसां	सांनिधप मंग रे सा	रात्रि प्रथम प्रहर
१७०	शुद्ध सारङ्ग	काफी	षाडव	रे	प	मनि दोनों	ग	ग (ध)	सारेमप मंपनिसां	सांनिपमं पधपमरेनिसा	दिन दूसरा प्रहर
१७१	शंकरा	बिलावल	औडव षाडव	ग	नि	०	रेम	म	साग प निध सां	सांनिप निध गप गरेसा	रात्रि दूसरा प्रहर
१७२	श्रीराग	पूर्वी	औडव सम्पूर्ण	रे	प	रे मं ध	गध	०	सारे मंप निसां	सां निध प मंगरेसा	सायंकाल
१७३	श्रीकल्याण	कल्याण	औडव	प	सा	मं	गनि	गनि	सा रे मं प धप सां	सां धप मंप रेसा	रात्रि प्रथम प्रहर
१७४	श्रीटंक	पूर्वी	षाडव सम्पूर्ण	प	रे	रे ध मं	म	०	सा रे ग प ध नि सां	सां नि ध प मं ग रे सा	सायंकाल
१७५	श्रीरंजनी	काफी	औडव षाडव	म	सा	ग नि	रे प	प	सा ग म ध नि सां	सां नि ध म ग रे सा	मध्यरात्रि
१७६	सरपरदा	बिलावल	संपूर्ण	सा	प	०	०	०	सारेगम धपनिध निसां	सांनिधप मग मरेसा	दिन प्रथम प्रहर
१७७	सरस्वती	खमाज	षाडव	प	रे	मं नि	ग	ग	सारेमंप निधप निधसां	रेंनि धपमं रेमंप मंरेसा	मध्यरात्रि
१७८	साजगिरी	मारवा	संपूर्ण	ग	नि	रे, मध दोनों	०	०	निरेग मंगमंप धपसां	सांनिध मंधमंग पगरेसा	संध्याकाल
१७९	सामन्त सारङ्ग	काफी	औडव	रे	प	दोनों निषाद	ग ध	ग ध	सा रे मप निसां	सां निप म रेसा	दिन दूसरा प्रहर
१८०	साजन	खमाज	औडव संपूर्ण	म	सा	" "	रे प	०	निसागम ध निसां	सां धनिप मगम गमरेसा	रात्रि दूसरा प्रहर
१८१	सावनी कल्याण	कल्याण	सम्पूर्ण	सा	प	०	(मनि)	०	सारेसा मगप ध सां	सांनिधनि गपगरेसा	रात्रि प्रथम प्रहर
१८२	सावेरी	भैरव	औडव संपूर्ण	प	सा	रे ध	ग नि	०	सारेमप धसां	सांनिधप मगरेसा	प्रातःकाल
१८३	सांझ का हिंडोल	कल्याण	औडव	ग	नि	मं	प रे	प रे	साग मंधमंनि मंधसां	सां निधनि धमंग सा	सायंकाल

१८४	सिन्धु भैरवी	आसावरी	संपूर्ण	म	सा	ग नि ध	०	०	सारेगम पधनिसां	सांनिधप मगरेसा	दिन दूसरा प्रहर
१८५	सुघराई	काफी	षाडव संपूर्ण	प	सा	ग, दोनों नि	ध	०	सा रे ग म प नि सां	सांनिधप मप गमरेसा	" " "
१८६	सूर मल्हार	"	औडव षाडव	म	सा	दोनों नि	ग ध	ग	सा रे म प नि सां	सां निधमप मरे सा	वर्षाऋतु
१८७	सूहा (कान्हरा)	"	षाडव	म	सा	ग नि	ध	ध	निसा गम पनिमप सां	सां निप मप गमरे सा	दिन दूसरा प्रहर
१८८	सैंधवी (सिंदूरा)	"	औडव संपूर्ण	सा	प	ग नि	ग नि	०	सा रे म प ध सां	सांनिधप मगरेम गरेसा	सायंकाल
१८९	सोरठ	खमाज	" "	रे	ध	दोनों नि	ग ध	०	सारे मपनि सां	सांरें निध मपध मरेनिसा	रात्रि दूसरा प्रहर
१९०	सोहनी	मारवा	षाडव	ध	ग	मं रे	प (रे)	प	साग मंधनिसां	सांरेंसांनिधं मंध मंगरेसा	रात्रि अन्तिम प्रहर
१९१	सौराष्ट्रटंक	भैरव	सम्पूर्ण	म	सा	रे, दोनों ध	०	०	सारे गम पम ध सां	सांनिधम निधप मगरेसा	प्रातःकाल
१९२	हमीर	कल्याण	"	ध	ग	दोनों म	०	०	सारेसा गमध निध सां	सांनिधप मंपधप गमरेसा	रात्रि प्रथम प्रहर
१९३	हिजाज	भैरव	"	म	सा	ध नि, रे दोनों	०	०	सारेगमप धनिसां	सांनिधप म गमप रेसा	दिन दूसरा प्रहर
१९४	हिंडोल	कल्याण	औडव	ध	ग	मं	रे प	रे प	साग मंधनिध सां	सां निध मंग सा	दिन प्रथम प्रहर
१९५	हुसेनी कान्हरा	काफी	सम्पूर्ण	सा	प	ग नि	०	०	सारेग मपधनिसां	सांनिधप गमरेसा	मध्यरात्रि
१९६	हेम कल्याण	बिलावल	औडव	सा	प	०	नि (ध)	ग नि	सा रे ग प सां	सां ध प ग रे सा	रात्रि दूसरा प्रहर
१९७	हंसकंकणी	काफी	औडव संपूर्ण	प	सा	गनि दोनों	रे ध	०	साग मप निसां	सांनिधप मपग मगरेसा	दिन तीसरा प्रहर
१९८	हंसध्वनि	बिलावल	औडव	सा	प	०	म ध	म ध	सारे गपगरे गपनि सां	सां नि प ग रे सा	रात्रि प्रथम प्रहर
१९९	हंसमंजरी	काफी	षाडव	प	रे	नि	ग	ग	सा रेमपध निसां	सांधप मपधपम रेनिसा	दिन तीसरा प्रहर
२००	हंसश्री	खमाज	औडव	प	सा	दोनों नि	रे ध	रे ध	सा गमपनि सां	सां नि मप पगमग सा	रात्रि दूसरा प्रहर

ज्ञातव्य : उपर्युक्त राग-विवरण में मतभेद भी हो सकते हैं, फिर भी यथासम्भव हमने अधिकतर राग भातखंडे-मतानुसार ही दिए हैं।

संगीत कार्यालय के प्रकाशन

गायन, वादन तथा नृत्य-सम्बन्धी साहित्य

बाल संगीत शिक्षा, भाग १
कक्षा ६ के लिए क्रियात्मक ०.७५
बाल संगीत शिक्षा, भाग २
कक्षा ७ के लिए " १.००
बाल संगीत शिक्षा, भाग ३
कक्षा ८ के लिए " १.२५
संगीत किशोर–
कक्षा ६ व १० के लिए " १.७५
हाईस्कूल संगीतशास्त्र–कक्षा १० के लिए २.००
संगीत शास्त्र–थ्योरी इण्टर तक १.२५
क्र० पु० मालिका–भातखण्डे प्रेक्टिकल कोर्स
भाग १–प्रथम वर्ष १.२५
" " " " २–द्वितीय वर्ष १०.००
" " " " ३–तृतीय वर्ष १४.००
" " " " ४–चतुर्थ वर्ष १४.००
" " " " ५–पंचम वर्ष १०.००
" " " " ६–षष्ठ वर्ष १०.००
संगीत विशारद–थ्योरी, १ से ५ वर्ष ६.००
संगीत अर्चना–
'क्रमिक पुस्तक' तीसरे भाग की तानें ७.००
संगीत कादम्बिनी–
'क्रमिक पुस्तक' चौथे भाग की तानें ७.००
भातखंडे संगीतशास्त्र–शास्त्रीय विवे० (थ्योरी)
भाग १–प्रथम वर्ष ६.००
" " २–द्वितीय वर्ष ७.००
" " ३–वर्ष ३–४ ७.००
" " ४–वर्ष ५–६ १६.००
मारिफुन्नगमात, भाग १–प्रथम वर्ष ७.००
" " २–द्वितीय वर्ष ७.००
" " ३–तृतीय वर्ष १.५०
संगीत सागर–गायन, वादन एवं नृत्य ७.००
रवीन्द्र संगीत–स्वरलिपि सहित गीत ३.५०
बेलाविज्ञान–
थ्योरी तथा वादन पाठ, ६० गतें ५.००
सितार मालिका–
शास्त्रीय विवेचन, १ से ४ वर्ष तक ६.००
सूर संगीत–भाग १ व २
भजन व स्वरलिपियाँ ४.००

गान्धर्व संगीत प्रवेशिका ३.५०
सहगल संगीत—स्वरलिपि-सहित गीत ३.००
राष्ट्रीय संगीत–
राष्ट्रीय गीत, मय स्वरलिपियाँ ३.५०
मृदंग तबला प्रभाकर, भाग १–२ ५.५०
ताल प्रकाश–तबला-कोर्स १ से ६ वर्ष ६.००
ताल अंक–सचित्र तबला-शिक्षक ५.००
मधुर चीजें–गीत व स्वरलिपि २.५०
संत संगीत अंक–भजन व स्वरलिपियाँ ३.५०
राग अंक–स्वरलिपि सहित ४० राग ४.००
वाद्य संगीत अंक–
विभिन्न वाद्यों को बजाने का ढंग ३.५०
बिलावल थाट अंक–
४० राग-स्वरलिपि व त्रिताल-बाज ३.००
कल्याण थाट अंक–
२५ राग-स्वरलिपि व झपताल-बाज ४.००
भैरव थाट अंक–
३३ राग स्वरलिपि व चौताल-बाज ३.००
पूर्वी थाट अंक–
२५ राग-स्वरलिपि व एकताल-बाज ३.००
खमाज थाट अंक–
३३ राग-स्वरलिपि व धमार-बाज ३.००
काफी थाट अंक–
५८ राग-स्वरलिपि व दीपचंदी-बाज ३.००
मारवा थाट अंक–
१३ राग-स्वरलिपि व रूपक-बाज ३.००
तोड़ी थाट अंक–
१५ राग-स्वरलिपि व आड़ाचौताल-बाज ३.००
आसावरी थाट अंक–
२१ राग-स्वरलिपि व सवारी-बाज ३.००
भैरवी थाट अंक–
१५ राग-स्वरलिपि व झूमरा-बाज ३.००
कर्नाटक संगीत अंक ४.००
ध्रुपद-धमार अंक ४.००
मृदंग अंक ४.००
लोक-संगीत अंक ४.००
गजल अंक ४.००
तराना अंक ५.००
हरिदास अंक–जीवनी व गीत-प्रबन्ध १.२५
नृत्य अंक–प्राचीन व आधुनिक नृत्यों पर
सचित्र लेख ३.५०
कथकलि नृत्यकला–सचित्र नृत्यशिक्षा ३.००

नृत्यभारती–३१५रेखाचित्र व नृत्यशिक्षा ४.००
कथक नृत्य–सचित्र नृत्यशिक्षा
(भूमिका ले०–शम्भू महाराज) ८.००
गिटार मास्टर-थ्योरी व प्रेक्टीकल शिक्षा २.००
बेंजो मास्टर–थ्योरी व प्रेक्टीकल शिक्षा २.००
म्यूजिक मास्टर–
हारमोनियम, तबला व बाँसुरी-शिक्षा २.५०
म्यूजिक मास्टर–(उर्दू)
हारमोनियम, तबला व बाँसुरी-शिक्षा २.५०
स्वरमालिका–
भातखंडे-कृत ६२ रागों में १२३ सरगमें २.५०
अप्रकाशित राग—स्वरलिपियाँ,
भाग १, २, ३–प्रत्येक का मू० २), सैट ६.००
भातखंडे संगीत पाठमाला–
प्रथम वर्ष के लिए थ्योरी १.५०
संगीत (मासिक)–सन् १९५६,५८,५९,
६१, ६२, ६३, ६४, ६५, ६६, ६७, ६८
की प्रति फाइल १०.००
फिल्म-संगीत (मासिक)–
सन् ६३, ६७, ६८ की प्रति फाइल १०.००
ठुमरी अंक–
स्वरलिपि-सहित ३६ ठुमरियाँ ३.००
ठुमरी गायकी–
स्वरलिपि-सहित ४५ ठुमरियाँ ३.५०
राग-कोष–१४३८ रागों का परिचय १.२५
आवाज सुरीली कैसे करें–
सचित्र प्रयोग व औषधियाँ ३.५०
सितार शिक्षा–परीक्षाओं के लिए गत-तोड़े ४.००
कायदा और पेशकार–प्रेक्टीकल २.५०
ताल मार्तण्ड " ६.००
तबले पर दिल्ली और पूरब " ५.००
अप्रचलित कायदे और गतें " ३.००
भारतीय संगीत का इतिहास ५.००

उच्चस्तरीय अध्ययन के लिए

संगीत निबन्धावली–
संगीत-सम्बन्धी २३ निबन्ध २.५०
संगीत अष्टछाप–जीवनी एवं
गीत-प्रबन्धों की स्वरलिपियाँ ६.००
रविशंकर के आरकेस्ट्रा–
वाद्यवृन्द की ५० रचनाएं ६.००

उत्तर-भारतीय संगीत का संक्षिप्त
इतिहास २.५०
संगीत-पद्धतियों का तुलना० अध्ययन ३.००
'संगीत' रजत-जयन्ती अंक–
खोजपूर्ण लेख ५.००
स्वरमेलकलानिधि–
रामामात्यकृत (हिन्दी टीका) १.२५
संगीत दर्पण–
दामोदरकृत (हिन्दी टीका) २.५०
दत्तिलम्–दत्तिलकृत (हिन्दी टीका) २.५०
म्यूजिक मिरर (६ अंकों का सैट)
इंगलिश में लेख व स्वरलिपियाँ ५०
संगीत रत्नाकर–भाग १
शार्ङ्गदेवकृत (हिन्दी टीका) ७.००
पाश्चात्य संगीत शिक्षा–
स्टाफ नोटेशन की सचित्र शिक्षा ७.००
संगीत चिन्तामणि–अन्वेषणात्मक लेख २०.००
भारत के लोकनृत्य-सचित्र २०० लोकनृत्य ५.००
हमारे संगीत-रत्न यन्त्रस्थ

'काका' हाथरसी की हास्य-पुस्तकें

काका की कचहरी–कविताएं व कार्टून		२.५०
पिल्ला	"	२.५०
म्याऊँ	"	२.५०
दुलत्ती	"	१.००
काका के कारतूस	"	२.५०
काका की कॉकटेल	"	२.००
चकल्लस	"	२.००
काकाकोला	"	१.००
काकदूत (सचित्र खण्ड-काव्य)	"	२.५०
काका की फुलझड़ियाँ	"	१.००
काका के कहकहे	"	१.००
काका के प्रहसन (एकांकी नाटक)	"	१.००
महामूर्ख-सम्मेलन (भाषण)		१.००
तुक शब्द-संग्रह (३१००० तुकोंका संग्रह)		१०.००

'संगीत'

गायन, वादन और नृत्य पर ३४ वर्ष से प्रकाशित सचित्र मासिक पत्र। वार्षिक मूल्य डाक-व्यय सहित रु० ११.४०, प्रति साधारण अंक १ रु०।

'फिल्म-संगीत'

नए फ़िल्मी गीतों का १९६९ से सचित्र त्रैमासिक। वार्षिक मूल्य डाक-व्यय सहित रु० ११.४०, प्रतिअंक ३ रु०

प्रकाशक : संगीत कार्यालय, हाथरस (उ० प्र०)